प्रकाशकीय

जिन पुस्तकोने ससारमे सबसे अधिक ख्याति प्राप्त की है, उनमे गाधीजीकी 'आत्म-कथा' का प्रमुख स्थान है। विश्वकी शायद ही कोई महत्त्वपूर्ण भाषा हो, जिसमे यह रचना प्रकाशित न हुई हो।

आजसे कई वर्ष पूर्व अनुभव किया गया कि ऐसी जीवनोपयोगी पुस्तकका लाभ विद्यार्थियोको और जन-सामान्यको भी मिलना चाहिए। विस्तृत 'आत्मकथा' मेसे बालोपयोगी अश चुनकर तथा कुछ प्रसग 'दक्षिण अफ्रीका-का सत्याग्रहका इतिहास' मेसे लेकर यह सस्करण तैयार किया गया। यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी पायी गयी और इतनी लोकप्रिय हुई कि इसके सोलह सस्करण अबतक निकल चुके है।

गाधीजीके प्रयोग और उनके विचार मानव-जीवनको उदात्त बनानेवाले हैं। अत इनकी उपयोगिता सार्वकालिक और सार्वदेशिक है।

राष्ट्रपिता बापूकी आत्मकथाका यह सक्षिप्त सस्करण गाधी-जन्म-शताब्दीके अवसरपर घर-घर पहुचे तथा सबके द्वारा पढा जाय, इस अपेक्षासे विशेष रूपमे प्रकाशित किया जा रहा है।

सम्पादकीय

अर्सेसे यह अनुभव किया जा रहा था कि 'आत्म-कथा' का एक संक्षिप्त संस्करण निकले, जिसमें गांधीजीके जीवनकी मुख्य-मुख्य घटनाएं आ जायं और इसकी स्फूर्ति तथा शिक्षामें किसी प्रकारकी कमी न हो।

इस संस्करणके तैयार करनेमें मुख्य ध्यान इस बातपर रखा गया है कि यह विद्यार्थियोंके लिए उपयोगी हो। इसलिए बहुत-से लम्बे विवरण और चर्चाएं, जो स्कूल-जीवनमें विशेष उपयोगी नहीं हो सकती, 'आत्म-कथा' मेंसे कम कर दी गयी है। दक्षिण अफ्रीकाका सत्याग्रह-संबंधी कुछ भाग, जो मूल 'आत्म-कथा' में विस्तार-भयसे छोड दिया गया था, दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहके आधारपर इस संस्करणमें जोड दिया गया है।

भाषा, जहांतक सम्भव हुआ है, मूल हिन्दी संस्करणकी ही रखी गयी है। जहां नया अनुवाद करना पडा है, वहां भी भाषाको सरल और सुबोध बनानेका प्रयत्न किया गया है। गांधीजीका जीवन इतना महान्, इतना खुला और ऐसा व्यापक है कि उसको जाने और उससे स्फूर्ति पाये बिना हिन्दुस्तानका मनुष्य कैसे रह सकता है? जिस महापुरुषके कार्योंने भारतीय राष्ट्रके प्रत्येक अंगको छुआ है—छुआ ही नहीं, उसको प्रभावित भी किया है—उसके ज्ञानसे भला हिन्दुस्तानी विद्यार्थी कैसे अछूता रखा जा सकता है, क्योंकि गांधीजीकी बालकोचित सरलता, पारदर्शी निष्कपटता, दुर्दमनीय उत्साह, असीम कार्यशक्ति और सबसे बढकर हरएकपर अपनी छाप डालनेवाला उनका प्रेम-भाव, ये ऐसे गुण है, जिनकी छाप 'आत्म-कथा' के पाठकपर पडे बिना नहीं रह सकती। इन गुणोंका उदाहरण एक विद्यार्थीके जीवनको बनानेके लिए बहुत आवश्यक है। इस दृष्टिसे यह 'आत्म-कथा' विद्यार्थियों तथा नवयुवकोंके बडे कामकी चीज है। हमें आशा है कि भारतके विद्यार्थीगण और नवयुवक, जिनके कन्धोंपर कलके हिन्दुस्तानका बोझ पडनेवाला है, अपने लिए इस संस्करणको बहुत उपयोगी पायेंगे।

दिल्ली
६-७-३९

—महादेव ह० देसाई
—हरिभाऊ उपाध्याय

अनुक्रम

मेरे पिता कवा गाधीको धन-सग्रहका लोभ न था। इससे हम भाइयोके लिए वह बहुत थोडी सम्पत्ति छोड गये थे।

पिताजीने शिक्षा केवल अनुभवसे प्राप्त की थी। स्कूली शिक्षा उन्होने उतनी ही पायी रही होगी, जिसे आज हम अपर-प्राइमरी कहते है। इतिहास-भूगोलका ज्ञान उन्हे बिलकुल न था, मगर व्यावहारिक ज्ञान इतने ऊचे दर्जेका था कि सूक्ष्म-से-सूक्ष्म प्रश्नोको सुलझानेमे या हजारो आदमियोसे काम लेनेमे उन्हे कठिनाई नही होती थी। धार्मिक शिक्षा नहीके बराबर थी, परन्तु मन्दिरोमे जानेसे, कथा-पुराण सुननेसे, जो धर्म-ज्ञान असख्य हिन्दुओको सहजमे मिल जाता है, वह उन्हे मिला था। अपने अन्तिम दिनोमे एक विद्वान् ब्राह्मणकी सलाहसे, जो कि हमारे कुटुम्बके मित्र थे, उन्होने गीता-पाठ शुरू किया था, और वह नित्य पूजाके समय कुछ श्लोक ऊचे स्वरसे पाठ किया करते थे।

वह कुटुब-प्रेमी, सत्य-प्रिय, शूर और उदार, परन्तु क्रोधी थे। रिश्वतसे सदा दूर भागते थे, और इसी कारण अच्छा न्याय करते थे, उनकी ऐसी प्रसिद्धि हमारे कुटुबमे तथा बाहर भी थी। वह राजकोटमे कुछ समयतक प्रधानमन्त्री रहे थे और राज्यके बडे भक्त थे। एक बार जब असिस्टेंट पोलिटिकल एजेण्टने राजकोटके ठाकुरसाहबकी शानके खिलाफ कुछ शब्द कहे, तब उन्होने उसका विरोध किया। साहब बिगड पडे और कवा गाधीको माफी मागनेका हुक्म दिया। माफी मागनेसे इनकार कर देनेपर कवा गाधी कुछ घटो हवालातमे भी रहे, पर वह डिगे नही, इससे अन्तमे साहबने उन्हे छोड देनेकी आज्ञा दी।

मेरे मनपर ऐसे सस्कार है कि मेरी माताजी साध्वी स्त्री थी। वह बहुत भावुक थी। पूजा-पाठ किये बिना कभी भोजन न करती, वैष्णव-मन्दिर रोज जाती। मैंने जबसे होश सभाला, याद नही पडता कि उन्होने चातुर्मासका व्रत कभी छोडा हो। कठिन-से-कठिन व्रत वह लेती और उन्हे पूरा करती। बीमार पड जानेपर भी वह लिये हुए व्रतोको न छोडती। ऐसा एक समय मुझे याद है, जब उन्होने चाद्रायण व्रत किया था।

उसमें वह बीमार पड गयी, पर व्रत न छोडा। चातुर्मासमें एक समयके भोजनका व्रत तो उनके लिए मामूली बात थी। इतनेसे संतोष न पाकर एक बार, चातुर्मासमें उन्होंने हर तीसरे दिन उपवासका व्रत लिया। लगातार दो-तीन उपवास उनके लिए मामूली बात थी। एक चातुर्मासमें उन्होंने सूर्यनारायणके दर्शन करनेके बाद ही भोजन करनेका नियम लिया। इस चौमासेमें हम बच्चे बडी उत्सुकतासे बादलोंकी ओर देखा करते कि कब सूर्य निकलनेकी खबर माको दें और वह कब भोजन करे। चौमासेमें बहुत बार सूर्य-दर्शन दुर्लभ होते हैं। मुझे ऐसे दिन याद हैं, जब हम सूर्यको देखते और चिल्लाते—"मा, मा, सूरज निकला!" और मा जल्दी-जल्दी आती, तबतक सूर्य छिप जाता। वह यह कहती हुई लौट जाती—"कोई बात नहीं, भगवान्‌की मरजी नहीं है कि आज भोजन मिले।" और जाकर अपने काममें लग जाती।

वह व्यवहार-कुशला भी थी और राज-दरबारकी सब बातें जानती थीं। रनवासमें वह बुद्धिमती समझी जाती थी। बचपनमें मैं माके साथ दरबारगढ जाया करता था, और माजीसाहबा (ठाकुरसाहबकी विधवा माता) से उनकी जो बातचीत होती, वह कुछ-कुछ मुझे अबतक याद है।

इन माता-पिताके यहाँ आश्विन बदी १२, संवत् १९२५ (अर्थात् २ अक्तूबर १८६९ ईस्वीको) पोरबन्दर अथवा सुदामापुरीमें मेरा जन्म हुआ।

बचपन पोरबंदरमें ही बीता। ऐसा याद पडता है कि मैं किसी पाठशालामें पढने बैठाया गया था। मुश्किलसे कुछ पहाडे सीखे होंगे, बाकी तो और लडकोंके साथ गुरुजीको गाली देना सीखनेके अतिरिक्त और कुछ सीखा, याद नहीं है, इससे यह अनुमान करता हूँ कि मेरी बुद्धि मन्द रही होगी और स्मरण-शक्ति कच्ची।

२. स्कूलमें

पोरबन्दरसे पिताजी 'राजस्थानिक कोर्ट' के सदस्य होकर जब राजकोट गये तब मेरी उम्र कोई सात सालकी रही होगी। राजकोटकी देहाती पाठशालामें भर्ती कराया गया। उन दिनोंका मुझे भलीभाँति स्मरण है। मास्टरोंके नाम-धाम भी याद हैं। पोरबन्दरकी तरह वहाँकी पढाईके सम्बन्धमें कोई खास बात जानने लायक नहीं। मेरी गिनती साधारण श्रेणीके विद्यार्थियोंमें रही होगी। पाठशालासे ऊपरके स्कूलमें और वहाँसे हाईस्कूलमें पहुँचनेमें मेरा बारहवाँ वर्ष बीत गया। तबतक मैं कभी शिक्षक आदिसे

झूठ बोला होऊ, ऐसी याद नही पडती। न किसीको दोस्त बनानेका स्मरण है। मैं बहुत सकोची लडका था, मदरसेमे अपने कामसे काम रखता था। घटी बजते-बजते पहुच जाता और स्कूल बन्द होते ही घर भाग आता। 'भाग आता' शब्दका प्रयोग जान-बूझकर किया है, क्योंकि मुझे किसीके साथ बातें करना नही रुचता था। मुझे यह डर भी बना रहता था कि कोई मेरा मजाक न उडाये।

हाईस्कूलके पहले वर्षकी परीक्षाके समयकी एक घटना उल्लेखनीय है। शिक्षा-विभागके इन्स्पेक्टर, जाइल्ससाहब, जाचके लिए आये। उन्होंने पहले दर्जेके विद्यार्थियोसे पाच शब्द लिखवाये। उनमेसे एक शब्द था 'केटल' (Kettle)। उसके हिज्जे मैंने गलत लिखे। मास्टरने मुझे अपने बूटसे ठोकर देकर चेताया, पर मैं कहा समझनेवाला था। मेरे दिमागमें यह बात नही आयी कि मास्टरसाहब मुझे सामनेके लडकेकी स्लेट देखकर हिज्जे दुरुस्त करनेका सकेत कर रहे हैं। मैंने यह मान रखा था कि मास्टर तो इसके लिए तैनात है कि कोई लडका दूसरेकी नकल न कर सके। सब लडकोंके पाचो शब्द सही निकले, अकेला मैं ही बेवकूफ बच गया। मेरी बेवकूफी बादको मास्टरने बतलायी। पर मेरे मनपर उसका कोई असर न हुआ। मुझे दूसरे लडकोसे नकल करना कभी न आया।

ऐसा होते हुए भी मास्टरसाहबके प्रति मेरा आदर कभी न घटा। बडे-बूढोंके दोष न देखनेका गुण मुझमे स्वाभाविक था। बादको तो इन मास्टरसाहबके दूसरे दोष भी मेरी नजरमें आये। फिर भी उनके प्रति मेरा आदर ज्यो-का-त्यो बना रहा। मैं इतना जानता था कि बडे-बूढोकी आज्ञाका पालना करना चाहिए, जो वे कहें करना चाहिए, वे जो कुछ करें, उसका हमे काजी न बनना चाहिए।

इसी बीच दूसरी दो घटनाए हुई, जो मुझे सदा याद रही हैं। मामूली तौरपर मुझे कोर्सकी पुस्तकोके अलावा कुछ भी पढनेका शौक न था। पाठ पूरा करना चाहिए, डाट सही नही जाती थी, मास्टरसे छल-कपट करना नही था, इन कारणोंसे मैं पाठ पढता। पर मन न लगा करता। इससे पाठ बहुत बार कच्चा रह जाता। ऐसी हालतमें दूसरी पुस्तक पढनेको जी कैसे चाहता? परन्तु पिताजीकी खरीदी एक पुस्तक 'श्रवण-पितृ-भक्ति' नाटकपर मेरी नजर पडी। इसे पढनेको दिल चाहा। बडे अनुराग और चावसे मैंने उसे पढा। इन्ही दिनो काठके बक्समें शीशोसे तस्वीर दिखानेवाले भी फिरा करते। उनमें मैंने श्रवणका अपने माता-पिताको कावरमे बैठाकर यात्राके लिए ले जानेवाला चित्र देखा। दोनो चीजोका मुझपर गहरा असर पडा। मनमें श्रवणके समान होनेके विचार उठने लगे। श्रवणकी मृत्युपर उसके

माता-पिताका विलाप मुझे अब भी याद है। उस ललित छन्दको मैंने बजाना सीख लिया था। मुझे बाजा सीखनेका शौक था और पिताजीने एक बाजा ला भी दिया था।

इसी समय कोई नाटक-कम्पनी आयी और मुझे उसका नाटक देखनेकी छुट्टी मिली। इसमें हरिश्चन्द्रकी कथा थी। यह नाटक देखनेसे मेरी तृप्ति नहीं होती थी। बार-बार उसे देखनेको मन हुआ करता, पर बार-बार जाने कौन देता! पर अपने मनमें मैंने हरिश्चन्द्रका नाटक सैकडो बार खेला होगा। हरिश्चन्द्रके सपने आया करते। यही धुन लगी रहती कि हरिश्चन्द्र-की तरह सत्यवादी सब क्यों न हो? यही धारणा होती कि हरिश्चन्द्रके जैसी विपत्तिया भोगना और सत्यका पालन करना ही सच्चा सत्य है। मैंने तो यही मान रखा था कि नाटकमें जैसी विपत्तिया हरिश्चन्द्रपर पड़ी हैं, वैसी ही वास्तवमें उसपर पडी होगी! हरिश्चन्द्रके दुखोको देखकर और उन्हें याद करके मैं खूब रोया हू। आज मेरी बुद्धि कहती है कि सम्भव है, हरिश्चन्द्र कोई ऐतिहासिक व्यक्ति न हो, पर मेरे हृदयमें तो हरिश्चन्द्र और श्रवण आज भी जीवित हैं। मैं मानता हू कि आज भी यदि मैं उन नाटकोको पढू तो आसू आये बिना न रहेंगे।

३. हाईस्कूलमें

जब मेरा विवाह हुआ तब मैं हाईस्कूलमें पढता था। हाईस्कूलमें मैं मन्द-बुद्धि विद्यार्थी नहीं माना जाता था। शिक्षकोका प्रेम तो मैंने सदा प्राप्त किया था। हर साल माता-पिताको विद्यार्थीकी पढाई तथा चाल-चलनके सम्बन्धमें प्रमाण-पत्र भेजे जाते। इनमें किसी दिन मेरी पढाई या चाल-चलनकी शिकायत नहीं की गयी। दूसरे दर्जेके बाद मैंने इनाम भी पाये और पाचवें तथा छठे दर्जेमें तो मुझे क्रमश चार और दस रुपयेकी मासिक छात्रवृत्तिया भी मिली थीं। इस सफलतामें मेरी योग्यताकी अपेक्षा भाग्यका ज्यादा जोर था। ये छात्रवृत्तिया सब लडकोंके लिए नहीं, सौराष्ट्र प्रान्तके विद्यार्थियोके ही लिए थीं और उस समय चालीस-पचास विद्यार्थियोंके दर्जेमें सौराष्ट्र-काठियावाडके विद्यार्थी हो ही कितने सकते थे!

मेरी यादके अनुसार अपनी होशियारीपर मुझे गर्व न था। इनाम अथवा छात्रवृत्ति मिलती तो मुझे आश्चर्य होता, परन्तु हाँ, अपने चरित्रका मुझे बडा खयाल रहता था। सदाचारमें यदि चूक होती तो मुझे रुलाई आ जाती। यह मेरे लिए बरदाश्तसे बाहर था कि मेरे हाथो कोई ऐसी बात न हो कि शिक्षकको शिकायतका मौका मिले या वह मनमें भी ऐसा सोचें।

मुझे याद है कि एक बार मुझे मार खानी पडी थी। इस अवसरपर मार खानेका तो दु ख न था, पर इस बातका बडा पछतावा था कि मैं दण्डका पात्र समझा गया। मैं खूब रोया। यह घटना पहले या दूसरे दर्जेकी है। दूसरा प्रसग सातवें दर्जेका है। उस समय दोराबजी एदलजी गीमी हेडमास्टर थे। उनका अनुशासन कठोर था, फिर भी वह विद्यार्थियोमे प्रिय थे। वह बाकायदा काम करते और काम लेते और पढाते भी अच्छा थे। उन्होने ऊचे दर्जेके विद्यार्थियोके लिए कसरत, क्रिकेट अनिवार्य कर दी। मेरा मन उसमे न लगता था। अनिवार्य होनेके पहले तो मैं कसरत, क्रिकेट या फुट-बालमे कभी जाता ही न था। न जानेमे मेरा सकोची स्वभाव भी एक कारण था। अब मैं देखता हू कि कसरतकी यह अरुचि मेरी भूल थी। उस समय मेरे ऐसे गलत विचार थे कि व्यायामका शिक्षाके साथ कोई सम्बन्ध नही है। बादमे मेरी समझमे आया कि विद्याभ्यासमे व्यायामका अर्थात् शारीरिक शिक्षाका मानसिक शिक्षाके समान ही स्थान होना चाहिए।

फिर भी मैं कहना चाहता हू कि व्यायाम न करनेसे मुझे हानि नही हुई। कारण, मैंने पुस्तकोमे खुली हवामे घूमनेके सबधमे पढा था। यह बात मुझे पसन्द आयी और तभीसे घूमने जानेकी आदत मुझे पड गयी, जो अबतक है। घूमना भी व्यायाम तो है ही और इससे मेरा शरीर ठीक-ठीक गठीला हो गया।

व्यायामकी जगह घूमना जारी रखनेकी वजहसे शरीरसे व्यायाम न करनेकी भूलके लिए तो मुझे सजा नही भोगनी पडी, पर दूसरी एक भूलकी सजा मैं आजतक भोग रहा हू। पता नही कहासे यह गलत खयाल मुझे मिल गया था कि पढाईमे सुलेखकी आवश्यकता नही है। यह विलायत जानेतक बना रहा। बादमे तो मैं पछताया और शरमाया। मैंने समझा कि अक्षरोका खराब होना अधूरी शिक्षाकी निशानी है। अत हरएक नव-युवक या युवती मेरे इस उदाहरणसे सबक ले और समझे कि सुन्दर अक्षर शिक्षाका आवश्यक अग है।

इस समयके मेरे विद्यार्थी-जीवनकी दो बातें उल्लेखनीय हैं। चौथे दर्जेसे कुछ विषयोकी शिक्षा अग्रेजीमे दी जाती थी, पर मैं कुछ समझ नही पाता था। रेखागणितमे मैं यो भी पीछे था, और फिर अग्रेजीमे पढाये जानेके कारण यह और भी समझमे न आता था। शिक्षक समझाते तो अच्छा थे, पर मेरी समझमे ही कुछ न आता था, मैं बहुत बार निराश हो जाता। परिश्रम करते-करते जब रेखागणितके तेरहवें प्रमेयपर पहुचा तब मुझे एकाएक लगा कि रेखागणित तो सबसे आसान विषय है। जिस बातमें

केवल बुद्धिका सीधा और सरल प्रयोग ही करना है, उसमें मुश्किल क्या है ? इसके बादसे रेखागणित मेरे लिए सहज और रोचक विषय हो गया।

संस्कृत मुझे रेखागणितसे भी अधिक कठिन मालूम पडी। रेखागणितमें तो रटनेकी कोई बात न थी, परन्तु संस्कृतमें मेरी दृष्टिसे अधिक काम रटनेका ही था। यह विषय भी चौथी कक्षासे शुरू होता था। छठी कक्षामें जाकर तो मेरा दिल बैठ गया। संस्कृत-शिक्षक बडे सख्त थे। विद्यार्थियोंको बहुतेरा पढा देनेका उन्हें लोभ था। संस्कृत और फारसीके दर्जेमें एक प्रकारकी होड-सी लगी रहती थी। फारसीके मौलवीसाहब नरम आदमी थे। विद्यार्थी आपसमें बातें करते कि फारसी तो बहुत सरल है, फारसीके अध्यापक भी बडे मुलायम हैं। विद्यार्थी जितना काम कर लाते हैं, उतनेसे ही वह निभा लेते हैं। सहज होनेकी बातसे मैं भी ललचाया और एक दिन फारसीके दर्जेमें जाकर बैठा। संस्कृत-शिक्षकको इससे दुःख हुआ और उन्होंने मुझे बुलाकर कहा—"तुम सोचो तो कि तुम किसके लडके हो ? अपनी धार्मिक भाषा न सीखोगे ? अपनी कठिनाई मुझे बताओ। मेरी तो इच्छा रहती है कि सब विद्यार्थी अच्छी संस्कृत सीखें। आगे चलकर उसमें रस-ही-रस मिलेगा। तुमको इस तरह निराश न होना चाहिए। तुम फिर मेरे दर्जेमें आ जाओ।"

मैं शरमाया। शिक्षकके प्रेमकी अवहेलना न कर सका। आज मेरी आत्मा कृष्णशंकर पड्याकी कृतज्ञ है, क्योंकि जितनी संस्कृत मैंने उस समय पढी थी, यदि उतनी भी न पढा होता तो आज मैं संस्कृत-शास्त्रोंका जो रसास्वादन कर पाता हूं वह न कर पाता। बल्कि अधिक संस्कृत न पढ सका, इसका पछतावा होता है, क्योंकि आगे चलकर मैंने समझा कि किसी भी हिन्दू बालकको संस्कृतके अध्ययनसे वंचित नहीं रहना चाहिए।

अब तो मैं यह मानता हूं कि भारतवर्षके उच्च-शिक्षण-क्रममें अपनी भाषाके अतिरिक्त राष्ट्र-भाषा हिन्दी, संस्कृत, फारसी, अरबी और अंग्रेजीको स्थान मिलना चाहिए। इतनी भाषाओंकी गिनतीसे किसीको घबरानेकी जरूरत नहीं। यदि भाषाएं ढगसे सिखायी जायं और सब विषय अंग्रेजीके द्वारा ही पढने-समझनेका बोझ हमपर न हो, तो उपर्युक्त भाषाओंकी शिक्षा भार-रूप न होगी, बल्कि उसमें बडा रस आने लगेगा। फिर जो एक भाषा शास्त्रीय पद्धतिसे सीख लेता है, उसे दूसरी भाषाओंका ज्ञान सुलभ हो जाता है।

वास्तवमें हिन्दी, गुजराती, संस्कृतको एक ही भाषा मानना चाहिए। यही बात फारसी और अरबीके लिए भी कह सकते हैं। फारसी यद्यपि संस्कृत-सी है, और अरबी हिब्रू जैसी, तथापि दोनों भाषाएं इस्लामके

जन्मके पश्चात् फूली-फली है, इसलिए दोनोमे निकट सम्बन्ध है। उर्दूको मैने अलग भाषा नही माना, क्योकि उसके व्याकरणका समावेश हिन्दीमे होता है। उसके शब्द फारसी और अरबीके ही है। ऊचे दर्जेकी उर्दू जानने-वालेके लिए अरबी और फारसी जानना आवश्यक होता है, जैसा कि उच्च-कोटिके गुजराती, हिन्दी, बगला और मराठी जाननेवालेके लिए सस्कृत जानना जरूरी है।

४. विवाह और मांस-भक्षण

यह लिखते हुए मेरे हृदयको बडी व्यथा होती है कि १३ वर्षकी उम्रमे मेरा विवाह हुआ। आज मै अपनी आखोके सामने १२-१३ वर्षके बच्चोको देखता हू और जब मुझे अपने विवाहका स्मरण हो आता है तब मुझे अपने ऊपर तरस आता है, और उन बच्चोको इस बातके लिए बधाई देनेकी इच्छा होती है कि वे मेरी-सी हालतसे बच गये। तेरह सालकी उम्रमे हुए मेरे विवाहके समर्थनमे एक भी नैतिक दलील मुझे नही सूझती। यह मै पहले कह आया हू कि जब मेरी शादी हुई तब मै हाईस्कूलमे ही पढता था। हमारे वर्तमान हिन्दू-समाजमे ही एक ओर पढाई और दूसरी ओर शादी दोनो साथ-साथ चल सकते है।

एक और दु खद प्रसग यहा लिखना है और वह है मेरा एक बुरे आदमी-की सगतमे पड जाना। यह मेरे जीवनका एक दु खद प्रकरण है। उस व्यक्तिकी मित्रता पहले मेरे मझले भाईके साथ थी। वह उनका सहपाठी था। मै उसके कई दोषोको जानता था, परन्तु मैने उसे अपना सच्चा साथी मान लिया था। मेरी माताजी, बडे भाई और पत्नी तीनोको यह सगत बुरी लगती थी। पत्नीकी चेतावनीकी तो मुझ-जैसा अभिमानी पति परवा ही क्या करता! हा, माताकी आज्ञाका उल्लघन करना मेरे लिए कठिन था। बडे भाईकी बात भी टाल नही सकता था, परन्तु मै उन्हे यो समझा देता कि आप जो उसकी बुराइया बताते है, उन्हे तो मै जानता हूँ। पर उसके गुणोको आप नही जानते। मुझे वह गलत रास्तेपर नही ले जा सकता, क्योकि मैने उसका साथ उसे सुधारनेकी नीयतसे किया है। मेरा विश्वास है कि यदि वह सुधर जाय तो वह अच्छा आदमी साबित होगा! यह तो मै नही मानता कि इन बातोसे उन्हे सतोष हो जाता था, पर उन्होने मुझपर विश्वास रखा और मुझे अपनी राह चलने दिया।

आगे चलकर मुझे यह मालूम हुआ कि मेरा यह अनुमान सही नही था। सुधार करनेके लिए भी मनुष्योको गहरे पानीमे नही उतर जाना चाहिए। जिनका सुधार हमे करना हो, उनके साथ मित्रता सभव नही है। मित्रतामे

२

अद्वैत-भावना होती है। ऐसी मित्रता संसारमें बहुत कम ही पायी जाती है। समान गुण और शीलवालोंमें ही मित्रता शोभती और निभती है। मित्रका एक-दूसरेपर असर पड़े बिना नहीं रह सकता, इस कारण मित्रतामें सुधारकी गुंजाइश बहुत कम होती है। मेरा मत यह है कि अन्तरंग मित्रता अनिष्ट-कारक है, क्योंकि मनुष्य दोषको बहुत जल्दी अपनाता है। गुण-ग्रहण करनेमें प्रयासकी आवश्यकता है। आत्मा और ईश्वरकी मित्रता चाहनेवालेको एकाकी रहना चाहिए, या फिर सारे जगत्के साथ मैत्री करना उचित है। ये विचार सही हों या गलत, परन्तु इसमें शक नहीं कि मेरा अन्तरंग मित्रता-का प्रयास निष्फल रहा।

जिन दिनों इन मित्रसे मेरा सम्बन्ध हुआ था, राजकोटमें 'सुधार' की लहर ऊंची उठ रही थी। इस मित्रने खबर दी कि बहुतेरे हिन्दू शिक्षक छिपे-छिपे मद्य-मांसका सेवन करते हैं। राजकोटके दूसरे प्रसिद्ध व्यक्तियों-के नाम भी उसने बताये। हाईस्कूलके कितने ही विद्यार्थियोंके नाम भी मेरे पास आये। यह देखकर मुझे तो आश्चर्य हुआ और दुःख भी। जब मैंने इसका कारण पूछा तब यह बताया गया कि हम मांस नहीं खाते, इसलिए हमारा राष्ट्र कमजोर है। अंग्रेज जो हमपर हुकूमत कर रहे हैं, इसका कारण उनका मांसाहार है। मैं कितना हट्टा-कट्टा और मजबूत हूं और कितना दौड़ सकता हूं, यह तो तुम्हें मालूम है ही। इसका कारण भी मेरा मांसाहार ही है। मांसाहारीको फोड़े-फुंसी नहीं होते, और हुए तो जल्दी अच्छे हो जाते हैं। हमारे अध्यापक मांस खाते हैं, इतने-इतने मशहूर आदमी खाते हैं, सो क्या सब बिना सोचे-समझे ही ? तुम्हें भी जरूर खाना चाहिए। खाकर तो देखो कि तुम्हारे बदनमें कितनी ताकत आ जाती है।

ये सारी दलीलें कोई एक दिनमें ही सामने नहीं आयीं। अनेक उदा-हरणोंसे सजाकर ये कई बार पेश की गयीं। मझले भाई तो फिसल चुके थे। उन्होंने भी इन बातोंका समर्थन किया। अपने भाई और इस मित्रके मुका-बलेमें मैं दुर्बल था। उनका बदन अधिक गठीला और शरीर-बल मुझसे बहुत अधिक था। वे साहसी थे। इस मित्रके पराक्रमके काम मुझे मोह लेते थे। वह जितना चाहे दौड़ सकता था। चाल भी बहुत तेज थी। लंबी और ऊंची कुदानमें उसे कमाल हासिल था। मार सहनेकी शक्ति भी वैसी ही थी। इस शक्तिका प्रदर्शन भी वह समय-समयपर करता था। अपने अन्दर जिस शक्तिका अभाव होता है, उसे दूसरेमें देखकर मनुष्यका आश्चर्या-न्वित होना स्वाभाविक है। यही मेरे विषयमें हुआ। आश्चर्यसे मोह पैदा हुआ। मुझमें दौड़नेकी शक्ति नहींके बराबर थी। मेरे मनने कहा—"मैं भी इस मित्रके समान बलवान् हो जाऊं तो क्या ही अच्छा हो!"

दूसरे, मै वडा डरपोक था। चोर, भूत, साप आदिके भयसे भयभीत वना रहता था। रातको अकेले कही जानेकी हिम्मत नही पडती थी। अधेरेमे कही न जा सकता था। रोशनीके बिना सोना भी प्राय असम्भव-सा था। इधरसे भूत आ जाय, उधरसे चोर आ जाय और कहीसे साप निकल आया तो ? यह डर वना रहता। इसलिए रोशनीका होना तो आवश्यक था। इधर अपनी पत्नीके सामने भी, जो कि पास ही सोती और अव कुछ-कुछ युवती हो चली थी, ये भयकी वाते करते हुए सकोच होता, क्योकि मै इतना जान गया था कि वह मुझसे अधिक साहसी है, इस कारण मै उससे कुछ शरमाता भी था। उसने साप वगैरहका डर तो कभी जाना ही नही था। अधेरेमे अकेली चली जाती। मेरी इन कमजोरियोका उस मित्रको पता था। वह तो मुझसे कहता कि मै तो जीते सापको भी हाथसे पकड लेता हू। चोरसे नही डरता, भूत-प्रेतको मानता ही नही, और इन सवका कारण मासाहार ही है। यह उसने मेरे मनमे जमा दिया।

इन्ही दिनो कवि नर्मदका यह कवित्त पाठशालाओमे गाया जाता—

अग्रेजी राज करे, देशी रहे दबाई,
देशी रहे दबाई, जोने बेना शरीर भाई,
पेंलो पाच हाथ पूरो, पूरो पाचसेने ॥

इन सवका मेरे मनपर पूरा असर हुआ। मै मानने लगा कि मासाहार अच्छी चीज है। उससे मुझमे बल और साहस आयेगा। यदि सारा देश मासाहार करने लगे तो अग्रेजोको हटाया जा सकता है।

मेरे माता-पिता वैष्णव थे और मै उनका परम-भक्त था। मै जानता था कि उन्हे मेरे मासाहारका पता चल जाय तो वे विना मौतके तुरन्त ही प्राण छोड देगे! सत्यका जाने-अनजाने सेवक तो मै था ही। यह नही कह सकता कि मासाहार करनेपर माता-पितासे झूठ वोलना पडेगा, यह ज्ञान मुझे उस समय नही था। लेकिन मेरा मन तो सुधारके रगमे रगा हुआ था। मासाहारका शौक नही था। स्वादके खयालसे मुझे मासाहार नही आरम्भ करना था। मुझे तो वलवान् और साहसी वनना था और दूसरो-को वैसा ही वननेको समझाना था और फिर अग्रेजोको हराकर भारतको आजाद कराना था। 'स्वराज्य' शब्द तो उस समय कानमे भी नही पडा था। इस सुधारकी धुनमे मै अपना होश खो वैठा। और जव गुप्त रूपसे उसे करनेका प्रवन्ध हो गया, तव झूठ-मूठ ही मैने अपने मनको समझा लिया कि अपनी वातको माता-पितासे छिपाना सत्यमे भटकना नही है।

नियत दिन आया। उस दिनकी अपनी हालतका वर्णन करना कठिन है। एक तरफ था 'सुधार' का उत्साह और जीवनमे एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करनेकी नवीनता, और दूसरी ओर चोरकी भाति छिपकर काम करनेकी शर्म। मैं नही कह सकता कि इसमे किसकी प्रधानता थी। हम लोग नदी-किनारे एकान्तकी खोजमे चले। फिर जाकर ऐसा कोना तलाश किया, जहा कोई सहसा देख न सके, और वहा मैंने पहले-पहल मास देखा। साथ भटियारेके यहाकी डबल रोटी थी। दोमेसे एक भी चीज न भायी। मास चमडे-सा लग रहा था। खाना असम्भव हो गया, मुझे कै आने लगी। खाना बीचमे छोड देना पडा।

मेरी वह रात बडी कठिनाईसे कटी। नीद किसी तरह न आती थी। सपनेमे ऐसा मालूम होता था, मानो बकरा मेरे शरीरके भीतर जिंदा है और मैं-मैं करता है। मैं चौंक-चौंक उठता, पछताता, पर फिर सोचता कि मासाहारके बिना तो गति ही नही, यों हिम्मत नहीं हारनी है। मासाहार एक कर्तव्य है और मुझे हिम्मतसे काम लेना चाहिए।

५. आंखें खुलीं

मेरे मित्र हार माननेवाले न थे। उन्होंने अब मासको भाति-भातिसे पकाकर रुचिकर बनाना तथा सजाकर रखना शुरू किया। नदी-किनारेके बजाय किसी बावरचीसे साठ-गाठ करके गुप्त रूपसे राज्यके एक भवनमे ले जानेका प्रबन्ध किया। वहाके भोजन-भवन तथा मेज-कुर्सीके ठाट-बाटने मुझे लुभा लिया।

इसका ठीक असर पडा। रोटीसे जो नफरत थी, ढीली पड गयी। बकरेपरकी दया गायब हो गयी और मासका तो नही, पर मासवाले पदार्थोंका जीभको चसका लग गया। यो एक साल बीता होगा, और इतने समयमे पाच-छ बार मासाहारका मौका मिला होगा, क्योकि बार-बार दरबार-भवनका प्रबन्ध होना कठिन था और न सादा मासके स्वादिष्ट उत्तम पदार्थ तैयार हो सकते थे। इसके सिवा ऐसे भोजनोपर खर्च खासा बैठता था। मेरे पास तो कानी कौडी भी न थी। मैं देता क्या? इस खर्चका इन्तजाम तो उस मित्रके जिम्मे होता था। मुझे आजतक पता नहीं कि उसने क्या इन्तजाम किया था। उसका इरादा तो था मुझे मासकी चाट लगा देना, मुझे फसा देना। इसलिए खर्चका भार भी वह खुद उठाता था, पर उसके पास कोई कारूका खजाना तो था ही नही। इस कारण ऐसे खाने तो कभी-कभी ही सम्भव थे।

जब-जब ऐसे खानोंमें मैं शरीक होता, तब-तब घर खाना न खाया जाता। जब मा खानेको बुलाती तो बहाना बनाना पडता—"आज भूख नही है। खाना पचा नही।" हर बहानेके वक्त मेरे दिलको चोट लगती। यह झूठ और सो भी माके सामने! फिर यदि मा-बाप जान जाय कि लडका मासाहारी हो गया है, तब तो उनपर वज्रपात हो जायगा। ये विचार मेरे हृदयको कुतर रहे थे। इस कारण मैंने निश्चय किया कि यद्यपि मास खाना आवश्यक है, उसका प्रचार हिन्दुस्तानमें करके भोजन-सुधार करना है, पर माता-पितासे झूठ-कपट मासाहारसे भी बदतर है। अत माता-पिताके जीते-जी मास न खाऊगा, और तबतकके लिए मासाहार मुल्तवी। यह निश्चय मैंने अपने मित्रको सुना दिया, और तबसे मासाहार छूटा सो छूटा ही। माता-पिताने कभी न जाना कि उनके दो पुत्र मासाहार कर चुके हैं।

माता-पितासे झूठ-कपट न करनेके शुभ विचारसे मैंने मासाहार तो छोडा, परन्तु उस मित्रकी मित्रता न छोडी। मैं दूसरोंको सुधारने चला था और स्वय ही गड्ढेमें गिर गया और इस पतनका मुझे भानतक न रहा।

उसीकी सोहबतके कारण मैं व्यभिचारमें फस गया होता। एक बार यह मित्र मुझे चकलेमें ले गया। मैं मकानमें घुसा तो जरूर, पर जिसे भगवान् बचाता है, वह गिरना चाहते हुए भी पवित्र बना रह सकता है। मगर मेरी आखे इतनेसे भी न खुली। मुझे अबतक इस बातका भान ही न हुआ कि इस मित्रकी मित्रता अनिष्ट है। अभी और कटु अनुभव होना बाकी थे। यह तो मुझे तभी मालूम हुआ, जब मैंने उसमें वे प्रत्यक्ष दोष देखे, जिनसे मैं उसे अलिप्त मानता था।

इस समयकी एक बात कह देना जरूरी जान पडता है। हम दम्पती-के बीच होनेवाले मतभेद और कलहका कारण यह मित्रता भी थी। मैं जितना प्रेमी पति था, उतना ही वहमी भी। मेरा वहम बढानेवाली यह मित्रता थी, क्योंकि मित्रकी सच्चाईपर मुझे जरा भी अविश्वास न था। इस मित्रकी बातें मानकर मैंने अपनी पत्नीको कितने ही कष्ट दिये। उस हिंसाके लिए मैंने कभी अपनेको क्षमा नही किया। हिन्दू स्त्री ही ऐसे दु खोको सहन कर सकती है और इसीलिए मैंने स्त्रीको सदा सहन-शीलताकी मूर्ति माना है। नौकरपर यदि झूठा शक किया जाय तो वह नौकरी छोड जाता है, पुत्रपर किया जाय तो वह बापका घर छोट-कर चला जाता है, मित्रोंमें परस्पर सन्देह उत्पन्न होनेपर मित्रता टूट जाती है, पत्नीको यदि पतिपर शक हो तो उसे मन मसोसकर बैठ रहना पडता है, पर यदि पतिका पत्नीपर सन्देह हो जाय तो बेचारीके भाग्य ही फूटे समझने चाहिए। वह कहाँ जाय? उच्च माने जानेवाले वर्णकी हिन्दू

स्त्री अदालतमें जाकर तलाक नहीं दे सकती। उसके लिए एक-तरफा न्याय रखा गया है। मेरा यह सलूक ऐसा था कि इसका दुःख मैं कभी नहीं भूल सकता।

इस सन्देहका सर्वथा नाश तो तभी हुआ, जब मुझे अहिंसाका सूक्ष्म ज्ञान हुआ या कहिये तब, जब मैंने ब्रह्मचर्यकी महिमा समझी और समझा कि पत्नी पतिकी दासी नहीं, बल्कि सहधर्मिणी है। दोनों एक-दूसरेके सुख-दुःखके समान भागीदार हैं और जितनी स्वतन्त्रता पतिको बुरा-भला करनेकी है, उतनी ही पत्नीको भी है। इस सन्देह-कालकी जब मुझे याद आती है, तब मुझे अपनी मूर्खता और विषयान्ध निर्दयतापर क्रोध और मित्र-विषयक अपनी अन्धतापर दया उपजती है।

६. चोरी और प्रायश्चित्त

मांसाहारके समयके और उसके पहलेके अपने कुछ दूषणोंका वर्णन करना भी अभी बाकी है। वे या तो विवाहके पहलेके है या कुछ ही बादके हैं।

अपने एक रिश्तेदारकी सोहबतमें मुझे सिगरेट पीनेका शौक हुआ। पैसे तो हमारे पास थे नहीं। सिगरेट पीनेके किसी फायदे या उसकी गन्धके मजेसे हम दोनोंमेंसे कोई भी परिचित नहीं था, पर धुआं उड़ानेमें ही कुछ मजा आता था। मेरे चाचाजीको सिगरेटकी आदत थी, और उन्हें तथा औरोंको धुआं उड़ाते हुए देखकर हमें भी 'फूंक लेनें' का शौक हुआ। पैसे पास न होनेके कारण हमने चाचाजीकी सिगरेटोंके फेंके जूठे हिस्सोंको चुराना शुरू किया।

परन्तु ये टुकड़े कुछ हमेशा नहीं मिल पाते थे, और उसमेंसे ज्यादा धुआं भी नहीं निकल सकता था। इसलिए नौकरोंकी जेबोंमें पड़े दो-चार पैसोंमेंसे एकाध हम बीच-बीचमें चुराने लगे और उससे सिगरेट पीने लगे, पर छिपाकर रखनेकी समस्या सामने आयी। इतना ख्याल था कि बड़े-बूढ़ोंके सामने सिगरेट पीना सम्भव नहीं है। ज्यों-त्यों दो-चार पाई-पैसे चुराकर कुछ हफ्ते काम चलाया। इसी बीच सुना कि एक पौधा (जिसका नाम भूल गया) होता है, जिसका डंठल सिगरेटकी तरह जलता है और वह पिया जा सकता है। हमने उसे लाकर धुआं उड़ाना शुरू किया।

पर हमें सन्तोष न हुआ। अपनी पराधीनता हमें खलने लगी। यह बड़ा कष्टदायक जान पड़ता कि बड़ोंकी आज्ञाके बिना कुछ भी न हो सके।

हम बहुत परेशान हो गये और अन्तको आत्महत्या करनेका निश्चय किया।

परन्तु आत्महत्या कैसे करे ? जहर कहाँसे लायें ? हमने सुना कि धतूरेके बीजसे मृत्यु होती है। जगलमें घूम-फिरकर बीज लाये। खानेका समय शामको रखा। केदारजीके मन्दिरकी दीपमालामें घी चढाया, दर्शन किये और फिर एकान्तमे चले गये, पर जहर खानेकी हिम्मत न हुई। तत्काल मृत्यु न हो तो ? मरनेसे क्या लाभ होगा ? पराधीनतामे ही क्यो न पडे रहे ? ये विचार मनमे आने लगे। फिर भी दो-चार बीज खा ही डाले, पर ज्यादा खानेकी हिम्मत न हुई, दोनो मौतसे डर गये। निश्चय किया कि चलकर रामजीके मन्दिरमे दर्शन करे और शान्तिसे बैठे एव आत्महत्याकी बात मनसे भुला दे।

तब मैंने समझ लिया कि आत्महत्याका विचार करना सरल है, पर आत्महत्या करना नही। इससे जब कोई आत्महत्या करनेकी धमकी देता है, तब मुझपर उसका बहुत कम असर होता है या यह भी कह सकता हू कि बिलकुल नही होता।

आत्महत्याके निश्चयका एक परिणाम यह हुआ कि हमारी जूठी सिगरेट पीनेकी, नौकरोंके पैसे चुरानेकी और उससे सिगरेट खरीदकर पीनेकी आदत ही जाती रही। बडा होनेपर मुझे कभी सिगरेट पीनेकी इच्छा-तक नही हुई, और मैं सदा इस आदतको जगली, हानिकारक और गन्दी मानता आया हू। अबतक मैं यह समझ ही नही पाया कि सिगरेट-बीडीका इतना जबरदस्त शौक दुनियामे क्यो है ? रेलके जिस डिब्बेमे बीडी-सिगरेटका धुआ उडता है, वहा बैठना मेरे लिए कठिन हो जाता है और उसके धुएसे मेरा दम घुटने लगता है।

सिगरेटके टुकडे और उसके लिए नौकरोंके पैसे चुरानेके अपराधके सिवा चोरीका एक और जो अपराध मुझसे बन पडा, उसे मैं अधिक गम्भीर मानता हू। सिगरेटके अपराधके दिनो तो मेरी उम्र १२-१३ वर्षकी होगी, शायद इससे भी कम हो। दूसरी चोरीके समय पन्द्रह सालकी रही होगी। यह चोरी थी मेरे मासाहारी भाईके सोनेके कडेमे सोना चुरानेकी। उन्होने २५) रु० के लगभग कर्ज कर लिया था। हम दोनो भाई उसे चुकानेके चक्करमे थे। मेरे भाईके हाथमे सोनेका एक ठोस कडा था। उसमेंसे तोलाभर काट लेना कठिन न था।

कडा कटा और कर्ज पट गया, पर मेरे लिए यह बात असह्य हो गयी। आगे चोरी न करनेका मैंने निश्चय किया। यह भी सोचा कि पिताजीके सामने इसे कबूलना चाहिए, पर जबान खुलनी कठिन थी। यह डर तो

नहीं था कि पिताजी मुझे पीटेंगे, क्योंकि याद नहीं पड़ता कि उन्होंने हम भाइयोंमेंसे किसीको कभी पीटा हो, पर यह डर जरूर था कि वह खुद बड़े दुखी होंगे और शायद अपना सिर भी धुन डालें! पर सोचा कि यह खतरा उठाकर भी अपना दोष स्वीकार करना ही उचित है! ऐसा लगा कि इसके बिना शुद्धि नहीं होगी।

अन्तमें मैंने पत्र लिखकर अपना दोष स्वीकार करते हुए माफी मांगनेका निश्चय किया। मैंने पत्र लिखकर अपने हाथसे उन्हें दिया। पत्रमें सब दोष स्वीकार किया था और दण्ड मांगा था। विनय की थी कि मेरे अपराधके लिए अपनेको कष्टमें न डालें और प्रतिज्ञा की थी कि भविष्यमें ऐसा अपराध फिर न करूंगा।

मैंने कांपते हाथों यह पत्र पिताजीके हाथमें दिया। मैं उनके तख्तके सामने बैठ गया। इन दिनों उन्हें भगदर रोग उभरा हुआ था, इसलिए वह बिस्तरेपर ही पड़े रहते थे। खाटके बदले तख्त काममें लाते थे।

उन्होंने पत्र पढ़ा। आंखोंसे मोतीकी बूंदें टपकीं, पत्र भीग गया। तनिक देरके लिए उन्होंने आंखें मूंदीं और पत्र फाड़ डाला, और पत्र पढ़नेको बैठे हुए थे सो फिर लेट गये।

मैं भी रोया। पिताजीकी पीड़ाका मैंने अनुभव किया। यदि मैं चितेरा होता तो आज भी वह चित्र हूबहू खींचकर रख देता। मेरी आंखोंके सामने आज भी वह दृश्य नाच रहा है।

इस मुक्ता-बिन्दुओंके प्रेम-बाणने मुझे बींध दिया। मैं शुद्ध हो गया। उस प्रेमको तो वही जान सकता है जिसे उसका अनुभव हुआ है।

राम-बाण वाग्यां रे होय ते जाणे।

मेरे लिए यह अहिंसाका पदार्थ-पाठ था। उस समय तो मुझे इसमें पितृ-प्रेमका ही अनुभव हुआ था, पर आज मैं इसे शुद्ध अहिंसाका नाम दे सकता हूं। ऐसी अहिंसाके व्यापक रूप धारण करनेपर उससे कौन अछूता रह सकता है? ऐसी व्यापक अहिंसाकी शक्तिका अनुमान करना शक्तिसे परे है।

ऐसी शान्तिमय क्षमा पिताजीके स्वभावके प्रतिकूल थी। मैंने सोचा था कि वह गुस्सा होंगे, फटकारेंगे, शायद अपना सिर भी धुन लें, पर उन्होंने तो असीम शान्तिका परिचय दिया। मैं समझता हूं कि वह दोषकी शुद्ध हृदयसे की गयी स्वीकृतिका परिणाम था। जो मनुष्य अधिकारी व्यक्तिके सामने स्वेच्छापूर्वक अपने दोष शुद्ध हृदयसे कह देता है और फिर कभी न करनेकी प्रतिज्ञा करता है, वह मानो शुद्धतम प्रायश्चित्त करता है। मैं

जानता हूं कि मेरे इस इकरारसे पिताजी मेरे सम्बन्धमे निर्भय हो गये और उनका प्रेम मेरे प्रति और भी बढ गया है।

७. धर्मकी झलक

राजकोटमे मुझे सब सम्प्रदायोके प्रति समानभाव रखनेकी शिक्षा अनायास मिली। मैंने हिन्दू-धर्मके प्रत्येक सम्प्रदायके प्रति आदर-भाव रखनेकी तालीम पायी, क्योंकि माता-पिता वैष्णव-मन्दिर जाते, शिवालय जाते तथा राम-मन्दिर भी जाते और हम भाइयोंको भी ले जाते अथवा भेज देते थे।

इसके सिवा पिताजीके पास जैन-धर्माचार्योंमेंसे कोई-न-कोई सदैव आते रहते। पिताजी भिक्षा देकर उनका आदर-सत्कार भी करते। वे पिताजीके साथ धर्म तथा व्यवहार-चर्चा किया करते। इसके सिवा पिताजीके मुसलमान तथा पारसी मित्र भी थे। बहुत बार ये अपने-अपने धर्मकी बात सुनाया करते और पिताजी आदर व प्रेमके साथ उनकी बातें सुनते। ऐसी चर्चाके समय मैं उनका शुश्रूषक होनेके कारण प्राय ही उपस्थित रहता था। इस सारे वातावरणके प्रभावसे मेरे मनमें सब धर्मोंके प्रति समभाव पैदा हुआ।

इस प्रकार मेरे मनमें अन्य धर्मोंके प्रति समभाव आया। यह नहीं कह सकता कि उस समय ईश्वरके प्रति मेरे मनमे कुछ आस्था थी, लेकिन एक बातने मेरे मनमे जड जमा ली। वह यह कि ससार नीतिपर स्थिर है, नीतिमात्रका समावेश सत्यमें है, पर सत्यकी खोज अभी बाकी है। दिन-दिन सत्यकी महिमा मेरी दृष्टिके सामने बढती गयी, सत्यकी व्याख्या विस्तार पाती गयी और अब भी पाती जा रही है।

उस समय नीतिविषयक एक छप्पयने मेरे हृदयमे घर कर लिया। अपकारका बदला अपकार नही वरन् उपकार ही होना चाहिए, यह वस्तु जीवन-सूत्र बन गयी। उसने मेरे मनपर अपनी सत्ता जमानी शुरू कर दी। अपकारीका भला चाहना और करना इसका मैं अनुरागी बन गया। उसके अगणित प्रयोग किये। वह चमत्कारी छप्पय यह है

पाणी आपने पाय, भलु भोजन तो दीजे,
आवी नमावे शीश, दण्डवत कोडे कीजे।
आपण घासे दाम, काम महोरोनु करीए;
आप उगारे प्राण, ते तणा दुखमा मरीए।

गुण केडे तो गुण दश गणो, मन वाचा कर्मे करी;
अवगुण केडे जे गुण करे, ते जगमां जीत्यो सही ।*

८. तीन प्रतिज्ञाएं

मैंने १८८७ ईस्वीमें मैट्रिककी परीक्षा पास की। उस समय बम्बई और अहमदाबाद दो परीक्षा-केन्द्र थे। देशकी और हमारे कुटुम्बकी गरीबीका यह हाल था कि मेरी स्थितिके काठियावाड़ीको नजदीकी और सस्ते अहमदाबादको पसन्द करना स्वाभाविक था। राजकोटसे अहमदाबाद मैंने यह पहली बार यात्रा की।

बड़ोंकी यह इच्छा थी कि पास होनेपर कालेजमें आगे पढ़ूं। कालेज बम्बईमें भी था और भावनगरमें भी, लेकिन कमखर्चीके ख्यालसे भावनगरके शामलदास कालेजमें पढ़नेका निश्चय हुआ। वहां सब कुछ मुझे मुश्किल लगने लगा। अध्यापकके व्याख्यानोंमें मुझे रस न आता न वे समझमें ही आते। उसमें अध्यापकोंका दोष न था, बल्कि मेरी पढ़ाई ही कच्ची थी। उस समयके शामलदास कालेजके अध्यापक तो प्रथम श्रेणीके समझे जाते थे। पहला टर्म (सत्र) पूरा करके घर आया।

हमारे कुटुम्बके पुराने मित्र और सलाहकार एक विद्वान् व्यवहार-कुशल ब्राह्मण—मावजी दवे थे। उन्होंने हमें सलाह दी—"अब समय बदल गया है। तुम भाइयोंमेंसे यदि कोई कबा गांधीकी गद्दी लेना चाहे तो वह बिना पढ़ाईके सम्भव नहीं है। मेरी राय है कि मोहनदासको आप इसी साल विलायत भेज दें। वहां तीन साल रहकर बैरिस्टर बन जायगा' और मेरी ओर देखकर पूछा—

"तुम्हें विलायत जाना पसन्द है या यहीं पढ़ते रहना ?"

* इनका हिन्दी-अनुवाद इस प्रकार है :

जो हमको जलपान करावे, उनको भोजन दीजे,
अपनेको जो शीश नवावे, उसे दण्डवत कीजे।

पैसे जो दे हमें, उसे मोहर दे देना,
और बचावे प्राण, दुःखमें उसके मरना।
गुणके बदले दसगुना, जो मन वाचा कर्म से,
अवगुण करते गुण करे, जगजीता इस धर्म से।

'जो भावे वही वैद बतावे !' मैं कालेजकी कठिनाइयोंमे यो ही तग आ गया था। मैने कहा—"विलायत भेजे तो बहुत ही अच्छा।" पर बड़े भाई उलझनमे पड़े। पैसोका क्या प्रबन्ध हो ? फिर इस उम्रमे इतनी दूर कैसे भेज दे ?

माताजीको कुछ न सूझ पडा। दूर भेजनेकी बात ही उन्हे नही रुची। उन्होने विलायत-जीवनके सम्बन्धमे पूछताछ शुरू की। कोई कहता था, नवयुवक विलायत जाकर बिगड जाते है। कोई कहता था, मास खाते है। कोई कहता, वहा शरावके बिना काम ही नही चलता। माताने यह सब मुझे सुनाया। मैने समझाया—"तुम मुझपर विश्वास रखो, मैं विश्वास-घात नही करूगा। मैं सौगन्ध खाकर कहता हू कि मैं इन तीनोसे बचूगा। और अगर ऐसी जोखिम होती तो जोशीजी क्यो जानेकी सलाह देते ?"

मा बोली—"मुझे तो विश्वास है, पर दूर देशमे तेरा कैसे क्या होगा ? मेरी तो अकल काम नही करती। मैं बेचरजी स्वामीसे पूछूगी।"

बेचरजी स्वामी मोढ बनिये थे, जो जैन साधु हो गये थे। जोशीजीकी तरह वह भी हमारे सलाहकार थे। उन्होने मेरी मदद की। उन्होने कहा—"मैं इससे तीन चीजोके बारेमे प्रतिज्ञा करा लूगा। फिर उसे जाने देनेमें कोई हर्ज नही।" तदनुसार मैने मास, मदिरा और स्त्रीसे दूर रहनेकी प्रतिज्ञा की। तब माताने जानेकी आज्ञा दे दी।

मेरे विलायत जानेके उपलक्ष्यमें हाईस्कूलमे विद्यार्थियोकी सभा हुई। राजकोटका एक युवक विलायत जा रहा है, इसपर सबको आश्चर्य हो रहा था। जवाबमे कुछ लिखकर ले गया था। पर उसे मुश्किलसे पढ सका। इतना मुझे याद है कि सिर चकरा रहा था और बदन काप रहा था।

९. पहला अनुभव

४ सितम्बर सन् १८८८ को मैने बम्बई बन्दर छोडा। जहाजमे मुझे सामुद्रिक कष्ट तो कुछ भी न उठाना पडा। पर ज्यो-ज्यो दिन जाते, मैं परेशान हो रहा था। स्टुअर्ट(जहाजके भोजन-परिचारक)के साथ बोलते हुए झेंपता, क्योंकि अग्रेजीमे बातचीत करनेकी आदत न थी। मेरे एक साथी मजूमदारको छोडकर, जो राजकोटके वकील थे और बैरिस्टर होने विलायत जा रहे थे, बाकी सब यात्री अग्रेज थे। उनके सामने बोलते न बनता था। वे मुझसे बोलनेकी चेष्टा करते, तो उनकी बात मेरी समझमे न आती और यदि समझ भी लेता तो जवाब देना न सूझता। हर वाक्य बोलनेके पहले मनमे जमाना पडता था। छुरी-काटेसे खाना न आता था और पूछनेका

साहस ही न होता कि इसमें बिना मासकी चीजें क्या-क्या हैं ? इस कारण मैं भोजनकी मेजपर तो कभी गया ही नही। केबिन—कोठरी—में ही खा लेता था। अपने साथ जो मिठाइया वगैरा ले गया था, उन्हींपर गुजर किया। मजूमदारको तो कोई झिझक न थी। वह सबके साथ हिल-मिल गये। डेकपर भी जहा जी चाहे घूमते-फिरते। मैं तो दिनभर केबिनमें पडा रहता। डेकपर जब लोगोंकी भीड कम देखता, तब थोडी देरके लिए जाकर वहा बैठ जाता। मजूमदार मुझे समझाते कि सबके साथ मिला-जुला करो। कहते कि वकीलको तो बातूनी होना चाहिए। वकीलकी हैसियत-में वह अपना अनुभव भी सुनाते। कहते—"अग्रेजी हमारी मातृभाषा नहीं है। इसलिए बोलनेमें भूलें होगी ही। बोलनेमें सकुचाना नही चाहिए।" परन्तु मैं अपनी भीरुता नही छोड पाता था।

मुझपर तरस खाकर एक भले अग्रेजने मुझसे बातचीत करना शुरू किया। मैं क्या खाता हू, कौन हू, कहाँ जा रहा हू, क्यों किसीके साथ बात-चीत नही करता, इत्यादि सवाल पूछे। मुझे खानेमें साथ आनेको कहा। मास न खानेके मेरे आग्रहकी बात सुनकर वह हसे और मुझपर रहम खाकर बोले—"यहा तो (पोर्ट सईद पहुँचनेके पहले) सब ठीक-ठाक है, परन्तु बिस्केकी खाडीमें पहुचनेपर तुम्हें अपने विचार बदलने पडेंगे। इग्लैंडमें तो इतनी ठड पडती है कि मासके बिना काम चल ही नही सकता।"

मैंने कहा—"मैंने तो सुना है कि वहा लोग बिना मासाहारके रह सकते हैं।"

वह बोले—"यह झूठ है। जान-पहचानवालोंमें कोई निरामिषभोजी नही है। मैं शराब पीनेके लिए तुमसे नही कहता, पर मैं समझता हूँ मास तो तुम्हे अवश्य खाना चाहिए।"

मैंने कहा—"आपकी सलाहके लिए मैं आपका आभारी हू, पर मासा-हार न करनेकी अपनी मातासे प्रतिज्ञा कर चुका हू। यदि उसके बिना निर्वाह हो ही न सका तो मैं वापस हिन्दुस्तान लौट जाऊगा, पर मास तो हरगिज नही खाऊगा।"

बिस्केकी खाडी आयी। वहाँ भी मुझे न तो मासकी आवश्यकता मालूम हुई न मदिराकी ही।

दुख-सुख सहते यात्रा पूरी करके साउदेम्पटन बन्दरपर आ पहुचे। मुझे याद पडता है उस दिन शनिवार था। मैं जहाजपर काले कपडे पहनता था। मित्रोंने मेरे लिए सफेद फ्लालैनका सूट भी बनवा दिया था। विलायत-में उतरनेपर उसे पहननेका निश्चय किया। यह समझकर कि सफेद कपडे ज्यादा अच्छे लगेंगे, यह सूट पहनकर मैं जहाजसे उतरा। सितम्बरके अन्तिम

दिन थे। ऐसे कपडोंमें मैंने अकेले अपनेको ही वहाँ पाया। मेरे सन्दूक और उनकी कुंजियाँ ग्रिडले कम्पनीका एजेण्ट ले गया था। जैसा और लोग करते हैं, वैसा मुझे भी करना चाहिए, यह समझकर मैंने अपनी तालियाँ भी उन्हे दे दी थी।

मेरे पास चार परिचय-पत्र थे—एक डाक्टर प्राणजीवन मेहताके नाम, दूसरा दलपतराय शुक्लके नाम, तीसरा प्रिंस रणजीतसिंहजीके नाम और चौथा दादाभाई नौरोजीके नाम। किसीने सलाह दी थी कि विक्टोरिया होटलमें ठहरना ठीक होगा। इसलिए मजूमदार और मैं वहा गये। मैं तो अपनी सफेद कपडोंकी शर्मसे ही दबा जा रहा था। फिर होटलमें जाकर खबर लगी कि कल रविवार होनेके कारण सोमवारतक ग्रिडलेके यहांसे सामान नही आयेगा। इससे मैं बडी परेशानीमें पड गया।

मैंने साउदेम्पटनसे ही डाक्टर मेहताको तार दे दिया था। वह सात-आठ बजे आये। उन्होंने प्रेमपूर्ण विनोद किया। बातों-बातोंमें मैंने अनजाने उनकी रेशमी रोयेंदार टोपी देखनेके लिए उठा ली और उसपर उल्टा हाथ फेरने लगा। टोपीके रोयें सीधे हो गये। डाक्टर मेहताने देखा। तुरन्त ही मुझे रोका, पर अपराध तो हो ही चुका था। उनके रोकनेका इतना ही नतीजा हुआ कि भविष्यमें ऐसा अपराध न हो।

यहींसे यूरोपियन रीति-रिवाजकी शिक्षाका श्रीगणेश हुआ। डाक्टर मेहता हंस-हंसकर बहुतेरी बातें समझाते जाते थे। किसीकी चीज नहीं छूनी चाहिए, किसीसे जान-पहचान होते ही जो बातें हिन्दुस्तानमें सहज ही पूछी जा सकती है, वे यहा नही पूछनी चाहिए। बातें करते हुए जोरसे नही बोला जाता। हिन्दुस्तानमें साहबोंके साथ बातें करते हुए 'सर' कहनेका जो रिवाज है, वह अनावश्यक है। यहा 'सर' तो नौकर अपने मालिकको अथवा अपने अफसरोंको कहता है, आदि। फिर उन्होंने होटलमें रहनेके खर्चपर भी बातें की और बताया कि किसी कुटुम्बके साथ रहना ठीक होगा। इस सम्बन्धमें अधिक विचार सोमवारतकके लिए स्थगित रहा।

होटल तो हम दोनोंको सासत-घर-सा लगा। यह होटल था भी महंगा। माल्टासे एक सिन्धी सज्जन सवार हुए थे। उनसे मजूमदारकी अच्छी पट गयी थी। सिन्धी यात्री लन्दनके अच्छे जानकार थे। उन्होंने हमारे लिए किरायेपर दो कमरे ले लेनेका भार उठाया। हमने स्वीकृति दी और सोमवारको सामान मिलते ही होटलका बिल चुकाकर उन कमरोंमें चले गये। मुझे याद है कि होटलका बिल लगभग तीन पौंड मेरे हिस्सेमें आया था। मैं तो भौंचक्का रह गया। तीन पौंड देकर भी भूखा ही रहा! वहाका कोई खाना न रुचा। एक चीज ली, नही रुची, दूसरी ली। पर पैसे तो दोनोंके

ही चुकाने पड़े। मैं अभीतक प्राय बम्बईसे लाये अपने खानेके सामानपर ही दिन काट रहा था।

उस कमरेमे भी मैं बड़ा परेशान रहा। देश बहुत याद आता था। माताका प्रेम आखोंके सामने नाचता था। रात होते ही रोना शुरू होता। घरकी अनेक प्रकारकी बाते याद आती। उनसे नींद भला कहाँ आ पाती? अपनी यह दु ख-गाथा किसीसे कह भी तो नही सकता था। कहनेसे लाभ भी क्या था? मैं खुद न जानता था कि मुझे काहेसे सन्तोष मिलेगा। लोग निराले, रहन-सहन निराली, मकान भी निराले और घरोंमे रहनेका तौर-तरीका भी निराला। फिर यह भी अच्छी तरह नही मालूम कि क्या बोलनेसे अथवा क्या करनेसे यहाके शिष्टाचारका भग होता है। इसके अलावा खान-पानके परहेज अलग और जिन चीजोको मैं खा सकता था, वे रूखी-सूखी मालूम होती थी। इस कारण मेरी हालत साप-छछून्दर जैसी हो गयी। इधर विलायतमे अच्छा नही लगता था, उधर देश भी वापस नही लौट सकता था। विलायत आया तो था तीन साल बितानेका इरादा रखकर ही।

१०. प्रतिज्ञाने रक्षा की

डॉक्टर मेहता सोमवारको विक्टोरिया होटलमे मुझसे मिलने गये। वहा उन्हे हमारे नये मकानका पता लगा। वह वहा आये। हमारा कमरा आदि देखा और गर्दन हिलायी—"यह जगह कामकी नही है। इस देशमे आकर महज पुस्तके पढनेकी अपेक्षा यहाका अनुभव प्राप्त करना ज्यादा जरूरी है। इसके लिए किसी कुटुम्बमे रहनेकी जरूरत है, पर फिलहाल कुछ बाते सीखनेके लिए बतौर उम्मीदवारके के यहा रहनेकी बात मैंने ठीक की है। मैं तुम्हें उनके यहा ले चलूगा।"

मैंने सधन्यवाद उनकी बात मान ली और डॉक्टर मेहताके साथ उन मित्रके यहा गया। उन्होंने मेरी खातिर-तवाजामे किसी बातकी कसर न रखी। मुझे भाईकी तरह रखा, अग्रेजी रीति-रिवाज सिखाये। अग्रेजीमे बातचीत करनेकी आदत भी उन्होने ही डलवायी।

परन्तु मेरे भोजनका सवाल बड़ा विकट हो गया। बिना नमक, मिर्च और मसालेका साग भाता नही था। मालकिन बेचारी मेरे लिए पकाती भी क्या? सबेरे जईका दलिया बनाती, उससे तो मेरा पेट भर जाता, पर दोपहरको और शामको हमेशा भूखा रहता। मित्र मासाहार करनेको रोज समझाते। मैं प्रतिज्ञाकी बाधा बताकर चुप ही रहता। वह रोज दलीलें

दिया करते। सो दुःखोंको हरनेवाली एक दवा 'नहीं' मेरे पास थी। मित्र ज्यों-ज्यों मुझे समझाते, त्यों-त्यों मेरी दृढता बढती जाती। रोज मैं ईश्वरसे रक्षाकी प्रार्थना करता और रोज वह पूरी होती। मैं यह तो नही जानता था कि ईश्वर क्या चीज है, पर श्रद्धा अपना काम कर रही थी।

एक दिन उन मित्रने मेरे सामने वेथमकी पुस्तक पढनी शुरू की। उपयोगितावादका विषय पढा। मैं घबराया। भाषा ऊची थी। मैं बडी कठिनाईसे समझता था। उन्होंने उसका विवेचन किया। मैंने उत्तर दिया—"क्षमा चाहता हू। मैं इतनी बाते नही समझ सकता। मैं मास खानेकी उपयोगिता स्वीकार करता हू, परन्तु प्रतिज्ञाके बन्धनको मैं नही तोड सकता। इसके सम्बन्धमें वाद-विवाद भी नही करना चाहता। मैं जानता हू कि तर्कमें भी आपसे नही जीत सकता, पर मुझे मूर्ख समझकर, या हठी समझकर ही इस बारेमें क्षमा कीजिये। आपके प्रेमका मैं कायल हू। आपका उद्देश्य समझता हू और आपको मैं अपना परम हितेच्छु मानता हू। यह भी देखता हू कि आपको मेरी हालतपर दुःख होता है, पर मैं विवश हू। प्रतिज्ञा नही टूट सकती।"

मित्र देखते रह गये। उन्होंने पुस्तक बन्द कर दी। "बस, अब मैं दलील नही करूगा"—कहकर वह चुप हो गये। मैं खुश हुआ। इसके बाद उन्होंने बहस करना छोड दिया।

पर मेरे विषयमें उनकी चिन्ता दूर न हुई। वह सिगरेट पीते थे, शराब पीते थे, पर इनमेंसे एकके लिए भी मुझसे नही कहा। उलटे उसे न करनेकी हिदायत दी। पर उनकी सारी चिन्ता यह थी कि मासाहारके बिना मैं कमजोर हो जाऊगा और इग्लैंडमें आजादीसे न रह सकूगा।

यों महीनाभर मैं नौसिखिया बनकर रहा।

११. सभ्य बननेके प्रयत्नमें

अबतक मेरे विषयमें मित्रोंकी चिन्ता दूर नही हुई थी। उन्होंने प्रेमवश यह मान लिया था कि मासाहार न करनेसे मैं कमजोर हो जाऊगा, इतना ही नही बल्कि भोदू रह जाऊगा, क्योंकि मासाहार न करनेसे अग्रेज-समाजमें मिल-जुल न सकूगा। मेरे अन्नाहार-सम्बन्धी पुस्तकें पढनेका उनको पता था। उन्हें शका हुई कि इन विषयोंको पढकर मैं सनक जाऊगा और प्रयोगमें मेरा जन्म व्यर्थ जायगा। मैं कर्तव्य-च्युत हो जाऊगा और एक पढा-लिखा मूर्ख ही रहूगा।

पर अब मेरे मनमें यह आया कि मुझे उनकी परेशानी दूर कर देनी चाहिए। मैंने निश्चय किया कि मैं अपनेको जगली न कहलाने दूगा, सभ्योंके

लक्षण सीखूगा और दूसरी तरहसे समाजमे सम्मिलित होनेके योग्य वनकर अपने अन्नाहारकी विचित्रतापर पर्दा डालूगा। इसीलिए अव मैंने 'अंग्रेजी-सभ्यता' सीखनेका मार्ग पकडा।

मेरे कपडे थे तो विलायती, परन्तु वम्वई-काटके थे। वे उच्च अंग्रेजी-समाजमे न फवेंगे, इस विचारसे मैंने 'आर्मी और नेवी' स्टोरमे दूसरे कपडे वनवाये। उन्नीस शिलिगकी 'चिम' की हैट (टोपी) ली। इससे भी सन्तोष न हुआ तो वाण्ड स्ट्रीटमे, जहा शौकीन लोगोंके कपडे सिलते थे, दस पौंडको दियासलाई दिखाकर शामको पहननेके कपडे वनवाये। सीधे और शाहदिल वडे भाईसे खासतौरपर दोनो जेवोंमे लटकायी जानेवाली असली सोनेकी चेन मगवायी। वह भी आयी। तैयार वधी टाई पहननेका रिवाज न था। इसलिए टाई वाधनेकी कला सीखी। देशमे तो आईना सिर्फ हजामतके दिन ही देखनेका काम पडता था, पर यहा तो वडे आईनेके सामने खडे रहकर टाई ठीक-ठीक वाधनेमे और वालोकी पटिया पारने और माग काढनेमे दस मिनट वरवाद होते थे। फिर मेरे वाल मुलायम न थे। उन्हे ठीक-ठीक सवारे रखनेके लिए व्रुशके साथ नित्य लडाई होती और टोपी पहनते और उतारते समय हाथ तो मानो माग सवारनेके लिए सिरपर पहुचते ही रहते थे। इसके सिवा जव कभी सभ्य समाजमे वैठता, तो माँगपर हाथ फेरकर वालोको दुरुस्त रखनेकी सभ्य क्रिया होती रहती थी।

परन्तु इतनी टीप-टाप ही वस न थी। अकेली सभ्य पोशाकसे थोडे ही कोई सभ्य हो जाता है! इसलिए सभ्यताकी और भी कितनी ही ऊपरी वातें मालूम कर ली थी। अव उनमे कुछ प्रवीणता प्राप्त करनी थी। सभ्य पुरुषको नाचना जानना चाहिए, फ्रेंच भाषा अच्छी आनी चाहिए, क्योंकि फ्रेंच एक तो इग्लैंडके पडोसी फ्रासकी भाषा थी, दूसरे सारे यूरोपकी राष्ट्र-भाषा भी थी। फिर मुझे यूरोप-भ्रमण करनेकी भी इच्छा थी। इसके सिवा सभ्य पुरुषोको लच्छदार व्याख्यान देना भी आना चाहिए। मैंने नाचना सीख लेनेका निश्चय किया और क्लासमे भरती हुआ। एक तिमाहीके तीन पौंड फीसके दिये। कोई तीन सप्ताहमे पाच-छ पाठ पढे होंगे। ठीक ताल्पर पाव नही पडते थे। पियानो वजाता था, पर यह न जान पडता था कि यह क्या कह रहा है। 'एक, दो, तीन' का क्रम चलता, पर इनके वीचका अन्तर तो उस वाजेसे ही मालूम होता था, जो मेरे लिए अगम्य था। तो फिर? फिर तो वावाजीकी विल्लीवाली वात! चूहोंको मगानेके लिए विल्ली, और विल्लीके लिए गाय, होते-होते वावाजीका परिवार वढा। सोचा, वायलिन वजाना सीख लू, तो सुर और तालका ज्ञान हो जायगा। तीन पौंड वायलिन खरीदनेमे विगाडे और उसे सीखनेके लिए

भी कुछ दक्षिणा दी। भाषण-कला सीखनेके लिए तीसरे उस्तादका घर खोजा। उसे भी एक गिन्नीकी भेंट तो चढानी ही पडी। उसकी प्रेरणासे 'बेलका स्टैंडर्ड एलोक्युशनिस्ट' खरीदा। पिटके भाषणसे श्रीगणेश हुआ।

पर इन बेलसाहबने मेरे कानमे 'बेल' (घटी) बजायी। मैं जागा।

"मुझे कहा इग्लैंडमे जिन्दगी बितानी है ? लच्छेदार भाषण देना सीखकर भी क्या करूगा ? नाच-नाचकर मैं सभ्य कैसे बनूगा ? वायलिन तो देशमे भी सीखा जा सकता है। मैं विद्यार्थी हू। मुझे तो विद्या-धनके सग्रहमे लगना चाहिए, मुझे अपने धन्धेसे सम्बन्ध रखनेवाली तैयारी करनी चाहिए। अपने सदाचारसे मैं सभ्य समझा जा सकू तो अलबत्ता ठीक है, नही तो मुझे यह लोभ छोड देना चाहिए।"

इस धुनमे उपर्युक्त आशयका पत्र मैंने भाषण-शिक्षकको लिख भेजा। उससे मैंने दो या तीन पाठ ही पढे थे। नृत्य-शिक्षिकाको भी वैसा ही पत्र लिख भेजा। वायलिन-शिक्षिकाके यहा वायलिन लेकर पहुचा और उससे कह आया कि जो दाम मिले, लेकर बेच दो। उससे कुछ मित्रता-सी हो गयी थी, इसलिए उससे मैंने मोहका भी जिक्र कर दिया—नाच इत्यादि जजालसे छूट जानेकी बात उसे पसन्द आयी।

सभ्य बननेकी मेरी यह सनक तो कोई तीन महीने चली होगी, किन्तु कपडोकी तडक-भडक बरसोतक चलती रही। पर अब मैं विद्यार्थी बन गया था।

१२. सादगीकी ओर

कोई यह न समझे कि नाच आदिके मेरे प्रयोग मेरी स्वच्छन्दताके युगको सूचित करते हैं। पाठकोको ध्यानसे देखनेपर उसमे कुछ विचाराश भी मिलेगा। परन्तु इस मोह-कालमें भी कुछ अशतक मैं सावधान था। पाई-पाईका हिसाब रखता था। खर्चका अन्दाज निश्चित था कि महीनेमें पन्द्रह पौडसे अधिक खर्च न हो। बसका किराया और डाक-खर्च भी हमेशा लिखता और सोनेसे पहले हमेशा अपनी रोकड मिला लेता था। यह आदत अन्ततक कायम रही और मैं समझता हू कि इसी कारण मैं सार्वजनिक जीवनमे अपने हाथसे लाखो रुपयोका उलट-फेर करनेमें किफायतशारीसे काम ले पाया और जितने आन्दोलन मेरी देखरेखमें चले हैं, उनमें मुझे कर्ज नही लेना पडा, बल्कि हरएकमें कुछ-न-कुछ बचत ही रही है।

मैंने खर्च आधा कर डालनेका विचार किया। हिसाबको गौरसे देखा तो गाडी-भाडेका खर्च काफी बैठता था। फिर एक कुटुम्बके साथ

रहनेके कारण कुछ-न-कुछ खर्च प्रति सप्ताह हो ही जाता था। इसलिए कुटुम्बके साथ रहना छोड अलग कमरा लेकर रहनेका निश्चय किया और यह भी तय किया कि कामके अनुसार तथा अनुभव प्राप्त करनेके लिए अलग-अलग मुहल्लोंमें घर लेना चाहिए। घर ऐसी जगह पसन्द किया कि जहासे कामके स्थानपर आधे घटेमें पैदल चलकर पहुच सके और गाडी-भाडा बच जाय। इससे पहले जानेके लिए एक तो गाडी-भाडा खरचना पडता और दूसरे घूमने जानेके लिए अलग समय निकालना पडता। अब कामपर जानेमें ही घुमाईका काम भी पूरा होने लगा। इस तजवीजकी बदौलत आठ-दस मील तो मैं सहज हीमें घूम-फिर लेता था। विशेषत इसी एक आदतके कारण मैं विलायतमें शायद ही बीमार पडा होऊगा, और शरीर ठीक कस गया था। कुटुम्बके साथ रहना छोडकर मैंने दो कमरे किरायेपर लिये, एक सोनेके लिए और एक बैठकका। यह परिवर्तनका दूसरा दौर था। तीसरा परिवर्तन अभी आगे आनेवाला है।

इस तरह आधा खर्च बचा। पर समय ? मैं जानता था कि बैरिस्टरीकी परीक्षाके लिए बहुत पढनेकी जरूरत नहीं होती। इसलिए मैं निश्चित था। पर मेरी कच्ची अंग्रेजी मुझे खला करती थी। इसलिए मैंने सोचा बैरिस्टर होनेके अतिरिक्त मुझे और अध्ययन भी करना चाहिए। आक्सफोर्ड और केम्ब्रिजके कोर्सका पता लगाया। कितने ही मित्रोंसे मिला। देखा कि वहा जानेसे खर्च बहुत पडेगा और पाठ्य-क्रम भी बहुत लम्बा था। मैं तीन वर्षसे ज्यादा वहा रह नहीं सकता था। एक मित्रने कहा, "यदि तुम्हे कोई कठिन परीक्षा ही देनी हो, तो लन्दनका मैट्रिक्युलेशन पास कर लो। उसमें परिश्रम काफी करना पडेगा और सामान्य ज्ञान बढ जायगा, खर्चा बिलकुल न बढेगा।" यह राय मुझे पसन्द आयी पर परीक्षाकी विषय-सूची देखकर मैं घबराया। उसमें लैटिन और एक दूसरी भाषा अनिवार्य थी। लैटिन कैसे होगी ? पर उस मित्रने कहा, "वकीलके लिए लैटिनका बडा उपयोग होता है। फिर लैटिन जाननेवालेको कानूनी पुस्तकें समझनेमें सहूलियत होती है। फिर रोमन लॉकी परीक्षामें एक प्रश्न-पत्र तो केवल लैटिन भाषाका ही होता है और लैटिन जान लेनेसे अंग्रेजी भाषापर अधिकार बढता है।" मुझपर इन दलीलोंका असर हुआ। मैंने निश्चय किया और एक मैट्रिक्युलेशन क्लासमें भर्ती हुआ। परीक्षा हर छठे महीने होती थी। मुश्किलसे पाच महीनेका समय था। यह मेरे बूतेके बाहरका काम था, नतीजा यह हुआ कि कहा तो मैं सभ्य बनने चला था और कहा अत्यन्त उद्यमी विद्यार्थी बन गया। टाइम-टेबल बनाया। एक-एक मिनट बचाया। परन्तु मेरी बुद्धि और शक्ति ऐसी न थी कि दूसरे विषयोंके उपरान्त लैटिन

और फ्रेंचको भी सभाल सकता। इम्तहानमे बैठकर लैटिनमे फेल हो गया। इससे दुख तो हुआ, पर हिम्मत न हारी। लैटिनमे मजा आने लगा था। सोचा फ्रेंच ज्यादा मजबूत हो जायगी और विज्ञान मैं नया विषय ले लूगा। रसायन-शास्त्र, जिसमे मैं देखता हू कि खूब मन लगना चाहिए, प्रयोगोके अभावमे मुझे अच्छा ही न लगा। देशमे यह विषय मेरे पाठ्य-क्रममे रहा ही था। इसलिए लन्दन-मैट्रिकके लिए भी पहली बार इसीको पसन्द किया। उस बार 'प्रकाश और ऊष्मा' (Light and Heat) को लिया। यह विषय आसान समझा जाता था और मुझे भी आसान ही मालूम हुआ।

फिर परीक्षा देनेकी तैयारीके साथ ही रहन-सहनमे और भी सादगी लानेकी कोशिश शुरू की। मुझे लगा कि अभी मेरे जीवनमे इतनी सादगी नही आयी है, जो कुटुम्बकी गरीबीके अनुकूल हो। भाईसाहबकी तगदस्ती और उदारताका खयाल आते ही मुझे वडा कष्ट होता था। दस-पन्द्रह पौण्ड मासिक खर्च करनेवालोको तो छात्रवृत्तिया मिलती थी। अपनेसे अधिक सादगीसे रहनेवालोको मैं देखता था। ऐसे गरीब विद्यार्थी काफी तादादमे मेरे सम्पर्कमे आते थे। एक विद्यार्थी लन्दनके गरीब मुहल्लेमे प्रति-सप्ताह दो शिलिंग देकर एक कोठरीमे रहता था और लोकार्टकी सस्ती कोकोकी दूकानमे दो पेनीका कोको और रोटी खाकर गुजारा करता था। उसकी बराबरी करनेकी मेरी हिम्मत न हुई, पर इतना जरूर समझा कि मैं दोके बजाय एक कमरेमे ही गुजर कर सकता हू और आधी रसोई हाथसे भी पका सकता हू। ऐसा करनेसे प्रतिमास चार या पाच पौंडमे मैं रह सकता था। सादी रहन-सहन-सम्बन्धी पुस्तके भी पढी थी। दो कमरे छोडकर आठ शिलिंग प्रति सप्ताहपर एक कमरा लिया। एक स्टोव खरीदा और सवेरेका खाना हाथसे पकाने लगा। बीस मिनटसे अधिक पकानेमे नही लगता था। जौका दलिया और कोकोके लिए पानी उबालनेमे कितना समय लगता! दोपहरको बाहर कही खा लेता और शामको फिर कोको बनाकर रोटीके साथ खाता। यो एक या सवा शिलिंगमे रोज खाना-पीना सीख गया। मेरा यह समय अधिक-से-अधिक पढाईका था। जीवन सादा हो जानेसे समय ज्यादा बचने लगा। दूसरी बार इम्तहानमे बैठनेपर पास हो गया।

पाठक यह न समझे कि सादगीसे जीवनमे नीरसता आ गयी हो। उलटे इन परिवर्तनोसे मेरी आन्तरिक और बाह्य स्थितिमे एकता आ गयी। कौटुम्बिक स्थितिके साथ मेरे रहन-सहनका मेल सध गया। जीवन अधिक सारयुक्त हो गया, आध्यात्मिक आनन्दकी सीमा न रही।

१३. प्रलोभनसे बचा

जैसे-जैसे मैं जीवनके विषयमें गहरा विचार करता गया, वैसे-वैसे बाहरी और भीतरी आचारमें परिवर्तन करनेकी आवश्यकता मालूम होती गयी। जिस गतिसे मैंने रहन-सहनमें तथा खर्चमें परिवर्तन किया, उसी गतिसे अथवा और भी वेगसे मैंने भोजनमें फेर-फार करना आरम्भ किया। अन्नाहार-विषयक अंग्रेजी पुस्तकें मैंने देखी। विलायतमें ऐसे विचार रखनेवालोंकी एक संस्था थी। उसकी ओरसे एक साप्ताहिक पत्र भी निकलता था। मैं उसका ग्राहक बना और संस्थाका सदस्य भी। थोड़े ही समयमें मैं उसकी कार्यकारिणी कमेटीमें ले लिया गया। यहां मेरा उन लोगोंसे परिचय हुआ, जो अन्नाहारियोंके स्तम्भ माने जाते हैं। अब मैं अपने भोजन-सम्बन्धी प्रयोगोंमें पड़ा।

घरसे मंगायी हुई मिठाई और मसालेका व्यवहार बन्द कर दिया। मनका झुकाव दूसरी ओर हो गया। मसालोंका शौक जाता रहा, चाय और कॉफी छोड़ दी और ज्यादातर मैं रोटी, कोको और उबली हुई सब्जीपर ही गुजर करने लगा। मेरे इन प्रयोगोंसे मुझे यह अनुभव हुआ कि स्वादका असली स्थान जीभ नहीं, बल्कि मन है।

मैंने भिन्न-भिन्न धर्मोंका परिचय प्राप्त करनेकी कोशिश की। इस बीच दो थियासॉफिस्ट मित्रोंसे भेंट हुई। उन्होंने मुझे गीता पढ़नेकी प्रेरणा दी। उन दिनों वे एडविन एर्नाल्ड-कृत गीताका अंग्रेजी-अनुवाद पढ़ रहे थे, पर मुझे उन्होंने अपने साथ संस्कृतमें गीता पढ़नेके लिए कहा। मैं शरमाया, क्योंकि मैंने तो गीता संस्कृतमें तो क्या, गुजरातीमें भी नहीं पढ़ी थी। यह बात झेंपते हुए मुझे उनसे कहनी पड़ी, पर साथ ही यह भी कहा कि मैं आपके साथ पढ़नेके लिए तैयार हूं। यों तो मेरा संस्कृत-ज्ञान नहींके बराबर है, फिर भी मैं इतना समझ लेता हूं कि अनुवादमें कहीं गड़बड़ हो तो वह बता सकूं। इस तरह इन भाइयोंके साथ मेरा गीता-पाठ आरम्भ हुआ। दूसरे अध्यायके अन्तिम श्लोकोंमेंसे इन श्लोकोंका गहरा असर मेरे मनपर हुआ—

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद् भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥*

---

* विषयका चिन्तन करनेसे पहले तो उसके साथ संग पैदा होता है, और संगसे कामकी उत्पत्ति होती है। कामनाके पीछे क्रोध आता है। फिर क्रोधसे संमोह, संमोहसे स्मृति-भ्रम, स्मृति-भ्रमसे बुद्धिका नाश होता है और अन्तमें पुरुष खुद ही नष्ट हो जाता है।

कानोंमे उनकी ध्वनि दिन-रात गूंजा करती थी। तब मुझे मालूम हुआ कि भगवद्गीता तो अमूल्य ग्रन्थ है। यह धारणा दिन-दिन अधिक दृढ होती गयी—और अब तो तत्त्वज्ञानके लिए मै उसे सर्वोत्तम ग्रन्थ मानता हूं। निराशाके समय इस ग्रन्थने मेरी अपार सहायता की है।

इसी अर्सेमे एक अन्नाहारी-छात्रालयमे माचेस्टरके एक ईसाई सज्जनसे मेरी भेंट हुई। उनकी प्रेरणासे मैने बाइबिल पढी, परन्तु 'ओल्ड टेस्टामेंट' तो पढ ही न सका। वह मुझे कुछ जचा नही। पर जब 'न्यू टेस्टामेंट' शुरू किया, तब ईसाके गिरि-प्रवचनका मनपर बहुत जबरदस्त असर हुआ। उसने दिलमे घर कर लिया। बुद्धिने गीताजीके साथ उसकी तुलना की। 'जो तेरा कुरता मांगे, उसे अगरखा दे डाल। जो तेरे दाहिने गालपर थप्पड मारे, उसके आगे बाया गाल कर दे।' यह पढकर मुझे अपार आनन्द हुआ। शामल भट्टका वह छप्पय भी याद आया, जो पीछे दिया है।

यद्यपि मैने हिन्दू-धर्मका भी मामूली परिचय प्राप्त किया था, फिर भी खतरो और सकटोसे बचानेके लिए यह काफी न था। विलायतके मेरे आखिरी वर्ष, अर्थात् १८९० मे पोर्टस्मथमे अन्नाहारियोंका एक सम्मेलन हुआ। उसमे मुझे तथा एक और भारतीय मित्रको निमन्त्रण मिला था। हम दोनो एक बहनके यहाँ, जिनके बारेमे स्वागत-समितिको कुछ पता नही था, ठहराये गये। वह एक बदनाम घर था। रातको सभासे हम घर लौटे। भोजनके बाद ताश खेलने बैठे। विलायतमे भले घरोंमे गृहिणी भी मेहमानोंके साथ इस प्रकार ताश खेला करती है। ताश खलते समय आमतौरपर लोग निर्दोष मजाक करते है, पर यहा अश्लील विनोद शुरू हुआ।

मै नही जानता था कि मेरे साथी इसमे निपुण है। मुझे इस विनोदमे रस आने लगा। धीरे-धीरे मै भी उसमे शामिल हुआ। विनोदकी वाणीसे क्रियामे परिणत होनेकी नौबत आ गयी। ताश एक ओर रखनेका अवसर आ गया, पर मेरे साथीके हृदयमे भगवान् पैठे। वह बोले—"तुम और यह पाप? यह तुम्हारा काम नही। भागो यहासे।"

मै जागा, लज्जित हुआ। हृदयमे इस मित्रका उपकार माना, माताकी प्रतिज्ञा याद आयी। वहासे भागा। कापता हुआ अपने कमरेमे पहुचा।

उस समय मै 'धर्म क्या है? ईश्वर क्या चीज है? वह हमारे अन्दर किस तरह काम करता है?' ये बातें नही जानता था। पर लौकिक अर्थमे मैने यही समझा कि ईश्वरने मुझे बचाया, और जीवनके विविध क्षेत्रोंमे मुझे ऐसा ही अनुभव हुआ है। सच पूछिये तो मुझे यह कहते हुए बडा आनन्द आता है कि मुझे अनेक सकटोके अवसरपर ईश्वरने बरबस बचा लिया है। जब चारो ओरसे आशाए छोड देनेका अवसर आ जाता है, हाथ-पैर ढीले

पड़ने लगते हैं, तब कहीं-न-कहींसे अचानक सहायता आ पहुँचती है। स्तुति, उपासना, प्रार्थना, ये अन्धविश्वास नहीं, बल्कि उतनी ही अथवा उनसे भी अधिक सच बातें हैं, जितना कि हम खाते हैं, पीते हैं, बैठते हैं आदि सच है। बल्कि यों कहनेमें अत्युक्ति नहीं कि यह एकमात्र सत्य है, दूसरी सब बातें असत्य हैं, मिथ्या हैं।

१४. बैरिस्टर हुआ

इसी बीच मेरा अध्ययन जारी रहा। नौ महीने सतत परिश्रमके बाद १० जून, १८९१ को मैं बैरिस्टर हुआ, और १२ जूनको हिन्दुस्तान लौट आनेके लिए रवाना हुआ, परन्तु मेरी निराशा और भीतिका कोई ठिकाना न था। कानून मैंने पढ़ तो लिया परन्तु मेरा मन कहता था कि अभीतक मुझे कानूनका वह ज्ञान नहीं हुआ कि वकालत कर सकूं।

जून-जुलाईमें हिन्द-महासागर तूफानी रहता है। अदनसे ही समुद्रका ऐसा हाल था। सब लोग बीमार थे, अकेला मैं ही मजेमें था। मैं तूफान देखनेके लिए डेकपर जाया करता और भीग भी जाता। सुबह नाश्तेके समय यात्रियोंमें हम एक-दो आदमी टेबलपर नजर आते। हमें जईके दलियेकी रकाबीको गोदमें रखकर खाना पड़ता था, तूफानके कारण जहाज इतना हिलता था कि दलिया गोदमें ढुलक पड़ता था।

यह बाहरी तूफान मेरे अन्दरके तूफानका चिह्नमात्र था, परन्तु बाहरी तूफानमें मैं जिस प्रकार अपनेको शान्त रख सका था, वही बात आन्तरिक तूफानके सम्बन्धमें भी थी।

जब हम बम्बई बन्दरपर पहुंचे, तब मेरे बड़े भाई वहां मौजूद थे। माताजीके स्वर्गवासके बारेमें मैं बिल्कुल बेखबर था। घर पहुंचनेपर यह समाचार सुनाया गया और स्नान कराया गया। यह खबर मुझे विलायतमें दी जा सकती थी, पर बड़े भाईने मेरे बम्बई पहुंचनेतक मुझे खबर न पहुंचानेका ही निश्चय किया—इस विचारसे कि मुझे कम-से-कम आघात पहुंचे। पिताजीकी मृत्युसे अधिक आघात मुझे इस समाचारसे पहुंचा। मेरे कितने ही मनसूबे मिट्टीमें मिल गये, पर मुझे याद है कि इस समाचारको सुनकर मैं रोया नहीं। आंसू भी नहीं गिराये और इस तरह कामकाज जारी रखा मानो माताजीकी मृत्यु ही न हुई हो।

कुछ समयतक तो मैं राजकोटमें रहा, लेकिन मित्रोंने मुझे यह सलाह दी कि मैं कुछ दिन बम्बई जाकर हाईकोर्टका विशेष अनुभव प्राप्त करूं और हिन्दुस्तानी कानूनका अध्ययन करूं, साथ ही हो सके तो वकालत करनेका

भी प्रयत्न करू। मैं वम्बई गया। पर वहा चार-पाच महीनेसे अधिक न रह सका, क्योकि खर्च बढता जाता था और आमदनी कुछ थी नही। इसलिए मैं वम्बईसे निराश होकर वापस राजकोट आया। अलग दफ्तर खोला। कुछ सिलसिला चला। अर्जिया लिखनेका काम मिलने लगा और हर महीने लगभग तीन सौ रुपयेकी आमदनी होने लगी। इन अर्जियोके मिलनेका कारण मेरी योग्यता नही, बल्कि जरिया था। वडे भाईसाहवके साथी वकीलकी वकालत अच्छी चलती थी। जो वहुत जरूरी और महत्त्वपूर्ण अर्जिया आती अथवा जिन्हे मैं महत्त्वपूर्ण समझता था, वे तो वैरिस्टरके पास आती, मुझे तो सिर्फ उनके गरीव मवक्किलोकी अर्जियाँ मिलती थी।

१५. दक्षिण अफ्रीकामें

इस वीच काठियावाडके अन्दरूनी झगडोका भी मुझे कुछ अनुभव हो गया। उनसे मेरा जी ऊब उटा।

इसी समय भाईसाहवके पास पोरवन्दरकी दादा अब्दुल्ला एण्ड कम्पनी नामकी एक मेमन दूकानका सन्देश आया कि दक्षिण अफ्रीकामे हमारा वडा कारोबार है। तैयव हाजीखान मुहम्मदपर हमारा चालीस हजार पौडका वडा मुकदमा वहुत दिनोसे चल रहा है। यदि आप अपने भाईको वहा भेज दें, तो हमे भी मदद मिलेगी और उनकी भी कुछ मदद हो जायगी।

इस दूकानके एक हिस्सेदारने, यदि मैं एक साल काम कर दू तो, मुझे आने-जानेका पहले दर्जेका किराया और भोजन-खर्चके अलावा १०५ पौड देनेका वादा किया। मैं राजी हो गया और अप्रैल, १८९३ मे हिन्दुस्तानसे अफ्रीकाके लिए रवाना हो गया।

नेटालका वदर यो तो डरवन कहलाता है, पर नेटाल को भी वदर कहते हैं। मुझे वन्दरपर लिवाने स्वय अब्दुल्ला सेठ आये थे। नेटालके जो लोग जहाजपर अपने मित्रोको लिवाने आये थे, उनके रग-ढगसे मैं समझ गया कि यहाँ हिन्दुस्तानियोका आदर नही है। अब्दुल्ला सेठकी जान-पहचानके लोग उनके साथ जैसा वर्ताव करते थे, उसमे मुझे एक प्रकारका हलकापन दिखाई पडता था और उससे मेरे दिलको चोट पहुची थी, पर अब्दुल्ला सेठ तो इस अपमानके आदी हो गये थे। मुझपर जिसकी नजर पडती, वह आश्चर्यसे देखने लगता, क्योकि मेरा पहनावा ऐसा था कि मैं दूसरे भारतवासियोसे कुछ जुदा मालूम होता था। उस समय मैं फ्राक कोट और वगाली पगडी पहने था।

घर पहुचा। अब्दुल्ला सेठके कमरेके पासका कमरा मुझे दिया गया। अभी हमारी पूरी जान-पहचान नही हुई थी। अपने भाईको लिखी चिट्ठी

उन्होंने पढी। वह कुछ असमंजसमें पड गये। उन्होंने समझ लिया कि भाईने तो यह सफेद हाथी घर बंधवा दिया। मेरा साहबी ठाट-बाट उन्हें बडा खर्चीला मालूम हुआ, क्योंकि मेरे लिए उनके पास उस समय कोई काम तो था नहीं, मुकदमा चल रहा था ट्रांसवालमें। सो तुरन्त ही मुझे वहां भेज-कर क्या करते! फिर यह भी एक सवाल था कि मेरी योग्यता और ईमान-दारीका विश्वास भी कहांतक किया जाय? और प्रिटोरियामें वह खुद मेरे साथ रह नहीं सकते थे। प्रतिवादी प्रिटोरियामें रहते थे। कहीं उनका असर मुझपर होने लगे तो? और दूसरे काम भी उनके कर्मचारी मुझसे अच्छा कर सकते थे। फिर कर्मचारीसे यदि भूल-चूक हो जाय, तो उसे कुछ कहा-सुना भी जा सकता है, मुझे कुछ कहनेसे भी रहे। काम या तो क्लर्कका था या मुकदमेका—तीसरा कोई था ही नहीं। ऐसी हालतमें यदि मुकदमेका काम मुझे नहीं सौंपते हैं, तो घर बैठे मेरा खर्च उठाना पडता था।

अब्दुल्ला सेठ यों पढे-लिखे कम थे, पर उनका ज्ञान बहुत बढा-चढा था। उनकी बुद्धि तेज थी, और वह खुद भी इस बातको जानते थे। अंग्रेजी-का इतना महावरा था कि बोल-चालका काम चला लेते थे। बैंकमें मैनेजरोंसे बातें कर लेते, यूरोपियन व्यापारियोंसे सौदा कर लेते और वकीलोंको अपना मामला समझा देते थे। हिन्दुस्तानियोंमें उनका काफी मान था। उनकी दूकान उस समय हिन्दुस्तानियोंमें सबसे बडी नहीं तो बडी दूकानोंमें अवश्य थी।

दूसरे या तीसरे दिन वह मुझे डरबनकी अदालत दिखाने ले गये। वहां कई लोगोंसे परिचय कराया। अदालतमें अपने वकीलके पास मुझे बैठाया। मैजिस्ट्रेट मेरी ओर देखता रहा। बोला—"अपनी पगडी उतार लो।" मैंने इन्कार किया और अदालतसे बाहर चला आया।

मेरे भाग्यमें तो यहां भी लडाई लिखी थी।

पगडी उतरवानेका रहस्य मुझे अब्दुल्ला सेठने समझाया। मुसलमानी पोशाक पहननेवाला अपनी मुसलमानी पगडी वहां पहन सकता है। दूसरे भारतवासियोंको अदालतमें जाते हुए अपनी पगडी उतार लेनी चाहिए।

ऐसी हालतमें पगडी पहननेका प्रश्न विकट हो गया। पगडी उतार लेनेका अर्थ था, अपमान सहन करना। सो मैंने यह तरकीब निकाली कि हिन्दुस्तानी पगडीके बजाय अंग्रेजी टोप पहना जाय, जिससे उसे उतारनेमें अपमानका भी सवाल न रहे और मैं इस झगडेसे भी बच जाऊं।

पर अब्दुल्ला सेठको यह बात पसन्द न आयी। उन्होंने कहा—"यदि आप इसपर अमल करेंगे, तो उलटा अर्थ होगा। जो लोग देशी पगडी पहने रहना चाहते होंगे, उनकी स्थिति विषम हो जायगी। फिर

आपके सिरपर अपने ही देशकी पगडी शोभा देती है। आप यदि अग्रेजी टोपी लगायेंगे तो लोग आपको 'वेटर' समझेंगे।"

इन वचनोंमे व्यावहारिकता थी, देशाभिमान था और कुछ सकुचितता भी थी। पर सब मिलकर अब्दुल्ला सेठकी वात मुझे अच्छी लगी। मैंने पगडीवाली घटनापर अखवारोंमे लिखा और पगडीका तथा अपने पक्षका समर्थन किया। अखवारोंमे उसपर खूब चर्चा चली। 'अनवेलकम विजिटर'—अनिमन्त्रित अतिथि—के नामसे मेरा नाम अखवारोंमे आया। तीन-चार दिनके अन्दर अनायास ही दक्षिण अफ्रीकामें मेरी प्रसिद्धि हो गयी। किसीने मेरे पक्षका समर्थन किया, किसीने मेरी उद्दण्डताकी निन्दा की।

अब्दुल्ला सेठको मेरे लिए काम खोजनेमें ज्यादा वक्त न लगा। उनके मुकदमेके लिए मेरा प्रिटोरियामें रहना जरूरी था।

सातवे या आठवे दिन मैं डरवनसे रवाना हुआ। मेरे लिए पहले दर्जेका टिकट लिया गया। सोनेके लिए वहा पाच शिलिंगका एक अलहदा टिकट लेना पडता था। अब्दुल्ला सेठने आग्रहके साथ कहा कि सोनेका टिकट ले लो, पर मैंने कुछ तो हठमें, कुछ मदमें और कुछ पैसे वचानेके लोभसे इनकार कर दिया।

अब्दुल्ला सेठने मुझे सावधान किया—"देखो, यह मुल्क और है, हिन्दुस्तान नही। खुदाकी मेहरवानी है, आप पैसेका खयाल न करें। अपने आरामका सब इन्तजाम कर लेना।"

मैंने उन्हें धन्यवाद दिया और कहा कि आप मेरी चिन्ता न कीजिये। नेटालकी राजधानी मेरित्सवर्गमें ट्रेन रातके कोई नौ वजे पहुची। यहाँ सोनेवालोंको विछौने दिये जाते थे। रेलवेके नौकरोंने आकर कहा—"आप विछौना चाहते है?"

मैंने कहा—"मेरे पास विछौना है।"

वह चला गया। इस वीच एक यात्री आया। उसने मेरी ओर देखा। मुझे हिन्दुस्तानी देखकर वह चकराया। वाहर गया और एक-दो कर्मचारियोंको लेकर आया। किसीने मुझसे कुछ न कहा। अन्तमें एक अफसर आया। उसने कहा—"उतरो, तुमको दूसरे डिब्बेमें जाना होगा।"

मैंने कहा—"पर मेरे पास पहले दर्जेका टिकट है।"

उसने उत्तर दिया—"कोई वात नही। मैं तुमसे कहता हूँ, तुम्हे आखिरी डिब्बेमें वैठना होगा।"

"मैं कहता हू कि डरवनमे इसी डिब्बेमे वैठाया गया हूँ और इसीमें जाना चाहता हू।"

अफसर बोला—"यह नहीं हो सकता, तुम्हे उतरना होगा, नही तो सिपाही आकर उतार देगा।"

मैंने कहा—"तो ठीक है। सिपाही आकर भले ही मुझे उतारे, मै अपने-आप न उतरूगा।"

सिपाही आया। उसने हाथ पकडा और धक्का मारकर मुझे नीचे गिरा दिया। मेरा सामान नीचे उतार लिया गया। मैंने दूसरे डिब्बेमे जानेसे इनकार किया। गाडी चल दी। मै वेटिंग रूममे जा बैठा। हैंडबेग अपने साथ रखा। दूसरे सामानको मैने हाथ न लगाया। रेलवालोंने सामान कही रखवा दिया।

जाडेका मौसम था। दक्षिण अफ्रीकामे ऊची जगहोपर बडे जोरका जाडा पडता है। मेरित्सबर्ग ऊचाईपर था—इससे खूब जाडा लगा। मेरा ओवरकोट मेरे सामानमे रह गया था। सामान मागनेकी हिम्मत न पडी, कही फिर बेइज्जती न हो। जाडेमे सिकुडता और ठिठुरता रहा। कमरेमे रोशनी न थी। आधी रातके समय एक मुसाफिर आया। ऐसा जान पडा, मानो वह कुछ बात करना चाहता हो, पर मेरे मनकी हालत ऐसी न थी कि मै बातें करता।

मै सोचने लगा—"मेरा कर्तव्य क्या है? मुझे अपने हकोंके लिए लडना चाहिए या वापस लौट जाना चाहिए? या जो अपमान हो रहा है, उसे सहन करके प्रिटोरिया पहुचू और मुकदमेका काम खतम करके देश चला जाऊ? मुकदमेको अधूरा छोडकर भाग जाना तो कायरता होगी। मुझपर जो कुछ बीत रही है, वह तो रगद्वेषरूपी महारोगके ऊपरी लक्षण हैं। यदि इस महारोगको उखाड फेकनेका सामर्थ्य अपने अन्दर हो, तो उसका उपयोग करना चाहिए। उसके लिए जो कुछ कष्ट और दुख आ पडे, सहना चाहिए। इन अन्यायोंका विरोध उसी हदतक करना चाहिए, जिस हदतक उसका सम्बन्ध रगद्वेष दूर करनेसे हो।"

ऐसा सकल्प करके जिस तरह भी हो, दूसरी गाडीसे आगे जानेका निश्चय किया।

सुबह मैंने जनरल मैनेजरको तार द्वारा एक लम्बी शिकायत लिख भेजी। दादा अब्दुल्लाको भी समाचार भेजे। अब्दुल्ला सेठ तुरन्त जनरल मैनेजरसे मिले। जनरल मैनेजरने अपने आदमियोका पक्ष तो लिया, पर कहा कि स्टेशन-मास्टरको लिख दिया है कि गाधीको सकुशल अपने मुकाम-पर पहुचा दो। अब्दुल्ला सेठने मेरित्सबर्गके हिन्दुस्तानी व्यापारियोंको भी मुझसे मिलने तथा मेरा प्रबन्ध करनेके लिए तार दिया तथा दूसरे स्टेशनोपर भी ऐसे ही तार दे दिये। इससे व्यापारी लोग स्टेशनपर मुझसे मिलने आये।

उन्होने अपने ऊपर होनेवाले अन्यायोका मुझसे जिक्र किया और कहा कि आपपर जो कुछ बीती है, वह कोई नयी बात नही। पहले-दूसरे दर्जेमे जो हिन्दुस्तानी सफर करते हैं, उन्हे क्या रेल-कर्मचारी और क्या मुसाफिर, दोनो सताते हैं। सारा दिन इन्ही बातोके सुनानेमें गया। रात हुई, गाडी आयी। मेरे लिए जगह तैयार थी। डरबनमे सोनेके लिए जिस टिकटको लेनेसे इनकार किया था, वही मेरित्सबर्गमे लिया। ट्रेन मुझे चार्ल्सटाउन ले चली। आगे मुझे घोडागाडीमें तो और भी कष्टोका सामना करना पडा और अन्तको मैं जोहान्सबर्ग पहुचा और वहासे फिर रेलसे प्रिटोरिया गया।

१६. सेवाका श्रीगणेश

१८९३ मे दक्षिण अफ्रीका-निवासी हिन्दुस्तानियोकी स्थितिका पूरा-पूरा ज्ञान मुझे हो गया था, लेकिन प्रिटोरियामे हिन्दुस्तानियोसे इस विषयमे कभी-कभी बातचीत कर लेनेके अलावा मैंने कोई प्रत्यक्ष कार्य अबतक नही किया था। मैंने देखा कि एक ओर मुकदमेकी कार्रवाई और दूसरी ओर दक्षिण अफ्रीकाके भारतवासियोके कष्टोको दूर करनेका प्रयत्न, दोनो बातें एक साथ नही की जा सकती। मैं समझ गया था कि दोनो काम एक साथ करनेके मानी दोनोको नुकसान पहुचाना होगा। यह १८९४ की बात है। जिस मुकदमेके लिए मैं दक्षिण अफ्रीका आया, वह अच्छी तरह तय हो गया। इसलिए मैं डरबन लौट आया और वहासे हिन्दुस्तान जानेकी तैयारी करने लगा। जब मुझे दादा अब्दुल्लाके यहासे विदाई दी जा रही थी, उसी समय किसीने 'नेटाल मर्करी' अखबारकी एक प्रति मुझे लाकर दी। उसमे नेटाल धारासभाकी कार्रवाईकी सक्षिप्त रिपोर्ट थी, जिसमे कुछ सतरे भारतीय मताधिकारके सिलसिलेमे भी थी। नेटाल-सरकार एक ऐसा बिल पेश करना चाहती थी, जिससे हिन्दुस्तानियोके मताधिकार छिनते थे। यो ही उन्हे अधिकार बहुत कम थे, फिर भी जो कुछ थे, उन्हे छीन लेनेकी यह शुरूआत थी। यह देखकर मैंने अपना हिन्दुस्तान जाना स्थगित कर दिया। उसी रातको बैठकर मैंने धारासभामे पेश करनेके लिए एक दरख्वास्त तैयार की। सरकारसे भी तार द्वारा प्रार्थना की कि वह धारासभाकी कार्रवाई जल्दी शुरू न करे। तुरन्त सेठ अब्दुल्लाके सभापतित्वमे एक कमेटी बनायी गयी और उन्हीके नामसे तार भेजा गया। इसका फल यह हुआ कि दो दिनके लिए बिलकी कार्रवाई रोक दी गयी। दक्षिण अफ्रीका-की धारासभाको हिन्दुस्तानियोकी तरफसे इस प्रकार अर्जी भेजनेका यह पहला मौका था। इसका कुछ असर तो जरूर हुआ, मगर बिलका पास

होना उससे नहीं रुक सका। ऐसे आन्दोलन करनेका दक्षिण अफ्रीकाके प्रवासी भारतीयोंका यह पहला ही अवसर था। इससे सारे समाजमें उत्साहकी एक नयी लहर फैल गयी। हर रोज सभाएं होतीं और लोग अधिक सख्यामें आते। जरूरतसे ज्यादा पैसा भी इकट्ठा हो गया। कितने ही लोग स्वच्छासे बिना किसी मिहनतानेके काम करनेको तैयार हो गये। वे लिखनेका काम करते, घूम-घूमकर लोगोंसे दस्तखत कराते, और भी अन्य कई काम करते। ऐसे भी लोग थे, जो खुद काम भी करते थे और पैसा भी देते थे। पुराने गिरमिटिया कुलियोंकी जो सन्तान वहा थी, उन्होंने बड़ी तत्परतासे इस आन्दोलनमें योग दिया। वे अंग्रेजी जानते थे और सुन्दर अक्षर लिखते थे। दिन-रात उन्होंने नकलें करनेका तथा दूसरा काम बड़े उत्साहसे किया। एक महीनेके अन्दर ही लार्ड रिपनके नाम, जो उस समय उपनिवेश-मन्त्री थे, दस हजार दस्तखतोंके साथ दरख्वास्त भेज दी गयी। इस प्रकार मेरे सामनेका तात्कालिक काम तो पूरा हो गया।

तब मैंने फिर हिन्दुस्तान जानेकी इजाजत चाही, लेकिन आन्दोलनमें हिन्दुस्तानियोंकी इतनी ज्यादा दिलचस्पी हो गयी थी कि उन्होंने मुझसे न जानेका आग्रह किया। उन्होंने कहा—"खुद आप हीने तो हमें यह बताया कि यह तो सरकारका पहला कदम है, इसको न रोका गया तो अन्तमें हमारा अस्तित्व ही मिट जायगा। कौन जाने उपनिवेश-मन्त्री हमारे मेमोरियल (प्रार्थना-पत्र) का क्या जवाब देंगे? हमारे उत्साहको तो आपने देख ही लिया है। हम काम करने और रुपया खर्च करनेके लिए तैयार हैं, मगर बिना किसी राह बतानेवालेके यह सब किया-कराया चौपट हो जायगा। इसलिए हमारा तो यही खयाल है कि इस समय आपका फर्ज यही है कि आप यहा ठहरें।" उनकी यह दलील मुझे जची और मुझे लगा कि हिन्दुस्तानियोंके हितोंकी रक्षाके लिए कोई एक स्थायी सगठन बना लिया जाय तो अच्छा होगा। इस कारण मैं फिर रुक गया और इस प्रकार मई १८९४ के लगभग 'नेटाल इण्डियन काग्रेस' का जन्म हुआ। ईश्वरने मेरे दक्षिणी अफ्रीकाके जीवनकी बुनियाद डाली तथा भारतीयोंके आत्म-सम्मानकी लडाईका बीज बोया।

यहाके कामका इतिहास जाननेके लिए पाठकोंको 'दक्षिण-अफ्रीकाका सत्याग्रह'* पढनेकी सिफारिश करता हू। उससे पता चलेगा कि हमें किन-किन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा, सरकारी अधिकारियोंने कैसे-कैसे

* यह पुस्तक 'सस्ता साहित्य मण्डल', नयी दिल्लीसे प्रकाशित हुई है। मूल्य साढे तीन रुपये।

हमले कांग्रेसपर किये और वह उनसे कैसे बाल-बाल बच गयी। लेकिन एक बातका उल्लेख यहां जरूरी करना चाहता हूं, वह यह कि अतिशयोक्ति करनेकी आदतसे भारतीय समाजको बचानेकी पूरी-पूरी कोशिश की गयी। उन्हें खुद अपने दोषोंकी तरफ भी ध्यान दिलानेका पूरा यत्न किया गया। यूरोपियन लोगोंकी दलीलोंमें जो बात अच्छी और उचित मालूम पड़ती, उसकी कद्र की जाती थी। कई ऐसे अवसर आते, जिनमें यूरोपियन लोगोंके साथ बराबरीके नाते और इज्जतके साथ सहयोग करनेका मौका आता, तो सच्चे दिलमें ऐसा किया जाता। हमारे आन्दोलनकी पूरी खबरें अखबारोंको भेजी जातीं और जब कभी अखबारोंमें हिन्दुस्तानियोंपर हमला होता, तो उन अखबारोंको उनके जवाब भी भेजे जाते।

१७. तूफानके चिह्न

दक्षिण अफ्रीकामें रहते मुझे अब तीन साल हो चुके थे। मैं लोगोंके परिचयमें आ गया था। मेरी वकालत मामूली तौरपर अच्छी जम गयी थी और मैं समझने लगा था कि लोगोंको वहां मेरी जरूरत है। इसलिए मैंने इरादा किया कि घर जाकर अपने परिवारको ले आऊं और यहां जमकर बैठूं। इसलिए १८९६ में मैं वहांसे छुट्टी लेकर छ महीनेके लिए भारत आया। मैं देशमें छ महीने बिता भी न पाया था कि नेटालसे मुझे तार मिला कि फौरन् लौट आओ। इसलिए मैं फिर जल्दी ही लौट गया। दादा अब्दुल्लाने उसी समय 'कुरलैण्ड' नामक एक स्टीमर खरीदा था। उन्होंने मुझसे अनुरोध किया कि मैं उसी जहाजसे अपने कुटुम्बके साथ बिना किराया दिये ही यात्रा करूं। मैंने कृतज्ञतापूर्वक उनकी इच्छाका स्वागत किया और दिसम्बर महीनेके आरम्भमें बम्बईसे दुबारा नेटालके लिए जहाजमें बैठा। इस बार मेरे साथ मेरी पत्नी और मेरे दो पुत्र भी थे। दूसरा स्टीमर 'नादरी' भी उन्हीं दिनों डरबनके लिए छूटा। दोनों जहाजोंमें कुल मिलाकर आठ सौ मुसाफिर रहे होंगे, जिनमेंसे आधे ट्रांसवाल जानेवाले थे।

जहाज दूसरे बन्दरोंपर ठहरे बिना ही नेटाल पहुंचनेवाला था। इसलिए सिर्फ अठारह दिनकी यात्रा थी। हमारे पहुंचनेमें तीन-चार दिन बाकी थे कि इतनेमें समुद्रमें भारी तूफान उठा, मानो नेटालमें हमारे पहुंचते ही होनेवाले किसी भावी तूफानकी चेतावनी दे रहा हो इस दक्षिण प्रदेशमें दिसम्बरका महीना गरमी और बरसातका मौसम होता है। इस कारण दक्षिण समुद्रमें इन दिनों छोटे-बड़े तूफान अकसर आया करते हैं। तूफान इतने जोरका था और इतने दिनों रहा कि मुसाफिर घबरा गये।

यह एक भव्य दृश्य था। दुःखमें सब एक हो गये। सारा भेद-भाव भूल गये। ईश्वरको सच्चे हृदयसे स्मरण करने लगे। हिन्दू-मुसलमान सब साथ मिलकर ईश्वरको याद करने लगे। कितनोंने मिन्नतें मानी। कप्तान भी यात्रियोंको आश्वासन देने लगा कि यद्यपि तूफान जोरका है, फिर भी इससे बड़े-बड़े तूफानोंका अनुभव मुझे है। जहाज यदि मजबूत हो, तो एकाएक डूबता नहीं, आदि। इस तरह उसने मुसाफिरोंको बहुत समझाया, पर उन्हें किसी तरहकी तसल्ली न होती थी। जहाजमें ऐसी आवाजें होती, मानो जहाजके अभी कहीं-न-कहींसे टुकड़े होते हैं, या अभी कहीं छेद होता है। वह इधर-उधर इतना हिलता कि ऐसा जान पड़ता, मानो अभी उलट जायगा। डेकपर खड़ा रहना ही मुश्किल था। 'ईश्वर जो करे सो सही' इसके सिवा दूसरी बात किसीके मुहपर न थी।

मुझे जहातक याद है, ऐसी चिन्तामें चौबीस घण्टे बीते होंगे। अन्तमें बादल बिखरे, सूर्यने दर्शन दिये। कप्तानने कहा—"अब तूफान जाता रहा।"

लोगोंके चेहरेसे चिन्ता दूर हुई, और उसके साथ ही ईश्वर भी। मौतका डर दूर होते ही फिर गान-तान, खान-पान शुरू हो गया, फिर वही मायाका राज्य छा गया। अब भी नमाज पढ़ी जाती, भजन होते, परन्तु तूफानके अवसरपर उसमें जो हार्दिकता दिखाई देती थी, वह न थी।

परन्तु इस तूफानकी बदौलत मैं यात्रियोंमें हिल-मिल गया था। यह कह सकते हैं कि मुझे तूफानका भय न था अथवा कम-से-कम था। प्रायः इसी तरहके तूफान मैं पहले देख चुका था। जहाजमें मेरा जी नहीं मिचलाता, चक्कर भी नहीं आते, इसलिए लोगोंमें मैं निर्भय होकर घूम-फिर सकता था, उन्हें आश्वासन दे सकता था और कप्तानके सन्देश उनतक पहुंचाना था। यह स्नेह-गांठ मेरे लिए बहुत उपयोगी साबित हुई। हमारे जहाजने अठारह या उन्नीस दिसम्बरको डरबन बन्दरगाहपर लंगर डाला और 'नादरी' भी उसी दिन पहुंचा। पर सच्चे तूफानका अनुभव तो अभी होना बाकी ही था।

१८. कसौटी

दक्षिण अफ्रीकाके बंदरोंपर यात्रियोंकी पूरी-पूरी डॉक्टरी जांच होती है। यदि रास्तेमें किसीको कोई संक्रामक रोग हो गया हो, तो जहाज सूतकमें—क्वारंटीनमें—रखा जाता है। हमने जब बम्बई छोड़ा, तब वहां प्लेग फैल रहा था। इसलिए हमें सूतक-बाधा होनेका कुछ तो

भय था ही। बन्दरमे लगर डालनेके बाद सबसे पहले जहाज पीला झडा फहराता है। डॉक्टरी जाचके बाद जब डॉक्टर छुट्टी देता है, पीला झडा उतार दिया जाता है, फिर मुसाफिरोके रिश्तेदारोको जहाजपर आनेकी छुट्टी मिलती है।

इसके मुताबिक हमारे जहाजपर भी पीला झडा लगा दिया गया था। डॉक्टर आये। जाच करके पाच दिनके सूतकका हुक्म दिया गया, क्योकि उनकी यह धारणा थी कि प्लेगके जन्तु तेईस दिनतक कायम रहते है। इसलिए उन्होने यह तय किया कि बम्बई छोडनेके बाद तेईस दिनतक यात्रियोको सूतकमे रखना चाहिए।

परन्तु इस सूतकके हुक्मका हेतु केवल आरोग्य न था। डरबनके गोरे हमे वापस भारत लौटा देनेका आन्दोलन कर रहे थे। इस हुक्ममे यह बात भी मद्देनजर थी।

दादा अब्दुल्लाकी ओरसे हमें शहरकी इस हलचलकी खबरे मिला करती थी। गोरोकी बडी-बडी सभाए होती थी। दादा अब्दुल्लाको धमकिया भेजी जाती थी और उन्हे लालच भी दिये जाते थे। यदि दादा अब्दुल्ला दोनो जहाजोको वापस लौटा दे, तो उन्हें सारा हरजाना देनेको तैयार थे। दादा अब्दुल्ला किसीकी धमकियोसे डरनेवाले न थे। इस समय वहा सेठ अब्दुल करीम हाजी आदम दूकानपर थे। उन्होने प्रतिज्ञा कर रखी थी कि चाहे जितना नुकसान हो, मै जहाजको बन्दरपर लाकर मुसाफिरोको उतरवाकर रहूगा। मुझे हमेशा वह सविस्तर पत्र लिखा करते। सद्भाग्यसे इस बार स्वर्गीय मनसुखलाल हीरालाल नाजर मुझसे मिलने डरबनसे आ पहुचे थे। वह बडे चतुर और जवामर्द आदमी थे। उन्होने लोगोको उतरनेकी सलाह दी। उनके वकील मि० लाटन थे। वह भी वैसे ही बहादुर थे। उन्होने गोरोके कामकी खूब निन्दा की और लोगोको जो सलाह दी, वह केवल वकीलकी हैसियतसे फीस लेनेके लिए नही, बल्कि एक सच्चे मित्रके तौरपर दी थी।

गोरोके इस आन्दोलनका मध्यबिन्दु मै ही था। मुझपर दो इलजाम थे

१ हिन्दुस्तानमे मैने नेटालके गोरोकी अनुचित निन्दा की है और—

२ मै नेटालको हिन्दुस्तानियोसे भर देना चाहता हू। इसलिए 'कुरलैण्ड' और 'नादरी' मे खासतौरपर नेटालमे बसानेके लिए हिन्दुस्तानियोको भर लाया हू।

मुझे अपनी जिम्मेदारीका खयाल था। मेरे कारण दादा अब्दुल्लाने बडी जोखिम अपने सिर ले ली थी। मुसाफिरोकी भी जान जोखिममे थी।

मैंने अपने बाल-बच्चोंको साथ लाकर उन्हें भी दुःखमें डाल दिया था। फिर भी मैं था सब तरह निर्दोष। मैंने किसीको नेटाल जानेके लिए ललचाया न था।

अन्तमें तेईसवें दिन अर्थात् तेरह जनवरीको जहाजको इजाजत मिली और मुसाफिरोंको उतरने देनेकी आज्ञा प्रकाशित हो गयी। जहाज धक्केपर आया। मुसाफिर उतरे, परन्तु मेरे लिए दक्षिण अफ्रीकाकी सरकारके एक सदस्य मि० एस्कम्बने कप्तानसे कहला दिया था कि गांधीको तथा उनके बाल-बच्चोंको शामको उतारियेगा। गोरे उनके खिलाफ बहुत उभरे हुए हैं और उनकी जान खतरेमें है। धक्केके सुपरिण्टेण्डेण्ट मि० टैटम उन्हें शामको लिवा ले जायगे।

कप्तानने मुझे यह सन्देश सुनाया। मैंने उनके अनुसार शामको उतरना स्वीकार किया, परन्तु इस सन्देशको मिले अभी आधा घण्टा भी न हुआ होगा कि मि० लाटन आये और कप्तानसे मिलकर कहा—"यदि मि० गांधी मेरे साथ आना चाहें, तो मैं अपनी जिम्मेदारीपर ले जाना चाहता हूं। जहाजके एजेंटके वकीलकी हैसियतसे मैं आपसे कहता हूं कि मि० गांधीके सम्बन्धमें जो आदेश आपको मिला है, उससे आप अपनेको बरी समझें।" इस तरह कप्तानसे बातचीत करके वह मेरे पास आये और कुछ इस प्रकार कहा—"यदि आपको जिन्दगीका डर न हो, तो मैं चाहता हूं कि श्रीमती गांधी और बच्चे गाडीमें रुस्तमजी सेठके यहां चले जाय और मैं और आप रास्तेसे होकर पैदल चलें। रातमें अंधेरा हो जानेपर चुपके-चुपके शहरमें जाना मुझे बिलकुल अच्छा नहीं लगता। अब तो चारों ओर शान्ति है। गोरे सब इधर-उधर बिखर गये हैं और मेरा तो यही मत है कि आपका इस तरह छिपकर जाना ठीक नहीं।"

मैं सहमत हुआ। पत्नी और बच्चे रुस्तमजी सेठके यहां गाडीमें गये और सही-सलामत जा पहुंचे। मैं कप्तानसे विदा मांगकर मि० लाटनके साथ जहाजसे उतरा। रुस्तमजी सेठका घर कोई दो मील था।

जैसे ही हम जहाजसे उतरे, कुछ गोरे लडकोंने मुझे पहचान लिया और वे 'गांधी-गांधी' चिल्लाये। तत्काल दो-चार आदमी इकट्ठे हो गये और मेरा नाम लेकर जोरसे चिल्लाने लगे। मि० लाटनने देखा कि भीड बढ जायगी, इससे उन्होंने रिक्शा मंगाया। मुझे रिक्शामें बैठना कभी अच्छा न मालूम होता था। मुझे उसका यह पहला ही अनुभव होनेवाला था। पर छोकरे क्यों बैठने देने लगे? उन्होंने रिक्शावालेको धमकाकर भगा दिया।

हम आगे बढे। भीड भी बढती जाती थी। काफी मजमा हो गया।

सबसे पहले तो भीडने मुझे मि० लाटनसे अलग कर दिया। फिर मुझपर पत्थर और सडे अण्डे बरसने लगे। किसीने मेरी पगडी भी उडा दी और मुझपर लातें जमानी शुरू हुई।

मुझे गश आ गया। नजदीकके घरकी जाली पकडकर मैंने सहारा लिया। खडा रहना तो असम्भव ही था। अब थप्पड-घूसे भी पडने लगे।

इतने हीमें पुलिस-सुपरिण्टेण्डेण्टकी पत्नी, जो मुझे जानती थी, उधरसे होकर निकली। मुझे देखते ही वह मेरे पास आ खडी हुई, और धूपके न रहते हुए भी अपना छाता मुझपर तान दिया। इससे भीड कुछ दबी। अब वे अगर चोट करते, तो भी मिसेज अलेक्जेण्डर को बचाकर ही कर सकते थे।

इसी बीच कोई हिन्दुस्तानी मुझपर हमला होता हुआ देख, पुलिस-थानेमें दौड गया। सुपरिण्टेण्डेण्ट अलेक्जेण्डरने पुलिसकी एक टुकडी मुझे बचानेके लिए भेजी। वह समयपर आ पहुची। मेरा रास्ता पुलिस-चौकीसे ही गुजरता था। सुपरिण्टेण्डेण्टने थानेमे ठहर जानेको कहा। मैंने इनकार कर दिया, कहा—"जब लोग अपनी भूल समझ लेंगे, तब शान्त हो जायगे। मुझे उनकी न्याय-बुद्धिपर विश्वास है।"

पुलिसकी रक्षामे मैं सही-सलामत पारसी रुस्तमजीके घर पहुचा। पीठपर मुझे भीतरी चोट आयी थी। जख्म सिर्फ एक ही जगह हुआ था। जहाजके डॉक्टर दादी बरजोरजी वही मौजूद थे। उन्होंने मेरी अच्छी तरह सेवा-शुश्रूषा की।

इस तरह जहा अन्दर शान्ति थी, वहा बाहरसे गोरोंने घरको घेर लिया। शाम हो गयी थी। अघेरा हो गया था। हजारो लोग बाहर शोर मचा रहे थे और चिल्ला रहे थे कि गाधीको हमारे हवाले कर दो। मौका नाजुक देखकर सुपरिण्टेण्डेण्ट अलेक्जेण्डर स्वय वहा पहुच गये थे और भीडको डरा-धमकाकर नही, बल्कि हसी-मजाक करते हुए काबूमे रख रहे थे।

फिर भी वह चिन्तामुक्त न थे। उन्होंने मुझे इस आशयका सन्देश भेजा—"यदि आप अपने मित्रके जान-मालको, मकानको तथा अपने बाल-बच्चोको बचाना चाहते हैं, तो मै जिस तरह बताऊ, आपको छिपकर इस घरसे निकल जाना चाहिए।" सुपरिण्टेण्डेण्टकी तजवीजके मुताबिक मैंने हिन्दुस्तानी सिपाहीकी वर्दी पहनी। कही सिरपर चोट न लगे, इस अन्देशेसे सिरपर एक पीतलकी तश्तरी रख ली और उसपर मदरासियोंका-सा लम्बा साफा लपेटा। साथमें दो जासूस थे, जिनमे एकने हिन्दुस्तानी व्यापारीका रूप बनाया था, अपना मुह हिन्दुस्तानीके रगका रग लिया

था। दूसरेने क्या स्वांग बनाया था, यह मैं भूल गया हूं। हम नजदीककी गलीसे होकर पड़ोसकी एक दूकानमें पहुंचे और गोदाममें रखे बोरोंके ढेरके अंधेरेमें बचते हुए दूकानके दरवाजेसे निकल भीड़में होकर बाहर चले गये। गलीके मुंहपर गाड़ी खड़ी थी, उसमें बैठकर हम उसी थानेपर पहुंचे, जहां ठहरनेके लिए सुपरिण्टेण्डेण्ट अलेक्जेण्डरने पहले कहा था। मैंने सुपरिण्टेण्डेण्ट तथा खुफिया पुलिसके अफसरका एहसान माना।

इस तरह एक ओर जब मैं दूसरी जगह ले जाया जा रहा था, तब दूसरी ओर सुपरिण्टेण्डेण्ट भीड़को गीत सुना रहा था :

"चलो इस गांधीको हम उस इमलीके पेड़पर फांसी लटका दें।"

जब सुपरिण्टेण्डेण्टको खबर मिल गयी कि मैं सही-सलामत मुकामपर पहुंच गया, तब उन्होंने भीड़से कहा—"लो, तुम्हारा शिकार तो इस दूकानसे होकर सही-सलामत बाहर सटक गया!" यह सुनकर भीड़मेंसे कुछ लोग बिगड़े, हंसे और बहुतेरोंने तो उनकी बात ही न मानी।

"तो तुममेंसे कोई जाकर अन्दर देख ले। अगर गांधी वहां मिल जाय, तो उसे मैं तुम्हारे हवाले कर दूंगा। न मिले, तो तुमको अपने घर चले जाना चाहिए। मुझे इतना तो विश्वास है कि तुम रुस्तमजीके मकानको न जलाओगे और गांधीके बाल-बच्चोंको नुकसान न पहुंचाओगे", सुपरिण्टेण्डेण्टने कहा।

भीड़ने प्रतिनिधि चुने। उन्होंने भीड़को निराशाजनक समाचार सुनाये। सब सुपरिण्टेण्डेण्ट अलेक्जेण्डरकी समय-सूचकता और चतुराईकी स्तुति करते हुए और कुछ लोग मन-ही-मन कुढ़ते हुए, अपने-अपने घर चले गये।

बादमें स्वर्गीय मि० चेम्बरलेनने दक्षिण अफ्रीकाके अधिकारियोंको तार दिया कि गांधीपर हमला करनेवालोंपर मुकदमा चलाया जाय और ऐसा किया जाय कि जिससे गांधीको इन्साफ मिले। मि० एस्कम्बने मुझे बुलाया। मुझपर जो हमला हुआ, उसके लिए दुःख प्रदर्शित किया और कहा—"आप यह तो अवश्य मानेंगे कि आपको जरा भी कष्ट पहुंचनेमें मुझे खुशी नहीं हो सकती। मि० लाटनकी सलाह मानकर आपने तुरन्त उतर जानेका साहस किया, उसका आपको हक था। पर यदि मेरे सन्देशके अनुसार आपने किया होता, तो यह दुःखद घटना न हुई होती। अब यदि आप आक्रमणकारियोंको पहचान सकें, तो मैं उन्हें गिरफ्तार करके मुकदमा चलानेके लिए तैयार हूं। मि० चेम्बरलेन भी ऐसा ही चाहते हैं।'

'मैं किसीपर मुकदमा चलाना नहीं चाहता। आक्रमणकारियोंमेंसे

एक-दोको मैं पहचान भी लूं, तो उन्हे सजा करानेमें क्या लाभ ? फिर मैं तो उन्हे दोषी भी नहीं मानता, क्योंकि उन बचारोको तो यह कहा गया कि मैंने हिन्दुस्तानमें नेटालके गोरोकी भरपेट और बढा-चढाकर निन्दा की है। इस बातपर यदि वे विश्वास कर ले और मुझपर बिगड पडे, तो इसमें आश्चर्यकी कौन बात है ? कसूर तो ऊपरके लोगोका, और मुझे कहने दे तो आपका माना जा सकता है। आप लोगोको ठीक सलाह दे सकते थे, पर आपने रायटरके तारपर विश्वास किया और कल्पना कर ली कि मैंने सचमुच ही अत्युक्तिसे काम लिया था। मैं किसीपर मकदमा चलाना नही चाहता। जब असली और सच्ची बात लोगोपर प्रकट हो जायगी और लोग जान जायेंगे तब अपने-आप पछतायेंगे।"

"तो आप मुझे यह बात लिखकर दे देंगे ? मुझे मि० चेम्बरलेनको इस आशयका तार देना पडेगा। मैं नही चाहता कि आप जल्दीमें कोई बात लिख दें। मि० लाटनसे तथा अपने दूसरे मित्रोसे सलाह करके जो उचित लगे वही करे। यह बात मैं जानता हू कि यदि आप आक्रमणकारियोपर मामला न चलायेंगे, तो सब बातोको शान्त करनेमें मुझे बहुत मदद मिलेगी और आपकी प्रतिष्ठा तो बहुत ही बढ जायगी।"

मैंने उत्तर दिया—"इस सम्बन्धमें मेरे विचार निश्चित हो चुके हैं। यह तय है कि मैं किसीपर मुकदमा चलाना नही चाहता। इसलिए मैं आपको लिखे देता हू।"

यह कहकर मैंने वह आवश्यक पत्र लिख दिया।

हमलेके दो-एक दिन बाद जब मैं मि० एस्कम्बसे मिला, तब मैं पुलिस-थानेमें ही था। मेरे साथ मेरी रक्षाके लिए एक-दो सिपाही रहते थे। पर जब मैं मि० एस्कम्बके पास ले जाया गया था, तब इस तरह रक्षाकी जरूरत ही नही रह गयी थी।

जिस दिन मैं जहाजसे उतरा, उसी दिन अर्थात् पीला झडा उतरते ही, तुरन्त 'नेटाल एडवरटाइजर' का प्रतिनिधि मुझसे आकर मिला था। उसने कितनी ही बाते पूछी थी और उसके प्रश्नोके उत्तरमें मैंने एक-एक बातका पूरा-पूरा जवाब दिया था। सर फीरोजशाहकी नेक सलाहके अनुसार उस समय मने भारतमें एक भी भाषण बगैर लिखा नही दिया था। अपन इन तमाम लेखो और भाषणोका सग्रह मेरे पास था ही। वे सब मैंने उसे दे दिये और यह साबित कर दिया कि भारतमें मैंने ऐसी एक भी बात नही कही थी, जो उससे कडे शब्दोमें दक्षिण अफ्रीकामें न कही हो। मैंने यह भी स्पष्ट कर दिया था कि 'कुरलैण्ड' तथा 'नादरी' के मुसाफिरोको लानेमें मेरा हाथ बिलकुल नही है। उनमेंसे बहुतेरे तो नेटालके ही पुराने

बाशिन्दे थे और शेष नेटाल जानेवाले नही, बल्कि ट्रासवाल जानेवाले थे। उस समय नेटालमे रोजगार मन्दा था। ट्रासवालमे काम-धधा खूब चल रहा था और आमदनी भी अच्छी होती थी। इसलिए अधिकाश हिन्दुस्तानी वही जाना पसन्द करते थे।

इसी स्पष्टीकरणका तथा आक्रमणकारियोपर मुकदमा न चलानेका प्रभाव इतना जबरदस्त हुआ कि गोरोको शर्मिन्दा होना पडा। अखबारोने मुझे निर्दोष बताया और हुल्लड करनेवालोको भला-बुरा कहा। इस प्रकार अन्तमे मुझे इस घटनामे लाभ ही हुआ। और जो मेरा लाभ था वह कौमका ही लाभ था। इससे हिन्दुस्तानी लोगोकी प्रतिष्ठा बढी और मेरा 'सत्याग्रह' का रास्ता अधिक सुगम हो गया।

तीन या चार दिनमें मैं घर गया और थोडे ही दिनोमे मैं अपना कामकाज देखने-भालने लगा।

१९. सेवा-भाव और सादगी

मेरा काम यद्यपि ठीक चल रहा था, फिर भी मुझे उससे सन्तोष न था। मनमें यह मथन चलता ही रहता था कि जीवनमे अधिक सादगी आनी चाहिए और कुछ-न-कुछ शारीरिक सेवा-कार्य होना चाहिए।

सयोगसे एक दिन एक अपग कोढी घर आ पहुचा। पहले तो कुछ खानेको देकर हटा देनेको जी चाहा, पर बादको मैने उसे एक कमरे रखा, उसके जख्मोको धोया और शुश्रूषा की। किन्तु यह कितने दिनो तक चल सकता था? सदाके लिए उसे घरमें रखने योग्य न सुविधा थी न हिम्मत। अत मैंने उसे गिरमिटियोके सरकारी अस्पतालमे भेज दिया

पर इससे मुझे तृप्ति नही हुई। मनमे यह हुआ करता कि यदि ऐसा कोई शुश्रूषाका काम सदा मिलता रहे, तो क्या ही अच्छा हो। डॉ० बूथ सेण्ट एडम्स मिशनके अधिकारी थे। जो कोई आता उसे वह हमेशा मुफ्त दवा देते थे। बडे भले आदमी थे, हृदय स्नेहपूर्ण था। उनकी देख-रेखमे पारसी रुस्तमजीके दानसे एक छोटा-सा अस्पताल खोला गया था। इसमे शुश्रूषाके तौरपर काम करनेकी मुझे बडी इच्छा हुई। एक-दो घण्टेतक उसमें दवा देनेका काम रहता था। दवा बनानेवाले किसी अवैतनिक या स्वयसेवककी वहाँ जरूरत थी। मैंने इतना समय अपने काममेंसे निकालकर इस कामको करनेका निश्चय किया। वकालत-सबधी मेरा काम तो इतना ही था—दफ्तरमे बैठे-बैठे सलाह देना, दस्तावेजके मसविदे बनाना और झगडे सुलझाना। मजिस्ट्रेटके इजलासमें थोडे-बहुत ही मुकदमे रहते।

उनमेंसे अधिकाश तो अविवादास्पद होते थे। जव ऐसे मुकदमें होते, तव मेरे साथी श्री खान उनकी पैरवी कर देते। वह मेरे वाद आये थे और मेरे साथ ही रहते थे। उनके इस सहयोगके कारण मैं इस छोटे-से अस्पतालमे काम करने लगा।

रोज सुबह वहा जाता। आने-जाने और काम करनेमे कोई दो घण्टे लगते। इस कामसे मेरे मनको शान्ति मिली। रोगीसे हाल-चाल पूछकर डॉक्टरको समझाना और डॉक्टर जो दवा वताये, वह तैयार करके दे देना, यह मेरा काम था। इस कार्यसे मैं दुखी हिन्दुस्तानियोके निकट सवधमे आने लगा। उसमे ज्यादातर लोग तो तमिल और तेलुगू या उत्तर भारतीय गिरमिटिया थे।

यह अनुभव मुझे आगे जाकर वडा उपयोगी सावित हुआ। वोअर-युद्धके समय घायलोकी शुश्रूषामे तथा दूसरे रोगियोकी सेवा-टहलमे मुझे उससे वडी सहायता मिली।

इस प्रकार सेवाद्वारा लोगोंके निकट परिचयमे आना शुरू हुआ। उसके साथ ही सादगीकी ओर भी झुकाव वढा।

यद्यपि मेरी रहन-सहन शुरूमें कुछ ठाठ-वाटकी थी, परन्तु उसका मोह मुझे नही हुआ। इसलिए घर-गृहस्थी जमाते ही मैंने खर्च कम करनेकी शुरुआत की। धुलाईका खर्च कुछ ज्यादा मालूम हुआ। धोवी नियमित रूपसे कपडे भी न लाता, इस कारण दो-तीन दर्जन कमीज और इतने ही कालरसे कममें काम न चलता। कालर रोज वदलता था, कमीज रोज नही तो तीसरे दिन जरूर वदलता। इस तरह दोहरा खर्च लगता। यह मुझे व्यर्थ मालूम हुआ। इसलिए घरपर भी कपडे धोनेकी शुरुआत की। धुलाई-विद्याकी पुस्तक पढकर धोना सीख लिया और पत्नीको भी सिखा दिया। इससे कामका कुछ भार वढा तो, पर एक नयी चीज थी, इसलिए मनोरजन भी होता।

पहले-पहल जो कालर मैंने धोया, उसे मैं कभी न भूल सकूगा। इसमे कलफ ज्यादा था और इस्त्री पूरी गरम न थी। फिर कालरके जल जानेके भयसे इस्त्री ठीक-ठीक दवायी नही गयी थी। इस कारण कालर कडा तो हो गया, पर उसमेंसे कलफ झिरता रहता था।

इसी कालरको लगाकर मैं अदालतमे गया और वैरिस्टरोंके मजाक-का साधन वन गया, परन्तु ऐसी हसी-दिल्लगीको सहन करनेकी क्षमता मुझमे उस समय भी कम न थी।

"कालर हाथसे धोनेका यह पहला प्रयोग है, इसलिए उसमेंसे कलफ झिर रहा है। पर मेरा इसमे कुछ हर्ज नही होता। फिर आप सव लोगोंके

इतने विनोदका कारण हुआ, यह विशेष बात है।" मैंने स्पष्टीकरण किया।

"पर धोबी क्या नहीं मिलते?" एक मित्रने पूछा।

"यहाँ धोबीका खर्च मुझे नागवार मालूम हो रहा है। कालरकी कीमतके बराबर धुलाईका खर्च—और फिर भी धोबीकी गुलामी बरदाश्त करनी पडती है, सो अलग। इसकी बनिस्बत तो मैं घरपर हाथसे धो लेना ही ज्यादा पसन्द करता हूं।"

पर स्वावलम्बनकी यह खूबी मैं अपने मित्रोंको न समझा सका।

मुझे कहना चाहिए कि अन्तमें मैंने अपने कामके लायक कपड़े धोनेकी कुशलता प्राप्त कर ली थी और कहना होगा कि धोबीकी धुलाईसे घरकी धुलाई किसी तरह घटिया न रहती थी। कालरका कडापन और चमक धोबीके धोये कालरसे किसी तरह कम न थी।

गोखलेके पास स्व० महादेव गोविन्द रानडेका प्रसाद-स्वरूप एक दुपट्टा था। गोखले उसे बडे जतनसे रखते और प्रसग-विशेषपर ही उसका इस्तेमाल करते। जोहान्सबर्गमें उनके स्वागतके उपलक्ष्यमें जो भोज हुआ था, वह अवसर बडे महत्त्वका था। दक्षिण अफ्रीकामें यह उनका सबसे महत्त्वपूर्ण भाषण था। इसलिए इस अवसरपर अपना वह दुपट्टा डालना चाहते थे। उसमें सलवटें पड गयी थीं और इस्त्री करनेकी जरूरत थी। धोबीके यहाँ भेजकर तुरन्त इस्त्री करा लेना सम्भव न था। मैंने कहा—'जरा मेरी विद्याको भी आजमा लीजिये।"

"तुम्हारी वकालतपर मैं विश्वास कर सकता हूं, पर इस दुपट्टेपर तुम्हारी धुलाई-कलाका प्रयोग न होने दूंगा। तुम इसे जला डालो तो? जानते हो यह कितना अमूल्य है?" यह कहकर उन्होंने बड़े उल्लाससे उस प्रसादीकी कथा कह सुनायी।

मैंने नम्रताके साथ दाग न पड़ने देनेकी जिम्मेदारी ली और मुझे इस्त्री करनेकी इजाजत मिल गयी। बादमें अपनी कुशलताका प्रमाणपत्र भी मुझे मिला। अब यदि दुनिया मुझे प्रमाणपत्र न दे तो इसमें क्या?

२०. एक पुण्य-स्मरण और प्रायश्चित्त

डरबन और जोहान्सबर्गमें मेरे साथ कई मित्र और बहुत बार मेरे कारकुन भी रहते थे। वे आमतौरपर हिन्दू और ईसाई होते थे, अथवा प्रान्तोंके हिसाबसे कहें, तो गुजराती और मद्रासी। मुझे याद नहीं आता कि कभी उनके विषयमें मेरे मनमें कोई भेद-भाव पैदा हुआ हो। मैं उन्हें

बिलकुल घरके जैसा समझता। यह मेरा कोई विशेष गुण नही, बल्कि स्वभाव ही है। मेरा एक क्लर्क ईसाई था। उसके मा-बाप पचम जातिके थे। कमरोमें पेशावके लिए एक अलग बर्तन होता था। उसे साफ करनेका काम हम दोनो—दम्पती—का था, नौकरोका नही। हा, जो कारकुन लोग अपनेको हमारा कुटुम्बी-सा मानने लगते थे, वे तो खुद ही उसे साफ कर डालते थे। लेकिन यह पचम जातिमें जन्मे कारकुन नये थे। उनका बर्तन हमे ही उठाकर साफ कर देना चाहिए था। और बर्तन तो कस्तूरबाई उठाकर साफ कर देती, लेकिन इन भाईका बर्तन उठाना उसे असह्य मालूम हुआ। इसलिए हम दोनोमें काफी विवाद हुआ। यदि मैं उठाता हू, तो उसे अच्छा नही लगता था और खुद उठाना उसके लिए कठिन था। फिर भी आंखोसे मोतीकी बूदें टपक रही है, एक हाथमें बर्तन है और अपनी लाल-लाल आखोसे उलाहना देती हुई कस्तूरबाई सीढियोसे उतर रही है! वह चित्र मैं आज भी ज्यो-का-त्यो खीच सकता हूँ।

परन्तु मैं जैसा सहृदय और प्रेमी पति था, वैसा ही निठुर और कठोर भी था। मैं अपनेको उसका शिक्षक मानता था। इससे, अपने अन्ध-प्रेमके अधीन हो, मै उसे खूब सताता था। इस कारण महज उसके बर्तन उठा ले जानेभरसे मुझे सन्तोष न हुआ। मैंने यह भी चाहा कि वह प्रसन्नतापूर्वक यह काम करे। इसके लिए मैंने उसे डाटा-डपटा भी। मै उत्तेजित होकर यह कह गया—"देखो, यह बखेडा मेरे घरमें न चल सकेगा।"

मेरा यह बोल कस्तूरबाईको तीरकी तरह लगा। उसने भरे हुए दिलसे कहा—"तो सभालो अपना घर! यह मैं चली।"

उस समय मैं ईश्वरको भूल गया था। लेशमात्र दया मेरे हृदयमें न रह गयी थी। मैंने उसका हाथ पकडा। सीढीके सामने ही बाहर निकलनेका दरवाजा था। मैं उस दीन अबलाका हाथ पकडे दरवाजेतक खीचकर ले आया। दरवाजा आधा खोला था कि आखोमें गगा-यमुनाकी धार बहाती हुई कस्तूरबाई बोली—

"तुम्हें तो कुछ शरम है नही, पर मुझे है। जरा तो लजाओ। मैं बाहर निकलकर जाऊ, कहा? मा-बाप भी यहाँ नही कि उनके पास चली जाऊ; मैं ठहरी स्त्री। इसलिए मुझे तुम्हारी धौस सुननी ही पडेगी। अब शरम करो और दरवाजा बन्द कर लो। कोई देख लेगा, तो दोनोकी फजीहत होगी।"

मैंने अपना चेहरा सुर्ख तो बना रखा, पर मनमें शरमा जरूर गया। दरवाजा बन्द कर दिया। जब पत्नी मुझे नही छोड सकती थी, तब मैं भी उसे छोडकर कहा जा सकता था? इस तरह हमारे आपसमें कई बार लडाई-

झगडे हुए है, परन्तु उनका परिणाम सदा अच्छा ही निकला है। उसमें पत्नीने अपनी अद्‌भुत सहनशीलताके द्वारा हमेशा विजय प्राप्त की है।

आज मै तबकी तरह मोहान्ध पति नही हू, न उसका शिक्षक ही हू। हम आज एक-दूसरेके मुक्त-भोगी मित्र है, एक-दूसरेके प्रति निर्विकार रहकर जीवन बिता रहे है। कस्तूरबाई आज ऐसी सेविका बन गयी है, जो बीमारियोमे बिना प्रतिफलकी इच्छा किये सेवा-शुश्रूषा करती है। मेरा अनुगमन करनेमें उसने अपने जीवनकी सार्थकता मानी है और स्वच्छ जीवन बितानेके मेरे प्रयत्नोमें उसने कभी बाधा नही डाली। इस कारण यद्यपि हम दोनोकी बुद्धि और शक्तिमें बहुत अन्तर है, फिर भी मेरा खयाल है कि हमारा जीवन सन्तोषी, सुखी और ऊर्ध्वगामी है।

२१. बोअर-युद्ध

१८९७ से ९९ ईस्वीतकके जीवनके दूसरे कई अनुभवोको छोडकर अब बोअर-युद्धपर आता हू। जब यह युद्ध छिडा, तब मेरी सहानुभूति बिलकुल बोअरोके पक्षमे थी, पर मैं यह मानता था कि ऐसी बातोमें अपने व्यक्तिगत विचारोके अनुसार काम करनेका अधिकार अभी मुझे प्राप्त नही हुआ है। इस सम्बन्धमे जो मन्थन मेरे हृदयमे हुआ, उसका सूक्ष्म निरीक्षण मैने 'दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहका इतिहास' मे किया है। जिनको जाननेकी इच्छा हो, वे उस पुस्तकको पढ ले। यहा तो इतना ही कहना काफी है कि ब्रिटिश राज्यके प्रति मेरी वफादारी मुझे उस युद्धमे योग देनेके लिए जबरदस्ती घसीट ले गयी। मैने सोचा कि जब मैं ब्रिटिश प्रजाकी हैसियतसे हकोका मतालबा कर रहा हू, तो ब्रिटिश प्रजाकी हैसियतसे ब्रिटिश राज्यकी रक्षामे सहायक होना मेरा धर्म है। ब्रिटिश साम्राज्यमे हिन्दुस्तानकी सब तरह उन्नति हो सकती है, यह उस समय मेरा मत था।

इसलिए जितने साथी मिले, उनको लेकर, अनेक मसीबतोका सामना करके हमने घायलोकी सेवा-शुश्रूषा करनेवाली एक टुकडी तैयार की। अबतक अंग्रेजोकी यह आम धारणा थी कि यहाके हिन्दुस्तानी जोखिमके कामोमे नही पडते, स्वार्थके अलावा उन्हे और कुछ नही सूझता। इसलिए कितने ही अंग्रेज मित्रोने मुझे निराशाजनक उत्तर दिये। अलबत्ता डा० बूथने खूब प्रोत्साहन दिया। उन्होने हमे घायल सिपाहियोकी शुश्रूषा करनेकी शिक्षा दी। अपनी योग्यताके सम्बन्धमे मैने डॉक्टरके प्रमाणपत्र प्राप्त किये।

सरकारने इस सिलसिलेमे हमारी प्रार्थना स्वीकार की और इस

टुकडीमे लगभग ग्यारह सौ लोग हो गये। उनमे लगभग चालीस मुखिया थे। कोई तीन सौ स्वतन्त्र हिदुस्तानी भर्ती हुए थे और शेष गिरमिटिया थे। डॉ० बूथ भी हमारे साथ थे। टुकडीने अपना काम अच्छी तरह किया। यद्यपि उसका कार्य-क्षेत्र लडाईके मैदानके बाहर था, और रेडक्रास* चिह्न उनकी रक्षाके लिए लगा हुआ था, फिर भी आवश्यकताके समय प्रत्यक्ष युद्ध-क्षेत्रकी हदके अन्दर भी काम करनेका अवसर हमे मिला। ऐसी जोखिममे न पडने देनेका इकरार सरकारने अपनी इच्छासे हमारे साथ किया था, परन्तु स्पियाकोपकी हारके बाद स्थिति बदली। इस कारण जनरल बुलरने सन्देश भेजा कि यद्यपि आप जोखिमकी जगह काम करनेके लिए बन्धे हुए नही हैं, फिर भी यदि आप खतरेका सामना करके घायल सिपाहियो अथवा अफसरोको रण-क्षेत्रसे उठाकर डोलियोमें ले जानके लिए तैयार हो जायगे, तो सरकार आपका उपकार मानेगी। इधर हम तो जोखिम उठानेके लिए तैयार ही थे। अतएव स्पियाकोपके युद्धके बाद हम गोला-बारूदकी हदके अन्दर भी काम करने लगे।

इन दिनो हम सबको कई बार बीस-पचीस मीलकी मजिल तय करनी पडती थी। एक बार तो घायलोको डोलीमें रखकर इतनी दूर चलना भी पडा था। जिन घायल योद्धाओको हम उठाकर ले जाते थे, उनमे जनरल उडगेट इत्यादि भी थे।

छह सप्ताहके बाद हमारी टुकडीको छुट्टी मिल गयी। हमारी इस छोटी-सी सेवाकी उस समय बहुत प्रशसा हुई। उससे हिन्दुस्तानियोकी प्रतिष्ठा बढी। 'आखिर हिन्दुस्तानी हैं तो साम्राज्यके वारिस ही' ऐसे गीत गाये गये।

मनुष्य-स्वभाव दु खके समय कैसा नम्र हो जाता है, इसकी एक मधुर स्मृति यहा दिये बिना नही रह सकता। हम लोग चीवली छावनीकी ओर जा रहे थे। यह वही क्षेत्र है, जहा लार्ड राबर्ट्सके पुत्र लेफ्टिनेण्ट राबर्ट्सको मर्मान्तक गोली लगी थी। लेफ्टिनेण्ट राबर्ट्सके शवको ले जानेका गौरव हमारी टुकडीको प्राप्त हुआ था। लौटते समय दिनमे धूप कडी थी। हम कूच कर रहे थे। सब प्यासे थे। पानी पीनेके लिए रास्तेमे एक छोटा-सा झरना पडा। सवाल उठा, पहले कौन पानी पिये? मैंने सोचा था कि 'टामियो' के पी लेनेके बाद हम पियेगे। टामियोने हमें देखकर तुरन्त

---

* रेडक्रासका अर्थ है लाल स्वस्तिक। युद्धमें इस चिह्नसे अंकित पट्टे शुश्रूषा करनेवालेके बायें हाथमे बधे रहते हैं और ऐसे नियम हैं कि शत्रु भी उनको नुकसान नहीं पहुंचा सकते। —सम्पादक

कहा—"पहले आप लोग पी ले।" हमने कहा—"नही, पहले आप पियें।" इस तरह बहुत देरतक हमारे और उनके बीच मधुर आग्रहकी खीचातानी होती रही।

इस अध्यायको खत्म करनेसे पहले मुझे एक महत्त्वपूर्ण घटनाका जिक्र करना चाहिए। जब लेडी स्मिथपर बोअरोने घेरा डाल रखा था, तब वहा जो लोग थे, उनमें अग्रेजोके अलावा कुछ वहींके निवासी हिन्दुस्तानी भी थे। उनमेंसे कुछ एक तो व्यापार करते थे और कुछ रेलवेमें मजदूरी या यूरोपियन लोगोंके यहां नौकरी करते थे। इनमेंसे एक प्रभुसिह था। लेडी स्मिथके कमाडिग अफसरने उस जगहके हर आदमीको कुछ-न-कुछ काम सौंप रखा था। शायद सबसे ज्यादा खतरनाक और भारी-से-भारी जिम्मेदारीका काम इस प्रभुसिह कुलीको सौंपा गया था। लेडी स्मिथके पासकी एक पहाडीपर बोअरोने अपनी योमपोम नामक तोप लगा रखी थी, जिसके गोलेसे बहुत-सी इमारतें नष्ट हो चुकी थी, और कितने ही मनुष्य तथा पशु भी मारे गये थे। तोपसे गोला छूटनेके कम-से-कम एक या दो मिनट बाद वह अपने दूरके लक्ष्यपर पहुचता था। अगर घेरेमें पडे लोगोंको पहलेसे सूचना मिल जाय, तो गोला उनके बीचमें गिरनेके पहले वे अपने-आपको आड़मे कर सकते थे। प्रभुसिह एक पेडपर छिपकर बैठा रहा करता था और जबतक तोपें चलती रहती, उसकी आखें पहाडीकी ओर ही लगी रहती थी और ज्योंही वह तोप छूटनेकी चमक देखता, घटी बजा देता था। घटी बजते ही लेडी स्मिथके निवासी सजग हो जाते थे और एकदम अपने-आपको आडमें छिपाकर अपनी जान बचा लेते थे।

उसकी बहादुरीकी चर्चा आखिरकार लार्ड कर्जनतक पहुची, जो उस समय भारतके वाइसराय थे। उन्होने प्रभुसिहको भेंट-स्वरूप एक कश्मीरी पोशाक भिजवायी थी।

२२. देश-गमन तथा मेरी श्रद्धा

लडाईके कामसे मुक्त होनेके बाद मैंने सोचा कि अब मेरा काम दक्षिण अफ्रीकामें नही, बल्कि देशमें है। दक्षिण अफ्रीकामें बैठे-बैठे मै कुछ-न-कुछ सेवा तो जरूर कर पाता था, परन्तु मैंने देखा कि यहा कही मेरा मुख्य काम धन कमाना ही न हो जाय।

देशसे मित्रलोग भी देश लौट आनेको आकर्षित कर रहे थे। मुझे भी जचा कि देश जानेसे मेरा अधिक उपयोग हो सकेगा। नेटालमें मि० खान और मनसुखलाल नाजर थे ही।

मैंने साथियोसे छुट्टी देनेका अनुरोध किया। बडी मुश्किलसे उन्होने एक शर्तपर छुट्टी स्वीकार की। वह यह कि एक सालके अन्दर यहाके लोगोको मेरी जरूरत मालूम हो, तो मै फिर दक्षिण अफ्रीका आ जाऊ। मुझे यह शर्त कठिन मालूम हुई, परन्तु मै तो प्रेम-पाशमे बधा हुआ था।

काचे रे तातणे मने हरजीए बांधी
जेम ताणे तेम तेमनी रे
मने लागी कटारी प्रेमनी।

अर्थात्—"प्रभुजीने मुझे कच्चे प्रेम-धागेसे बाध लिया है। ज्यो-ज्यो वह उसे तानते है, त्यो-त्यो मै उनकी होती जाती हू।"

मीराबाईकी यह उपमा न्यूनाधिक अशमें मुझपर घटित होती थी। पच भी परमेश्वर ही है। मित्रोकी बातोको मै टाल नही सकता था। मैंने वचन देकर इजाजत ली।

इस समय मेरा निकट सम्बन्ध प्राय नेटालके ही साथ था। नेटालके हिन्दुस्तानियोने मुझे प्रेमामृतसे नहला डाला। स्थान-स्थानपर अभिनन्दन-पत्र दिये गये और हर जगहसे कीमती चीजे भेंट की गयी।

१८९६ मे जब मै आया था, तब भी भेंटें मिली थी, पर इस बारकी भेंटो और सभाओके दृश्योसे मै घबराया। भेंटमें सोने-चादीकी चीजे तो थी ही, पर हीरेकी भी थी।

इन सब चीजोको स्वीकार करनेका मुझे क्या अधिकार हो सकता है? यदि मै मजूर कर लू, तो फिर अपने मनको यह कहकर कैसे मना सकता हू कि मै पैसा लेकर लोगोकी सेवा नही करता था? मेरे मवक्किलोकी कुछ रकमें छोडकर बाकी सब चीजें मेरी लोक-सेवाके उपलक्ष्यमें दी गयी थी। पर मेरे मनमें तो मवक्किल और दूसरे साथियोमें कुछ भेद न था। मुख्य-मुख्य मवक्किल सब सार्वजनिक काममें भी सहायता देते थे।

फिर उन भेंटोमे एक पचास गिन्नीका हार कस्तूरबाईके लिए था। मगर उसे जो चीज मिली थी, वह भी तो मेरी ही सेवाके फलस्वरूप न! अतएव उसे अलग नही मान सकते थे।

जिस शामको इनमेंसे मुख्य-मुख्य भेंटें मिली, वह रात मैंने एक पागलकी तरह जागकर काटी। कमरेमें इधर-से-उधर टहलता रहा, परन्तु गुत्थी किसी तरह सुलझती न थी। सैकडो रुपयोकी भेंट न लेना भारी पड रहा था, पर लेना उससे भी भारी मालूम होता था।

मै चाहे इन भेंटोको पचा भी सकता, पर मेरे बच्चे और पत्नी? उन्हें तालीम तो सेवाकी मिल रही थी। सेवाका दाम नही लिया जा सकता,

यह हमेशा समझाया जाता था। घरमें कीमती जेवर आदि मैं नहीं रखता था। सादगी बढ़ती जाती थी। ऐसी अवस्थामें सोनेकी घड़िया कौन रखेगा? सोनेकी कंठी और हीरेकी अंगूठिया कौन पहनेगा? गहनोंका मोह छोड़नेके लिए मैं उस समय भी औरोंसे कहता रहता था। अब इन गहनों और जवाहरातको लेकर मैं क्या करूंगा?

मैं इस निर्णयपर पहुंचा कि वे चीजें मैं हरगिज नहीं रख सकता। पारसी रुस्तमजी इत्यादिको इन गहनोंका ट्रस्टी बनाकर उनके नाम एक चिट्ठी तैयार की और सुबह स्त्री-पुत्रादिसे सलाह करके अपना बोझ हल्का करनेका निश्चय किया।

मैं जानता था कि पत्नीको समझाना मुश्किल पड़ेगा। मुझे विश्वास था कि बालकोंको समझानेमें जरा भी दिक्कत न होगी। अतएव उन्हें अपना वकील बनानेका निश्चय किया।

बच्चे तो तुरन्त समझ गये। वे बोले—"हमें गहनोंमें कुछ मतलब नहीं, ये सब चीजें हमें लौटा देनी चाहिए। और यदि जरूरत होगी, तो क्या हम खुद न बना सकेंगे?"

मैं प्रसन्न हुआ। "तो तुम बाको—माको—समझाओगे न?" मैंने पूछा।
"जरूर-जरूर! वह कहां इन गहनोंको पहनने चली हैं। वह रखना चाहेंगी भी तो हमारे लिए न? पर जब हमें ही इनकी जरूरत नहीं है, तब फिर वह क्यों जिद करने लगीं?"

परन्तु काम अन्दाजसे ज्यादा मुश्किल साबित हुआ।

"तुम्हें चाहे जरूरत न हो और लड़कोंको भी न हो—बच्चोंकी क्या, जैसा समझा दें, समझ जाते हैं। मुझे न पहनने दो, पर मेरी बहुओंको जरूरत न होगी? और कौन कह सकता है कि कल क्या होगा? जो चीज लोगोंने इतने प्रेमसे दी है, उसे वापस लौटाना ठीक नहीं।" इस प्रकार वाग्धारा शुरू हुई और उसके साथ अश्रु-धारा भी। लड़के दृढ़ रहे और मैं क्यों डिगने लगा।

मैंने धीरे-से कहा—'पहले लड़कोंकी शादी तो हो लेने दो। हम बचपनमें तो इनके विवाह करना चाहते ही नहीं हैं। बड़े होनेपर जो इनका जी चाहे सो करें। फिर हमें क्या गहने-कपड़ोंकी शौकीन बहुएं खोजनी हैं? फिर भी अगर कुछ बनवाना होगा, तो मैं कहां चला गया हूं?"

"हां जानती हूं तुमको। वही न हो, जिन्होंने मेरे भी गहने उतरवा लिये हैं। जब मुझे ही नहीं पहनने देते हो, तो मेरी बहुओंको जरूर ला दोगे! लड़कोंको तो अभीसे वैरागी बना रहे हो। इन गहनोंको मैं वापस नहीं होने दूंगी, और फिर मेरे हारपर तुम्हारा क्या हक?"

"पर यह हार तुम्हारी सेवाके खातिर मिला है या मेरी ?"

"जैसे भी हो, तुम्हारी सेवामें क्या मेरी सेवा नही है ? मुझसे जो दिन-रात मजूरी कराते हो, क्या वह सेवा नही है ? मुझे रला-रुलाकर जो ऐरो-गैरोको घरमें रखा और मुझसे सेवा-टहल करवायी, वह कुछ भी नही ?"

ये सव तीखे बाण थे। कितने ही तो मुझे चुभ रहे थे , पर गहने वापस लौटानेका तो मैं निश्चय ही कर चुका था। अतको वहुतेरी वातोमें मैं जैसे-तैसे सम्मति प्राप्त कर सका। १८९६ और १९०१ मे मिली सब भेटे वापस लौटायी। उनका ट्रस्ट बनाया गया और लोक-सेवाके लिए उनका उपयोग मेरी अथवा ट्रस्टियोकी इच्छाके अनुसार होनेकी शर्तपर वह रकम वैंकमे रखी गयी। इन चीजोको वेचनेके निमित्तसे मैं बहुत वार रुपया एकत्र कर सका हू। आज भी आपत्ति-कोषके रूपमे वह रकम मौजूद है और उसमे वृद्धि होती जाती है।

इस बातके लिए मुझे कभी पश्चात्ताप नही हुआ। आगे चलकर कस्तूरबाईको भी उसका औचित्य जचने लगा। इस तरह हम अपने जीवनमे बहुतेरे लालचोसे बच गये है।

मेरा यह निश्चित मत हो गया है कि लोक-सेवीको जो भेटे मिलती है, वे उसकी निजी चीज कदापि नही हो सकती।

× × ×

जब मैं स्वदेश पहुचा, तो उस साल कलकत्तेमे होनेवाली कांग्रेसके अवसरपर मुझे लोगोकी सेवा करनेका काफी अवसर मिला। मैंने स्वयसेवकोको झाडू लगाने और कूडा-करकट साफ करनेका यथार्थ पाठ दिया, साथ ही कांग्रेसके एक प्रधानमत्री श्रीयुत घोषालके कारकुन और 'बेरा' (नौकर) का काम करनेका सौभाग्य भी मुझे मिला। स्व० गोखलेका मैं चिरकृतज्ञ रहूगा, जिन्होने मेरे स्वदेश लौट आनेके बादसे मुझे हमेशा अपना छोटा भाई माना और उन्हीकी कृपासे मुझे कांग्रेसमें दक्षिण अफ्रीकाके बारेमे एक प्रस्ताव पेश करनेका अवसर मिला, उन्होने मेरे तमाम कामोमे गहरी दिलचस्पी ली और मुझे उन सब खास खास व्यक्तियोसे परिचित कराया, जिनमे मेरा परिचित होना वह ठीक समझते थे। उन्हे काम करते देखकर खुशी तो होती थी, एक शिक्षा भी मिलती थी। जो कुछ भी वह करते, उसका देश ही से घनिष्ठ सम्बन्ध होता। उनको इस बातकी बडी चिन्ता थी कि मैं बम्बईमे जम जाऊ और वकालत करते हुए उन्हें सार्वजनिक यानी कांग्रेस-कार्यमे मदद पहुचाऊ। मैंने उनकी सलाहकी कद्र की, लेकिन मुझे वैरिस्टरके रूपमे अपनी कामयाबीका विश्वास नही होता था। मैंने राजकोट-

मे काम चालू किया और काम ठीक चल निकला था कि हमारे परिवारके उन्ही शुभचिन्तक मित्र श्री केवलराम मावजी दवेने, जिन्होंने मुझे इग्लैण्ड भिजवाया था, इस वातपर आग्रह किया कि मैं वम्वईमे जाकर वकालत करू।

उन्होंने कहा—"आप तो लोक-सेवा करनेके लिए पैदा हुए हो। इसलिए आपको हम यहाँ काठियावाडमे दफन नही होने देंगे। वोलो कव जा रहे हो ?"

"नेटालसे मेरे कुछ रुपये आने बाकी है, उनके आनेपर चला जाऊगा।"

दो-एक सप्ताहमे रुपये आ गये और मै वम्वई चला गया। वहाँ मैंने पेन, गिलवर्ट और सयानीके आफिसमे 'चेंवर' किरायेपर लिये और वही जम गया।

ऑफ्सिके साथ ही मैंने गिरगावमे घर लिया, परन्तु ईश्वरने मुझे स्थिर नही रहने दिया। घर लिये वहुत दिन नही हुए थे कि मेरा दूसरा लडका मणिलाल वीमार हो गया। कालेज्वरने उसे घेर लिया था। वुखार उतरता ही नही था। उसे घवराहट तो थी ही, पर रातको सन्निपातके लक्षण भी दिखाई देने लगे। इससे पहले वचपनमे उसे चेचक भी जोरोकी निकल चुकी थी।

डॉक्टरकी सलाह ली, तो उन्होंने कहा—"इसके लिए दवाई काम नही दे सकती, अव तो इसे अण्डे और मुर्गीका शोरवा देनेकी जरूरत है।"

मणिलालकी उम्र दस सालकी थी, उससे तो मुझे इस विषयमे क्या पूछना था ? उसका सरक्षक तो मैं ही था और मुझे ही निर्णय करना था। डॉक्टर एक पारसी सज्जन थे। मैंने कहा—"डॉक्टर, हम तो सव अन्नाहारी हैं। मेरा विचार तो इसे इनमेंसे एक भी वस्तु देनेका नही है। दूसरी कोई वस्तु न वतलायेंगे ?"

डॉक्टर वोला—"तुम्हारे लडकेकी जान खतरेमें है। दूध और पानी मिलाकर दिया जा सकता है, पर उससे पूरा सन्तोप नही हो सकता। तुम जानते हो कि मैं तो वहुत-से हिन्दू-परिवारोंमे जाया करता हूँ, पर दवाके लिए तो हम जो चाहते हैं, वही उन्हें देते हैं और वे उसे लेते भी हैं। मैं समझता हू कि तुम भी अपने लडकेके साथ ऐसी सख्ती न करो तो अच्छा होगा।"

"आप जो कहते है, वह तो ठीक है, और आपको ऐसा कहना ही चाहिए, पर मेरी जिम्मेदारी वहुत वडी है। यदि लडका वडा होता तो जरूर उसकी इच्छा जाननेका प्रयत्न भी करता और जो वह चाहता वही उसे करने देता, पर यहाँ तो इसके लिए मुझे ही विचार करना पड रहा है। मैं तो समझता हू कि मनुष्यके धर्मकी कसौटी ऐसे ही समय होती है। चाहे ठीक

हो चाहे गलत, मैंने तो इसको धर्म माना है कि मनुष्यको मासादिक न खाना चाहिए। जीवनके साधनोंकी भी सीमा होती है। जीनेके लिए भी अमुक वस्तुओंको हमें नही ग्रहण करना चाहिए। मेरे धर्मकी मर्यादा मुझे और मेरे परिवारके लोगोंको भी ऐसे समयपर मास इत्यादि खानेसे रोकती है। इसलिए आप जिस खतरेको देखते है, मुझे उसे उठाना ही चाहिए, पर आपसे मैं एक बात चाहता हू। आपका इलाज तो म नही करूगा, पर मुझे नाडी और हृदयको देखना नही आता है। जल-चिकित्साकी मुझे थोडी जानकारी है। उन उपचारोंको मैं करना चाहता हू, परन्तु यदि आप नियममे मणिलालको देखने आते रहें और उसके शरीरमें होनेवाले परिवर्तनों-से मुझे वाकिफ करते रहेंगे, तो मैं आपका उपकार मानूगा।"

सज्जन डॉक्टर मेरी कठिनाइयोंको समझ गये और इच्छानुसार उन्होंने मणिलालको देखनेके लिए आना मजूर कर लिया।

यद्यपि मणिलाल अपनी राय कायम करने लायक नही था, तो भी डॉक्टरके साथ जो मेरी बातचीत हुई थी, वह उसे मैंने सुनायी और अपने विचार प्रकट करनेको कहा।

"आप बेखटके जल-चिकित्सा कीजिये। मैं शोरवा नही पीऊगा और न अडे खाऊगा।" उसके इन वाक्योंसे म प्रसन्न हो गया, यद्यपि मैं जानता था कि अगर मैं उसे दोनों चीजें खानेको कहता, तो वह खा भी लेता।

मैं कूनेकी जल-चिकित्साको जानता था, उसका उपयोग भी किया था। बीमारीमें उपवासका स्थान बडा है, यह मैं जानता था। कूनेकी पद्धतिके अनुसार मैंने मणिलालको कटि-स्नान कराना शुरू किया। तीन मिनटसे ज्यादा उसे मैं टबमें नही रखता। तीन दिन तो सिर्फ सन्तरेके रसमे पानी मिलाकर देता रहा और उसीपर रखा।

बुखार दूर नही होता था और रातको वह कुछ-कुछ बडबडाता भी था। बुखार १०४ डिग्रीतक हो जाता था। मैं घबराया। यदि बच्चेको खो बैठा, तो दुनियामें लोग मुझे क्या कहेंगे? बडे भाई क्या कहेंगे? दूसरे डॉक्टरोंको क्यों न बुलाया जाय? किसी वैद्यको क्यों न बुलाऊ? मा-बापको अपनी अधूरी अक्ल आजमानेका क्या हक है?

ऐसे विचार उठते। पर ये विचार भी उठते—"जीव! जो तू अपने लिए करता है, वह लडकेके लिए भी करेगा तो परमेश्वर सन्तोष मानेंगे। तुझे जल-चिकित्सापर श्रद्धा है, दवापर नही। डॉक्टर जीवनदान तो देते नही। उनके भी तो आखिर प्रयोग ही होते हैं न! जीवनकी डोरी तो एकमात्र ईश्वरके ही हाथमें है। ईश्वरका नाम ले और उसपर श्रद्धा रख। अपने मार्गको न छोड।"

मनमे इस तरह उथल-पुथल मचती रही। रात हुई। मैं मणिलालको अपने पास लेकर सोया हुआ था। मैंने निश्चय किया कि उसे भीगी चादर-की पट्टीमें रखा जाय। मैं उठा, कपडा लिया, ठण्डे पानीमें उसे डुबोया और निचोडकर उसमें पैरसे लेकर सिरतक उसे लपेट दिया और ऊपरसे दो कम्बल ओढा दिये। सिरपर भीगा हुआ तौलिया भी रख दिया। शरीर तवेकी तरह तप रहा था, पसीना तो आता ही न था।

मैं खूब थक गया था। मणिलालको उसकी माको सौंपकर मैं आधे घटेके लिए चौपाटीकी तरफ गया कि खुली हवामे ताजगी और शान्ति प्राप्त करू। रातके दस बजे होगे। मनुष्योंकी आमोदरफ्त कम हो गयी थी, पर मुझे इसका खयाल न था। मै अपने विचार-सागरमे गोते लगा रहा था। "हे ईश्वर! इस धर्म-सकटमें तू मेरी लाज रखना।" मुहसे 'राम-राम' की रटन तो चल ही रही थी। कुछ देर बाद वापस लौटा। मेरा कलेजा धडक रहा था। घरमे घुसते ही मणिलालने आवाज दी—"बापू आ गये?"

"हा, भाई!"

"इसमेंसे निकालिये न? मै तो मारे आगके मरा जा रहा हू।"

"क्यो, क्या पसीना आ रहा है?"

"अजी, मैं तो पसीनेसे तर हो गया। अब तो मुझे निकालिये।"

मैंने मणिलालका सिर देखा। उसपर मोतीकी तरह पसीनेकी बूदें चमक रही थी। बुखार कम हो गया था, ईश्वरको धन्यवाद दिया।

"मणिलाल, घबरा मत, अब तेरा बुखार चला जायगा, पर कुछ और पसीना आ जाय तो कैसा?" मैंने उससे कहा।

उसने कहा—"नही बापू, अब तो मुझे छुड़ाइये। फिर देखा जायगा।"

मुझे धैर्य आ गया था। इसलिए बातों-ही-बातोंमे कुछ मिनट लगा दिये। सिरसे पसीनेकी धारा बह चली। मैंने चादरको अलग किया और शरीरको पोंछकर सुखा दिया। बाप-बेटे दोनो सो गये और खूब सोये।

सुबह देखा, तो मणिलालका बुखार बहुत कम हो गया था। दूध, पानी तथा फलोंपर चालीस दिनतक रखा। मैं निश्चिन्त हो गया था। बुखार हठीला था, पर वह काबूमें आ गया था। आज मेरे लडकोंमे मणिलाल ही सबसे अधिक स्वस्थ और मजबूत है।

इसका निर्णय कौन कर सकता है कि यह रामजीकी कृपा है या जल-चिकित्सा, अल्पाहार अथवा और किसी उपायकी? भले ही सबके अपनी-अपनी श्रद्धाके अनुसार मत हो, पर उस वक्त मेरी तो ईश्वरने लाज रखी। यही मैंने माना और आज भी मानता हू।

२३. फिर दक्षिण अफ्रीका

पर जैसे ही मैंने बम्बईमें स्थिर होनेका निश्चय किया और कुछ स्वस्थताका अनुभव करने लगा कि एकाएक दक्षिण अफ्रीकासे तार आ पहुचा—"चैम्बरलेन यहा आ रहे है, तुम्हे शीघ्र आना चाहिए।" मुझे अपने वचन याद थे, अत मैं अपना आफिस समेट-समाटकर रवाना हो गया।

दक्षिण अफ्रीका पहुचते ही मुझे जैसे वहाकी दु खदायी राजनैतिक हालत मिली, पाठकोको उसके विस्तारमे डालनेकी जरूरत नही। बोअर-युद्धके समय की गयी प्रवासी भारतीयोकी सेवाओको भुलाया जा चुका था। भारतीयोकी हालत दिन-पर-दिन बिगडती जा रही थी और उनपर नयी-नयी मुसीबतें लादी जा रही थी। वहा जाते ही मैने समझ लिया कि अगर मुझे सचमुच ही वहा रहनेवाले स्वदेशियोकी सेवा करनी है, तो मुझे अब दक्षिण अफ्रीकामे काफी अर्सेतक रहना होगा। मैंने जोहान्सबर्गमे दफ्तर खोलनेका निश्चय किया। कुछ परिश्रम करनेपर नगरके अच्छे मुहल्लेमे मुझे रहनेको कमरे मिल गये।

इधर तो कौमकी सेवामे अपनेको लगा देनेका निश्चय किया और उधर गीताको नये सिरेसे पढने लगा जिससे अन्तर्दृष्टि बढने लगी।

इस बार भी कुछ थियासॉफिस्ट मित्रोके साथ ही मैने गीताका अध्ययन किया, लेकिन पहलेसे कही ज्यादा गहराई और मनोयोगके साथ। मैंने गीताके श्लोक याद करनेका प्रयत्न किया और मुझे याद है कि मैंने कम-से-कम तेरह अध्याय कठस्थ कर लिये थे।

इस गीता-पाठका असर मेरे सहाध्यायियोपर तो जो कुछ पडा हो वह वे ही बता सकते है, किन्तु मेरे लिए तो गीता आचारकी एक अचूक मार्ग-दर्शिका बन गयी है। उसे मेरा धार्मिक कोष ही कहना चाहिए। अपरिचित अग्रेजी-शब्दोके हिज्जे या अर्थ देखनेके लिए जिस तरह मैं अग्रेजी-कोश खोलता, उसी तरह आचार-सम्बन्धी कठिनाइयो और उसकी अटपटी गुत्थियोको गीताके द्वारा सुलझाता। उसके 'अपरिग्रह', 'समभाव' इत्यादि शब्दोने तो मुझे जैसे पकड ही लिया। यही धुन रहती थी कि समभाव कैसे प्राप्त करू ? कैसे उसका पालन करू ? हमारा अपमान करनेवाला अधिकारी, रिश्वतखोर, चलते रास्ते विरोध करनेवाले, कल जिनका साथ था, ऐसे साथी, उनमे और उन सज्जनोमे जिन्होने हमपर भारी उपकार किया है, क्या कोई भेद नही है ? अपरिग्रहका पालन किस तरह सम्भव है ? क्या यह हमारी देह ही हमारे लिए कम परिग्रह है ? स्त्री-पुरुष आदि यदि परिग्रह नही है, तो फिर क्या है ? क्या पुस्तकोसे भरी इन अलमारियो-

मे आग लगा दू ? पर यह तो घर जलाकर तीर्थ करना हुआ। अन्दरसे तुरन्त उत्तर मिला—"हा, घरबारको खाक किये बिना तीर्थ नही किया जा सकता।" इसमे अग्रेजी कानूनके अध्ययनने मेरी सहायता की। स्नल-रचित कानूनके सिद्धान्तोंकी चर्चा याद आयी। 'ट्रस्टी' शब्दका अर्थ गीताके अध्ययनकी बदौलत अच्छी तरह समझमे आया। कानून-शास्त्रके प्रति मनमें आदर बढा। उसके अन्दर भी मुझे धर्मका तत्त्व दिखाई पडा। 'ट्रस्टी' यों करोडोंकी सम्पत्ति रखते है, फिर भी उसकी एक पाईपर उनका अधिकार नही होता। इसी तरह मुमुक्षुको अपना आचरण रखना चाहिए—यह पाठ मैंने गीतासे सीखा। अपरिग्रही होनेके लिए, समभाव रखनेके लिए, हेतुका और हृदयका परिवर्तन आवश्यक है, यह बात मुझे दीपककी तरह स्पष्ट दिखाई देने लगी। मैंने बम्बईमे एक बीमा-एजेंटके समझानेमे आकर अपना दस हजारका बीमा करा लिया था। जब ये विचार मेरे मनमे उठे, तो तुरन्त रेवाशकर भाईको बम्बई लिखा कि बीमेकी पालिसी रद्द कर दी जाय। कुछ रुपया वापस मिल जाय तो ठीक, नही तो खैर। बाल-बच्चों और गृहिणीकी रक्षा वह ईश्वर करेगा, जिसने उनको और हमको पैदा किया है। यह मेरे उस पत्रका आशय था। पिताके समान अपने बडे भाईको लिखा—"आजतक मैं जो बचाता रहा, आपके अर्पण करता रहा। अब मेरी आशा छोड दीजिये। अब जो कुछ बच रहेगा, वह यहींके सार्वजनिक कामोंमे लगेगा।"

इसी समय (१९०४) मैंने 'इडियन ओपीनियन' नामक एक साप्ताहिक पत्रके सम्पादनका भार अपने ऊपर ले लिया। उसमे दक्षिण अफ्रीकाके प्रवासी भारतीयोंके हितोंमे सम्बन्ध रखनेवाली समस्याओंकी चर्चा होती थी। थोडे ही दिनोंमे मैंने यह जान लिया कि बिना आर्थिक मददके पत्र चलना असम्भव है। मैं अपनी बचत उसमे लगाता रहा। यहातक कि ऐसा करते-करते मैं अपना सब कुछ उसीमे खपाने लगा। जिस प्रकार आज 'यग इण्डिया', 'नवजीवन' मेरे जीवनके प्रतिबिम्ब है, उसी प्रकार 'इडियन ओपीनियन' भी था। उसीमें मैं प्रति सप्ताह अपनी आत्माको उडेलता और उस चीजको समझानेका प्रयत्न करता, जिसे मैं 'सत्याग्रह' के नामसे पहचानता था। जेलके दिनोंको छोडकर दस वर्षतक अर्थात् १९१४ तकके 'इडियन ओपीनियन' का शायद ही कोई अक ऐसा गया हो, जिसमे मैंने एक भी शब्द बिना विचारे, बिना तौले लिखा हो। यह अखबार मेरे लिए सयमकी तालीमका काम देता था। मैं जानता हू कि उसके लेखोंकी बदौलत टीकाकारोंको भी अपनी कलमपर अकुश रखना पडता था। यदि यह अखबार न होता, तो सत्याग्रह-सग्राम न चल सकता। पाठक इसे अपना

पत्र समझते थे और इसमे उन्हें सत्याग्रह-सग्राम तथा दक्षिण अफ्रीका-स्थित हिन्दुस्तानियोकी दशाका चित्र दिखाई पडता था।

इसी पत्रके स्तम्भोमे मैंने आहार-शास्त्रपर लेख-माला लिखी थी, जो बादमे सकलित होकर पुस्तकाकार छपी थी और जिसके अग्रेजी अनुवाद 'गाइड टु हेल्थ' ने पूर्व और पश्चिमके बहुतेरे पाठकोकी जिन्दगीको बहुत ज्यादा बदल डाला है।

२४. एक पुस्तकका चमत्कारी प्रभाव

कुछ खास-खास किताबोका असर मेरे जीवनपर बहुत गहरा पडा है, लेकिन जिस पुस्तकने मेरे जीवनमे सबसे ज्यादा क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिया है, वह रस्किनकी 'अनटु दिस लास्ट' पुस्तक है।

१९०४ में 'इण्डियन ओपीनियन' का कारोबार व्यवस्थित करनेके लिए मेरा डरबन जाना हुआ। मि० एलबर्ट वेस्ट मेरे एक अग्रेज मित्र थे। वह छापेखानेका काम करते थे। मेरे कहनेसे वह अपना काम छोडकर 'इडियन ओपीनियन' के हिसाब-किताबको ठीक-ठाक करनेके लिए डरबन गये और वहा जाकर मुझे सूचित किया कि पत्रकी आर्थिक दशा बहुत चिन्ताजनक है।

वेस्टका ऐसा पत्र पाकर मैं नेटालके लिए रवाना हुआ। मिस्टर पोलक, जो मेरे साथी हो चुके थे, स्टेशनपर मुझे पहुचाने आये और रस्किनकी उपर्युक्त पुस्तक मेरे हाथमे रखकर बोले, "यह पुस्तक पढने लायक है, आपको जरूर पसन्द आयेगी।"

पुस्तकको मने जो एक बार पढना शुरू किया तो खतम किये बिना न छोड सका। उसने मेरे हृदयपर अधिकार कर लिया। जोहान्सबर्गसे नेटाल चौबीस घटेका रास्ता है। ट्रेन शामको डरबन पहुचती थी। पहुचनेके बाद रातभर नीद नही आयी। इस पुस्तकके विचारोके अनुसार जीवन बनानेकी धुन लग रही थी।

मेरे जीवनमे यदि किसी पुस्तकने तत्काल महत्त्वपूर्ण रचनात्मक परिवर्तन कर डाला है तो वह यही पुस्तक है। बादको मैंने इसका गुजरातीमे अनुवाद किया और वह 'सर्वोदय' के नामसे प्रकाशित हुआ।

मेरा यह विश्वास है कि जो चीज मेरे अन्तरमे बसी हुई थी, उसका स्पष्ट प्रतिबिम्ब मैंने रस्किनके इस ग्रथमे देखा और इस कारण उसने मुझपर अपना साम्राज्य जमा लिया एव अपने विचारोके अनुसार मुझसे आचरण करवाया। हमारी अन्तस्थ सुप्त भावनाओंको जाग्रत करनेकी सामर्थ्य

जिसमे होती है, वह कवि है। सब कवियोका प्रभाव सबपर एक-सा नही होता, क्योकि सब लोगोमे सभी अच्छी भावनाए एक मात्रामे नही होती।

'सर्वोदय' के सिद्धान्तोको मैं इस प्रकार समझा :

१ सबके भलेमे अपना भला है।

२ वकील और नाई दोनोके कामकी कीमत एक-सी होनी चाहिए, क्योकि आजीविकाका हक दोनोको एक-सा है।

३ मजदूरका और किसानका, अर्थात् परिश्रमका जीवन ही सच्चा जीवन है।

पहली बात तो जानता था। दूसरीका मुझे आभास हुआ करता था, पर तीसरी तो मेरे विचार-क्षेत्रमे आयी तक न थी। पहली बातमे पिछली दोनो बाते समाविष्ट है, यह बात 'सर्वोदय' से मुझे सूर्य-प्रकाशकी तरह स्पष्ट दिखाई देने लगी। सुबह होते ही मैं उसके अनुसार अपने जीवनको बनानेके लिए तैयार हो गया।

२५. फिनिक्सकी स्थापना

मैंने सबसे पहले वेस्टसे इस सम्बन्धमे बातें की। 'सर्वोदय' का जो प्रभाव मेरे मनपर पडा, वह मैंने उन्हें कह सुनाया और सुझाया कि 'इडियन ओपीनियन' को एक खेतपर ले जाय तो कैसा? वहा सब एक साथ रहें, एक-सा भोजन-खर्च लें, अपने लिए सब खेती कर लिया करे और बचतके समयमे 'इडियन ओपीनियन' का काम करें। वेस्टको यह बात पसन्द आयी। भोजन-खर्चका हिसाब लगाया गया, तो कम-से-कम तीन पौंड प्रति मनुष्य आया। तुरन्त ही मैंने अखबारमे विज्ञापन दिया कि डरबनके नजदीक किसी भी स्टेशनके पास जमीनकी आवश्यकता है। उत्तरमे फिनिक्सकी जमीनका सन्देशा आया। वेस्ट और मैं जमीन देखने गये और सात दिनके अन्दर बीस एकड जमीन ले ली। उसमे एक छोटा-सा पानीका झरना भी था, कुछ आमके और सन्तरेके पेड थे। पास ही ८० एकडका एक और टुकडा था। उसमे फलोके पेड ज्यादा थे और एक झोपडा भी था। कुछ समयके बाद उसे भी खरीद लिया। दोनोके मिलकर एक हजार पौंड लगे। सेठ पारसी रुस्तमजी मेरे ऐसे तमाम साहसके कामोमे साथी होते थे। उन्हें मेरी यह तजवीज पसन्द आयी। इसलिए उन्होने अपने एक गोदाममे टीन वगैरह, जो उनके पास पडे थे, मुफ्तमे हमें दे दिये। कितने ही हिन्दुस्तानी बढई और राज, जो मेरे साथ लडाईमे थे, इसमे मदद देने लगे और कारखाना बनने लगा। एक महीनेमे मकान तैयार हो गया, जो ७५ फुट लम्बा और

५० फुट चौडा था। वेस्ट वगैरा अपने शरीरको खतरेमें डालकर भी बढई आदिके साथ रहने लगे। फिनिक्समे घास खूब थी और आबादी बिलकुल नही थी। इससे साप आदिका उपद्रव रहता था और खतरा भी था। धीरे-धीरे हमने वहाकी सफाई की और उसे रहने लायक बना लिया। हम कोई एक सप्ताह में बहुतेरा सामान गाडियोपर लादकर फिनिक्स चले गये। डरबन और फिनिक्समे तेरह मीलका फासला था। मेरे साथ जो-जो रिश्तेदार वगैरह वहा गये थे और व्यापार आदिमे लग गये थे, उन्हे फिनिक्समे दाखिल करनेका प्रयत्न मैने किया। कितने ही लोगोको मेरी बात जच गयी। इन सबमे आज तो (अब स्वर्गस्थ) मगनलाल गाधीका ही नाम मै चुनकर पाठकोके सामने रखता हू, क्योकि दूसरे लोग जो राजी हुए थे, वे थोडे-बहुत समयतक फिनिक्समे रहकर फिर धन-सचयके फेरमे पड गये। मगनलाल गाधी तो अपना काम छोडकर जो मेरे साथ आये, सो अबतक रह रहे है और अपने बुद्धि-बल, त्याग, शक्ति एव अनन्य भक्ति-भावमे मेरे आन्तरिक प्रयोगोमे मेरा साथ देते है एव मेरे मूल साथियोमे आज उनका स्थान सबमे प्रधान है। फिर एक स्वय-शिक्षित कारीगरके रूपमे तो उनका स्थान मेरी दृष्टिमे अद्वितीय है।

इस तरह सन् १९०४ मे फिनिक्सकी स्थापना हुई और विघ्नो और कठिनाइयोके रहते हुए भी फिनिक्स-सस्था एव 'इडियन ओपीनियन' दोनो आजतक चल रहे है, परन्तु इस सस्थाके आरम्भ-कालकी मुसीबते और उस समयकी आशा-निराशाए जानने लायक है।

फिनिक्समे 'इडियन ओपीनियन' का पहला अक प्रकाशित करना आसान साबित न हुआ। यदि दो बातोमे मैने पहले हीसे सावधानी न रखी होती तो अक एक सप्ताह बन्द रहता या देरमे निकलता। इस सस्थामे इजनसे चलनेवाले यन्त्रोको मगानेकी मेरी इच्छा कम ही रही थी। मेरी भावना यह थी कि जब हम खेती भी खुद हाथोमे ही करना चाहते है तब छापेकी कल भी ऐसी ही क्यो न लायी जाय, जो हाथसे चल सके। पर उस समय यह अनुभव हुआ कि यह बात सध न सकेगी। इसलिए आइल-इजन मगवाया गया था, परन्तु मुझे यह खटका रहा कि कही वहापर यह तेल-यन्त्र बन्द न हो जाय, सो मैने वेस्टको सुझाया कि ऐसे समयके लिए कोई और कामचलाऊ साधन भी हम अभीसे जुटा रखे तो अच्छा। इसलिए उन्होने हाथसे चलानेका भी एक चक्का मगा रखा था और ऐसी तजवीज कर रखी थी कि मौका पडनेपर उससे छापेकी कल चलायी जा सके। 'इडियन ओपीनियन' का आकार दैनिक पत्रके बराबर लम्बा-चौडा था। अगर बडी कल कही अड जाय तो ऐसी सुविधा वहा नही थी कि इतने बडे

आकारका पत्र छापा जा सके। इससे पत्रके उस अकके बन्द रहनेका ही अन्देशा रहता। इस दिक्कतको दूर करनेके लिए अखबारका आकार छोटा कर दिया कि कठिनाईके समयपर छोटी कलको भी पांवसे चलाकर अखबार थोडे ही पन्नेका क्यो न हो, प्रकाशित हो सके।

आरम्भ-कालमे 'इडियन ओपीनियन' की प्रकाशन-तिथिकी अगली रातको सबको थोडा-बहुत जागरण करना ही पड़ता था। पन्नोको भांजनेमें छोटे-बडे सब लोग लग जाते और रातको दस-बारह बजे यह काम खतम होता। परन्तु पहली रात तो इस प्रकार बीती, जिसे कभी भूल ही नहीं सकते। पन्नोका चौखटा तो मशीनपर कस गया, पर इंजन अड गया, उसने चलनेसे इनकार कर दिया। इंजनको जमाने और चलानेके लिए एक इञ्जीनियर बुलाया गया था। उसने और वेस्टने खूब सिर खपाया, पर इजन टस-से-मस न हुआ। तब अपना-सा मुह लेकर बैठ गये। अन्तमे वेस्ट निराश होकर मेरे पास आये। उनकी आंखें आंसुओंसे छलछला रही थी। उन्होंने कहा, "अब आज तो इंजनके चलनेकी आशा नही और इस सप्ताहका अखबार हम समयपर न निकाल सकेंगे।"

"अगर यही बात है, तब तो अपना कुछ बस नहीं, पर इस तरह आसू बहानेकी आवश्यकता नही। और कुछ कोशिश कर सकते हो तो कर देखें। हा, वह हाथसे चलानेका चक्का तो हमारे पास रखा है, वह किस दिन काम आयेगा?"—यह कहकर मैंने उन्हें आश्वासन दिया।

वेस्टने कहा, "पर उस चक्केको चलानेवाले आदमी हमारे पास कहाँ हैं? हम लोग जितने हैं, उतनेसे वह नही चल सकता। उसे चलानेके लिए बारी-बारीसे चार-चार आदमियोकी जरूरत है और हम लोग थक भी चुके हैं।"

बढ़ई लोगोका काम अभी पूरा नही हुआ था, इससे वे लोग अभी छापखानेमें ही सो रहे थे। उनकी तरफ इशारा करके मैंने कहा—"ये मिस्त्री लोग मौजूद हैं, इनकी मदद क्यो न लें? और आजकी रातभर हम सब जागकर छापनेकी कोशिश करेंगे। बस, इतना ही कर्तव्य हमारा और बाकी रह जाता है।"

"मिस्त्रियोंको जगानेकी और उनसे मदद मांगनेकी मेरी हिम्मत नही होती। हमारे जो लोग थक गये हैं, उनसे भी कैसे कहूं?"

"यह काम मेरे जिम्मे रहा।"—मैंने कहा।

"तब तो मुमकिन है कि सफलता मिल जाय।"

मैंने मिस्त्रियोंको जगाया और उनकी मदद मागी, मुझे उनकी खुशामद नही करनी पड़ी। उन्होंने कहा, "वाह! ऐसे वक्त यदि हम काम न आयें

तो हम आदमी क्या ? आप आराम कीजिये, हम लोग चक्का चलायेंगे। हमें इसमें कोई मेहनत नही है।" और इधर छापेखानेके लोग तैयार थे ही।

अब तो वेस्टके हर्षका पार न रहा। वह काम करते-करते भजन गाने लगे। चक्का चलानेमे मैने भी मिस्त्रियोंका साथ दिया और दूसरे लोग भी बारी-बारीसे चलाने लगे। साथ ही पन्ने भी छपने लगे।

सुबहके सात बजे होगे। मैंने देखा कि अभी बहुत काम बाकी पडा है। मैंने वेस्टसे कहा, "अब हम इंजीनियरको क्यो न जगा ले, अब दिनकी रोशनी-मे वह और सिर खपा देखे। अगर इंजन चल जाय तो अपना काम समय-पर पूरा हो सकता है।"

वेस्टने इंजीनियरको जगाया। वह उठ खडा हुआ और इंजनके कमरे-मे गया। शुरू करते ही इंजन चल निकला। प्रेस हर्ष-नादसे गूज उठा। सब कहने लगे—"यह कैसे हो गया ? रातको इतनी मेहनत करनेपर भी नही चला और अब हाथ लगते ही इस तरह चल पडा, मानो इसमें कुछ बिगडा ही न था।" वेस्टने या इंजीनियरने जवाब दिया—"इसका उत्तर देना कठिन है। ऐसा जान पडता है मानो यन्त्र भी हमारी तरह आराम चाहते हैं। कभी-कभी तो उनकी भी हालत ऐसी ही देखी जाती है।"

मैंने तो यह माना कि इंजनका न चलना हमारी परीक्षा थी और ऐन मौकेपर चल जाना हमारी शुद्ध मेहनतका शुभ फल था।

इसका परिणाम यह हुआ कि 'इंडियन ओपीनियन' नियत समयपर स्टेशन पहुच गया और हम सबकी चिन्ता मिटी।

हमारे इस आग्रहका फल यह हुआ कि 'इंडियन ओपीनियन' की निय-मितताकी छाप लोगोके दिलपर पडी और फिनिक्समे मेहनतका वातावरण फैला। इस संस्थाके जीवनमें ऐसा भी एक युग आ गया था, जब जान-बूझकर इंजन बन्द रखा गया था और दृढतापूर्वक हाथके चक्केसे ही काम चलाया गया था। मैं कह सकता हू कि फिनिक्सके जीवनमे यह ऊचे-से-ऊचा नैतिक काल था।

यह काम अभी ठिकाने लगा ही न था, मकान भी अभी तैयार न हुए थे कि इतनेमे ही इस नये रचे कुटुम्बको छोडकर मुझे जोहान्सबर्ग भागना पडा। जोहान्सबर्ग आकर मैंने पोलकको इस महत्त्वपूर्ण परिवर्तनकी सूचना दी। अपनी दी हुई पुस्तकका यह परिणाम देखकर उनके आनन्दकी सीमा न रही।

उन्होंने 'क्रिटिक' पत्रके मालिकको एक महीनेकी नोटिस देकर अपना इस्तीफा पेश कर दिया। मीयाद खतम होनेपर वह फिनिक्स आ पहुचे और हमारे कुटुम्बी बनकर वहा बस गये।

पर खुद मैं ही उन्हें वहा अधिक समयतक न रख सका। जोहान्सवर्गके दफ्तरके कामका बोझ मुझ अकेलेके वसका न था। इसलिए मैंने पोलकसे दफ्तरमे रहने और वकालत करनेके लिए कहा। इसमे मैंने यह सोचा था कि उनके वकील हो जानेके वाद अन्तको हम दोनो फिनिक्समें जा पहुचेंगे, परन्तु हमारी ये सब कल्पनाए अन्तमे झूठी सावित हुई। काम इतना वढ गया कि मैं फिनिक्स न जा सका और मुझे इसी वातसे सन्तोप करना पडा कि मै अपने जीवनको और गृहस्थीको 'सर्वोदय' के आदर्शोके अनुसार ढाल सका।

एक वैरिस्टरके घरमे जितनी सादगी रखी जा सकती थी, उतनी रखी गयी। हर काम हाथसे करनेका शौक वढा और उसमे वालकोको भी शामिल करनेका प्रयत्न किया गया।

वाजारमे रोटी (डवल रोटी) खरीदनेके वदले घरमे हाथसे विना खमीरकी रोटी वनाना शुरू किया। ऐसी रोटीमे मिलका आटा काम नही दे सकता था। फिर मिलके आटेके वजाय हाथका आटा इस्तेमाल करनेमे सादगी, तन्दुरुस्ती और धन, सवकी रक्षा होती थी। इसलिए सात पौड खर्च करके हाथसे आटा पीसनेकी एक चक्की खरीदी। इसका पहिया भारी था, इसलिए चलानेमे एकको जरा दिक्कत होती थी और दो आदमी आसानीसे चला सकते थे। चक्की चलानेका काम खासकर पोलक, मैं और वच्चे करते थे। यह कसरत वालकोके लिए वहुत अच्छी सावित हुई। घर साफ रखनेके लिए एक नौकर था। पाखाना उठा ले जानेके लिए म्युनिसिपैलिटीका नौकर आता था, परन्तु पाखानेका कमरा साफ रखना, वैठक धोना वगैरह काम नौकरसे नही लिया जाता था और न इसकी आशा ही रखी जाती थी। यह काम हम लोग खुद करते थे, क्योकि उससे भी वच्चोको तालीम मिलती थी। इसका फल यह हुआ कि मेरे किसी भी लड़केको शुरूसे ही पाखाना साफ करनेकी झिझक न रही और आरोग्यके सामान्य नियम भी वे सहज ही सीख गये। जोहान्सवर्गमे कोई वीमार तो शायद ही पडता, परन्तु यदि कोई वीमार होता तो उसकी सेवा आदिमे वालक अवश्य शामिल होते और वे इस कामको वडी खुशीसे करते। यह तो नही कह सकते कि उनके अक्षर अर्थात् पुस्तककी शिक्षाकी मैंने परवा न की, परन्तु मैंने उसका त्याग करनेमे कुछ सकोच नही किया। इस कमीके लिए मेरे लडके मेरी शिकायत कर सकते है और कई वार उन्होने अपना असन्तोष प्रदर्शित भी किया है। मैं मानता हू कि उसमे कुछ अशतक मेरा दोप है। उन्हे पुस्तककी शिक्षा देनेकी इच्छा मुझे वहुत हुआ करती, म कोशिश भी करता, परन्तु इस काममे हमेशा कुछ-न-कुछ विघ्न आ

खडा होता। उनके लिए घरपर दूसरी शिक्षाका प्रवन्ध नही किया था। इसलिए मैं उन्हें अपने साथ दफ्तर ले जाता। दफ्तर ढाई मील था। इसलिए सुवह-शाम मिलकर पाच मीलकी कसरत उनको और मुझे हो जाया करती। रास्ते चलते हुए उन्हे कुछ सिखानेकी कोशिश करता, पर वह भी तभी, जब दूसरे कोई साथ चलनेवाले न होते। दफ्तरमे मवक्किलो और मुन्शियो-के सम्पर्कमे वे आते, मैं वता देता था तो कुछ पढते, इधर-उधर घूमते, वाजारसे कोई सामान-सौदा लाना होता तो लाते। सवसे वडे लडके हीरा-लालको छोडकर सव बच्चे इसी तरह परवरिश पा गये। हीरालाल देशमे रह गया था। यदि मैं अक्षर-ज्ञानके लिए एक घटा भी नियमित रूपसे दे पाता तो मैं मानता कि उन्हे आदर्श शिक्षण मिला, किन्तु मैं यह नियम न रख सका, इसका दु ख उनको और मुझको रह गया है। सवसे वडे वेटेने तो अपने जीकी जलन मेरे तथा सर्वसाधारणके सामने प्रकट की है। दूसरोने अपने हृदयकी उदारतासे काम लेकर, इस दोपको अनिवार्य समझकर, सहन कर लिया है, पर इस कमीके लिए मुझे पछतावा नही होता और कुछ है भी, तो इतना ही कि मैं एक आदर्श पिता सावित न हुआ, परन्तु यह मेरा मत है कि उसके मूलमे अज्ञान हो, पर मैं इतना कह सकता हू कि वह सद्भावनापूर्ण था। उनके चरित्र और जीवनके निर्माण करनेके लिए जो कुछ उचित और आवश्यक था, उसमे मैंने कोई कसर नहीं रहने दी है। और मैं मानता हू कि प्रत्येक माता-पिताका यह अनिवार्य कर्तव्य है। मेरी इतनी कोशिशके वाद भी मेरे वालकोके जीवनमे जो खामिया दिखाई दी हैं, मेरा यह दृढ मत है कि वे हम दम्पतीकी खामियोके प्रतिविम्ब हैं।

वालकोको जिस तरह मा-वापकी आकृति विरासतमे मिलती है, उसी तरह उनके गुण-दोप भी विरासतमे मिलते हैं। हा, आसपासके वातावरण-के कारण तरह-तरहकी घटी-वढी जरूर हो जाती है, परन्तु मूल पूजी तो वही रहती है, जो उन्हें वाप-दादोसे मिली होती है। यह भी मैंने देखा है कि कितने ही वालक दोषोकी इस विरासतसे अपनेको वचा लेते हैं, पर यह तो आत्माका मूल स्वभाव है, उसकी वलिहारी है।

जब कि मैं इस तरह अनुशासनमे रहता था और वच्चोको रख रहा था, एक ऐसी घटना हुई, जिसमे मुझे जोहान्सवर्गका अपना घर छोडना और अपने वाल-वच्चोको फिनिक्स रहनेके लिए भेज देना पडा। मि० पोलकने अपने लिए अलग एक छोटा घर ले लिया। यह घटना 'जुलू-विद्रोह' थी।

२६. जुलू-विद्रोह

बोअर-युद्धकी तरह जुलू-बलवा भी एक ऐसा अवसर था, जिसमें मैंने ब्रिटिश साम्राज्यके प्रति वफादारीकी भावनासे प्रेरित होकर काम किया। मुझे जुलू लोगोंसे कोई दुश्मनी नही थी। उन्होंने एक भी हिन्दुस्तानी-को नुकसान नहीं पहुचाया था। मैं तो उसको विद्रोह भी नहीं कह सकता था, परन्तु मैं उस समय अंग्रेजी सल्तनतको ससारके लिए कल्याणकारी मानता था। मैं हृदयसे उसका वफादार था। उसका नाश मैं नही चाहता था।

मैं अपनेको नेटाल-निवासी मानता था और नेटालके साथ मेरा निकट सम्बन्ध तो था ही। इसलिए मैंने वहाके गवर्नरको पत्र लिखा कि यदि जरूरत हो तो मैं घायलोकी सेवा-शुश्रूषा करनेके लिए हिन्दुस्तानियोकी एक टुकडी लेकर जानेको तैयार हू। गवर्नरने तुरन्त ही इसको स्वीकार कर लिया और डरबन पहुचकर मैंने आदमी मागे। हम चौबीस आदमी तैयार हुए। मुझे सारजेण्ट-मेजरका अस्थायी पद दिया और मेरे पसन्द किये दूसरे सज्जनोको सारजेण्टकी और एकको कारपोरलकी पदवियाँ दी।

इस टुकडीने छ. सप्ताहतक सतत सेवा की। 'विद्रोह' के स्थलपर जाकर मैंने देखा कि वहा विद्रोह-जैसा कुछ नही था। वह तो एक प्रकारका कर-बन्दी-आन्दोलन-मात्र था। जो हो, मेरा हृदय तो इन जुलूओकी तरफ था और अपनी छावनीमे पहुचनेपर जब हमे खासतौरसे जुलू-घायलोकी शुश्रूषा-का काम दिया गया तो मुझे बडी खुशी हुई। उस डॉक्टर अधिकारीने हमारी इस सेवाका स्वागत करते हुए कहा, "गोरे लोग इन घायलोकी सेवा करनेके लिए तैयार नही होते। मैं अकेला क्या करता? इनके घाव सड रहे है। आप आ गये, यह अच्छा हुआ। इसे मैं इन निरपराध लोगोपर ईश्वरकी कृपा ही समझता हू।" यह कहकर मुझे पट्टियाँ और कीटाणु-नाशक पानी दिया और उन घायलोके पास ले गये। घायल यह देखकर बडे आनन्दित हुए।

जिन रोगियोकी शुश्रूषाका काम हमे सौंपा गया था, वे लडाईके घायल लोग थे। उनमे एक हिस्सा तो उन कैदियोका था, जो शकमे पकडे गये थे। जनरलने उन्हें कोडेकी सजा दी थी। इससे उन्हें घाव हो गये थे और उनका इलाज न होनेके कारण वे पक गये थे। दूसरा हिस्सा उन लोगोका था, जो जुलू-मित्र कहलाते थे। वे मित्रतादर्शक चिह्न पहने हुए थे। फिर भी इन्हें सिपाहियोने भूलसे जख्मी कर दिया था। हमे एक जल्दी चलनेवाली सेनाके साथ काम दिया गया था, जो खतरेकी जगह दौड जाया करती थी। दो-तीन बार एक दिनमे चालीस मीलतक चलनेका प्रसग आ गया था।

वहा भी हमे तो बस यही सेवाका काम मिला। जो जुलू-मित्र भूलसे घायल हो गये थे, उन्हें हम डोलियोमे उठाकर पडावपर ले जाते थे और वहा उनकी शुश्रूषा करते थे।

'जुलू-विद्रोह' लडाई नही, बल्कि मनुष्योका शिकार मालूम होता था। अकेले मेरा ही नही, बल्कि दूसरे अग्रेजोका भी यही खयाल था। सुबह होते ही हमे सैनिकोकी गोलाबारीकी आवाज सुनाई पडती, जो गावोमे जाकर गोलियाँ चलाते थे।

इन शब्दोंको सुनना और ऐसी स्थितिमे रहना मुझे बहुत बुरा मालूम हुआ, परन्तु मैं इस कडवे घूंटको पीकर रह गया। ईश्वर-कृपासे काम भी जो मुझे मिला, वह भी जुलू लोगोकी सेवाका ही। मेरा तो यह विश्वास हो गया था कि यदि हमने इस कामके लिए कदम न बढाया होता तो दूसरे कोई इसके लिए तैयार न होते। इस बातको ध्यानमे लाकर मैंने अपनी आत्माको शान्त किया।

२७. जीवनभरका निश्चय

इस तरह यद्यपि मेरी अन्तरात्माको शान्ति मिली, तथापि दूसरी ऐसी बातें भी थी, जिनसे मनमे विचार जाग्रत होते थे। मीलोतक जब हम बिना बस्तीवाले प्रदेशोमे लगातार किसी घायलको लेकर अथवा खाली हाथ मंजिल तय करते, तब मेरा मन तरह-तरहके विचारोमे डूब जाता।

यहा ब्रह्मचर्य-विषयक मेरे विचार परिपक्व हुए। अपने साथियोंके साथ भी मैंने उसकी चर्चा की। हा, यह बात अभी मुझे स्पष्ट दिखाई नही देती थी कि ईश्वर-दर्शनके लिए ब्रह्मचर्य अनिवार्य है, परन्तु यह बात मैं अच्छी तरह जान गया कि सेवाके लिए उसकी बहुत आवश्यकता है। मैं जानता था कि इस प्रकारकी सेवाए मुझे दिन-दिन अधिकाधिक करनी पडेंगी और यदि मैं भोग-विलासमे, प्रजोत्पत्तिमे और सन्तति-पालनमे लगा रहा तो मैं पूरी तरह सेवा न कर सकूगा।

मैं दो घोडोपर सवारी नही कर सकता। यदि पत्नी इस समय गर्भवती होती तो मैं निश्चिन्त होकर आज इस सेवा-कार्यमे नही कूद सकता था। यदि ब्रह्मचर्यका पालन न किया जाय तो कुटम्ब-वृद्धि मनुष्यके उस प्रयत्नकी विरोधक हो जाय, जो उसे समाजके अभ्युदयके लिए करना चाहिए, पर यदि विवाहित होकर भी ब्रह्मचर्यका पालन हो सके तो कुटुम्ब-सेवा समाज-सेवाकी विरोधी नही हो सकती।

ये विचार अभी मैं अपने मनमे गढ ही रहा था और शरीरको कस ही

होता है कि ये प्रतिबन्ध अच्छे ही थे। बलात् नियमोंका पालन करनेसे उनका फल नहीं मिलता, परन्तु स्वेच्छासे ऐसे प्रतिबन्धोंका पालन किया जाय, तो वह बहुत उपयोगी हो सकता है। अतएव जेलमें निकलनेके बाद मैंने तुरत इन बातोंका पालन शुरू कर दिया। जहातक हो सका, चाय पीना बन्द कर दिया और सध्यासे पहले भोजन करनेकी आदत डाली, जो आज तो स्वाभाविक हो उठी है।

परन्तु ऐसी भी घटना घटी, जिसकी बदौलत मैंने नमक भी छोड दिया था। वह सिलसिला लगभग दस बरसतक नियमित रूपसे जारी रहा। अन्नाहार-सम्बन्धी कुछ पुस्तकोंमें मैंने पढा था कि मनुष्यके लिए नमक खाना आवश्यक नहीं है। जो नमक नहीं खाता है, आरोग्यकी दृष्टिसे उसे लाभ ही होता है और मेरी तो यह भी कल्पना दौड गयी कि ब्रह्मचारीको भी उससे लाभ होगा। जिसका शरीर निर्बल हो, उसे दाल न खानी चाहिए, यह मैंने पढा था और अनुभव भी किया था, परन्तु मैं उसी समय यह छोड न सका, क्योंकि दोनों चीजें मुझे प्रिय थीं।

कस्तूरबाईको रक्त-स्रावकी बीमारी थी, जिसके लिए उसका आपरेशन हुआ था। उसके बाद यद्यपि उसका रक्त-स्राव कुछ समयके लिए बन्द हो गया था, तथापि बादको वह फिर जारी हो गया। अबकी वह किसी तरह दूर न हुआ। पानीके इलाज बेकार साबित हुए। मेरे इन उपचारोंपर पत्नीकी बहुत श्रद्धा न थी, पर साथ ही तिरस्कार भी न था। दूसरा इलाज करनेका भी मुझे आग्रह न था, इसलिए जब मेरे दूसरे उपचारोंमें सफलता न मिली, तब मैंने उसको समझाया कि दाल और नमक छोड दो। मैंने उसे समझानेकी हद कर दी। अपनी बातके समर्थनमें कुछ साहित्य भी पढ सुनाया, पर वह नहीं मानती थी। अन्तमें उसने झुझलाकर कहा, "दाल और नमक छोडनेके लिए तो आपसे भी कोई कहे तो आप भी न छोडेंगे।"

इस जवाबको सुनकर जहा मुझे दुख हुआ, वहा हर्ष भी हुआ, क्योंकि इससे मुझे अपने प्रेमका परिचय देनेका अवसर मिला। उस हर्षमें मैंने तुरन्त कहा, "तुम्हारा खयाल गलत है। म यदि बीमार होऊ और मुझे यदि वैद्य इन चीजोंको छोडनेके लिए कहे, तो जरूर छोड दू। पर ऐसा क्यों? लो, तुम्हारे लिए आजसे ही दाल और नमक एक सालतक छोड देता हू। तुम छोडो या न छोडो, मैंने छोड दिया।"

यह सुनकर पत्नीको बहुत दुख हुआ। वह कह उठी—"माफ करो, आपका स्वभाव जानते हुए भी यह बात मेरे मुहसे निकल गयी। अब मैं तो दाल और नमक न खाऊगी, पर आप अपना वचन वापस ले लीजिये। यह तो मुझे भारी सजा दे दी।"

मैने कहा—"तुम दाल और नमक छोड दो तो वहुत ही अच्छा होगा। मुझे विश्वास है कि उससे तुम्हें लाभ ही होगा। परन्तु मै जो प्रतिज्ञा कर चुका हू, वह नही टूट सकती। मुझे भी उससे लाभ ही होगा। हर किसी निमित्तसे मनुष्य यदि सयमका पालन करता है तो इससे उसे लाभ ही होता है। इसलिए तुम इस वातपर जोर न दो, क्योंकि इससे मुझे भी अपनी आज-माइश कर लेनेका मौका मिलेगा और तुमने जो इनको छोडनेका निश्चय किया है, उसपर दृढ रहनेमे तुम्हें मदद मिलेगी।" इतना कहनेके वाद तो मुझे मनानेकी आवश्यकता रह नही गयी थी। "आप तो वडे हठी है, किसीका कहना मानना आपने सीखा ही नही।"—यों कहकर वह आसू वहाती हुई चुप हो रही।

इसको मै पाठकोके सामने सत्याग्रहके तौरपर पेश करना चाहता हू और कहना चाहता हू कि मै इसे अपने जीवनकी मीठी स्मृतियोंमें गिनता हू।

इसके वाद कस्तूरवाईका स्वास्थ्य खूब सभलने लगा। अब यह नमक और दालके त्यागका फल था, या उस त्यागसे हुए भोजनके छोटे-वडे परि-वर्तनोंका फल था, या उसके वाद दूसरे नियमोंका पालन करानेकी मेरी जागरूकताका फल था, या इस घटनाके कारण जो मानसिक उल्लास हुआ, उसका फल था, यह मै नही कह सकता, परन्तु यह वात जरूर हुई कि कस्तूरवाईका सूखा शरीर फिर पनपने लगा। रक्त-स्राव वन्द हो गया और 'वैद्यराज' के रूपमें मेरी साख कुछ वढ गयी।

२९. संयमकी ओर

ऊपर कह चुका हू कि भोजनमे कितने ही परिवर्तन कस्तूरवाईकी वीमारीकी वदौलत हुए, पर अब तो दिन-दिन उसमें ब्रह्मचर्यकी दृष्टिसे परिवर्तन करता गया।

पहला परिवर्तन हुआ दूधका त्याग। दूधसे विकार पैदा होते है—यह वात पहले-पहल रायचन्दभाईसे मालूम हुई थी। अन्नाहार-सम्वन्धी अंग्रेजी पुस्तकें पढनेसे इस विचारमे वृद्धि हुई, परन्तु जवतक ब्रह्मचर्य-व्रत नही लिया था तबतक दूध छोडनेका इरादा खासतौरपर नही कर सका था। यह वात मै कभीसे समझ गया था कि शरीरकी रक्षाके लिए दूधकी आवश्यकता नही, पर उसका सहसा छूट जाना कठिन था। इधर मै यह वात अधिकाधिक समझता ही जा रहा था कि सयमके लिए दूध छोड देना चाहिए कि कलकत्तेसे कुछ ऐसा साहित्य मेरे पास आया जिसमें ग्वालो द्वारा गाय-भैंसोपर होनेवाले अत्याचारोंका वर्णन था।

होता है कि ये प्रतिबन्ध अच्छे ही थे। बलात् नियमोंका पालन करनेसे उनका फल नहीं मिलता, परन्तु स्वेच्छासे ऐसे प्रतिबन्धोंका पालन किया जाय, तो वह बहुत उपयोगी हो सकता है। अतएव जेलसे निकलनेके बाद मैंने तुरन्त इन बातोंका पालन शुरू कर दिया। जहांतक हो सका, चाय पीना बन्द कर दिया और सध्यासे पहले भोजन करनेकी आदत डाली, जो आज तो स्वाभाविक हो उठी है।

परन्तु ऐसी भी घटना घटी, जिसकी बदौलत मैंने नमक भी छोड़ दिया था। वह सिलसिला लगभग दस बरसतक नियमित रूपसे जारी रहा। अन्नाहार-सम्बन्धी कुछ पुस्तकोंमें मैंने पढ़ा था कि मनुष्यके लिए नमक खाना आवश्यक नहीं है। जो नमक नहीं खाता है, आरोग्यकी दृष्टिसे उसे लाभ ही होता है और मेरी तो यह भी कल्पना दौड़ गयी कि ब्रह्मचारीको भी उससे लाभ होगा। जिसका शरीर निर्बल हो, उसे दाल न खानी चाहिए, यह मैंने पढ़ा था और अनुभव भी किया था, परन्तु मैं उसी समय यह छोड़ न सका, क्योंकि दोनों चीजें मुझे प्रिय थीं।

कस्तूरबाईको रक्त-स्रावकी बीमारी थी, जिसके लिए उसका आपरेशन हुआ था। उसके बाद यद्यपि उसका रक्त-स्राव कुछ समयके लिए बन्द हो गया था, तथापि बादको वह फिर जारी हो गया। अबकी वह किसी तरह दूर न हुआ। पानीके इलाज बेकार साबित हुए। मेरे इन उपचारोंपर पत्नीकी बहुत श्रद्धा न थी, पर साथ ही तिरस्कार भी न था। दूसरा इलाज करनेका भी मुझे आग्रह न था, इसलिए जब मेरे दूसरे उपचारोंमें सफलता न मिली, तब मैंने उसको समझाया कि दाल और नमक छोड़ दो। मैंने उसे समझानेकी हद कर दी। अपनी बातके समर्थनमें कुछ साहित्य भी पढ़ सुनाया, पर वह नहीं मानती थी। अन्तमें उसने झुंझलाकर कहा, "दाल और नमक छोड़नेके लिए तो आपसे भी कोई कहे तो आप भी न छोड़ेंगे।"

इस जवाबको सुनकर जहां मुझे दुःख हुआ, वहां हर्ष भी हुआ, क्योंकि उसमें मुझे अपने प्रेमका परिचय देनेका अवसर मिला। उस हर्षमें मैंने तुरन्त कहा, "तुम्हारा खयाल गलत है। मैं यदि बीमार होऊं और मुझे यदि वैद्य इन चीजोंको छोड़नेके लिए कहे, तो जरूर छोड़ दूं। पर ऐसा क्यों? लो, तुम्हारे लिए आजसे ही दाल और नमक एक सालतक छोड़ देता हूं। तुम छोड़ो या न छोड़ो, मैंने छोड़ दिया।"

यह सुनकर पत्नीको बहुत दुःख हुआ। वह कह उठी—"माफ करो, आपका स्वभाव जानते हुए भी यह बात मेरे मुंहसे निकल गयी। अब मैं तो दाल और नमक न खाऊंगी, पर आप अपना बचन वापस ले लीजिये। यह तो मुझे भारी सजा दे दी।"

मैने कहा—"तुम दाल और नमक छोड दो तो बहुत ही अच्छा होगा। मुझे विश्वास है कि उससे तुम्हें लाभ ही होगा। परन्तु मैं जो प्रतिज्ञा कर चुका हू, वह नही टूट सकती। मुझे भी उससे लाभ ही होगा। हर किसी निमित्तसे मनुष्य यदि सयमका पालन करता है तो इससे उसे लाभ ही होता है। इसलिए तुम इस बातपर जोर न दो, क्योकि इससे मुझे भी अपनी आजमाइश कर लेनेका मौका मिलेगा और तुमने जो इनको छोडनेका निश्चय किया है, उसपर दृढ रहनेमे तुम्हे मदद मिलेगी।" इतना कहनेके बाद तो मुझे मनानेकी आवश्यकता रह नही गयी थी। "आप तो बडे हठी है, किसीका कहना मानना आपने सीखा ही नही।"—यो कहकर वह आसू बहाती हुई चुप हो रही।

इसको मै पाठकोंके सामने सत्याग्रहके तौरपर पेश करना चाहता हू और कहना चाहता हू कि मै इसे अपने जीवनकी मीठी स्मतियोमे गिनता हू।

इसके बाद कस्तूरबाईका स्वास्थ्य खूब सभलने लगा। अब यह नमक और दालके त्यागका फल था, या उस त्यागसे हुए भोजनके छोटे-बडे परिवर्तनोका फल था, या उसके बाद दूसरे नियमोका पालन करानेकी मेरी जागरूकताका फल था, या इस घटनाके कारण जो मानसिक उल्लास हुआ, उसका फल था, यह मै नही कह सकता, परन्तु यह बात जरूर हुई कि कस्तूरबाईका सूखा शरीर फिर पनपने लगा। रक्त-स्राव बन्द हो गया और 'वैद्यराज' के रूपमे मेरी साख कुछ बढ गयी।

२९. संयमकी ओर

ऊपर कह चुका हू कि भोजनमे कितने ही परिवर्तन कस्तूरबाईकी बीमारीकी बदौलत हुए, पर अब तो दिन-दिन उसमे ब्रह्मचर्यकी दृष्टिसे परिवर्तन करता गया।

पहला परिवर्तन हुआ दूधका त्याग। दूधसे विकार पैदा होते है—यह बात पहले-पहल रायचन्दभाईसे मालूम हुई थी। अन्नाहार-सम्बन्धी अंग्रेजी पुस्तके पढनेसे इस विचारमे वृद्धि हुई, परन्तु जबतक ब्रह्मचर्य-व्रत नही लिया था तबतक दूध छोडनेका इरादा खासतौरपर नही कर सका था। यह बात मै कभीसे समझ गया था कि शरीरकी रक्षाके लिए दूधकी आवश्यकता नही, पर उसका सहसा छूट जाना कठिन था। इधर मै यह बात अधिकाधिक समझता ही जा रहा था कि सयमके लिए दूध छोड देना चाहिए कि कलकत्तेसे कुछ ऐसा साहित्य मेरे पास आया, जिसमे ग्वालो द्वारा गाय-भैसोपर होनेवाले अत्याचारोका वर्णन था।

इस साहित्यका मुझपर बड़ा बुरा असर हुआ और उसके सम्बन्धमें मैंने मि० केलनबेकसे भी चर्चा की।

हालांकि मि० केलनबेकका परिचय मैं 'दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहका इतिहास' में करा चुका हूं, परन्तु यहां उनके सम्बन्धमें दो शब्द अधिक कहनेकी आवश्यकता है। उनकी-मेरी मुलाकात अनायास हो गयी थी। मि० खानके वह मित्र थे। मि० खानने देखा कि उनके अन्दर गहरा वैराग्य-भाव था। इसलिए मेरा खयाल है कि उन्होंने उनसे मेरी भेंट करायी। जिन दिनों उनसे मेरा परिचय हुआ, उन दिनों उनके शौक और शाह-खर्चीको देखकर मैं चौंक उठा था, परन्तु पहली ही मुलाकातमें मुझसे उन्होंने धर्मके विषयमें प्रश्न किया। उसमें भगवान् बुद्धकी बात सहज ही निकल पड़ी। तबसे हमारा सम्पर्क बढ़ता गया और वह इस हदतक कि उनके मनमें यह निश्चय हो गया कि जो कार्य मैं करूं, वह उन्हें भी अवश्य करना चाहिए। वह अकेले थे। अकेलेके लिए मकान-खर्चके अलावा लगभग १२००) रुपये मासिक खर्च करते थे। यहांसे अन्तको वह इतनी सादगीपर आ गये कि उनका मासिक खर्च १२०) रुपये हो गया। मेरे घरबार बिखेर देने और जेलसे आनेके बाद तो हम दोनों एक साथ रहने लगे थे। उस समय हम दोनों अपना जीवन अपेक्षाकृत बहुत कड़ाईसे बिता रहे थे।

दूधके सम्बन्धमें जब मेरी उनसे बातचीत हुई, तब हम साथ ही रहते थे। एक बार मि० केलनबेकने कहा—"जब हम दूधमें इतने दोष बताते हैं तो फिर उसे छोड़ क्यों न दें? वह अनिवार्य तो है ही नहीं।" उनकी इस रायको सुनकर मुझे बड़ा आनन्द और आश्चर्य हुआ। मैंने तुरन्त उनकी बातका स्वागत किया और हम दोनोंने टॉल्स्टॉय-फार्ममें उसी क्षण दूध छोड़ दिया। यह बात १९१२ की है।

पर हमें इतनेसे शान्ति न हुई। दूध छोड़ देनेके थोड़े ही समय बाद केवल फलपर रहनेका प्रयोग करनेका निश्चय किया। फलाहारमें भी धारणा यह रखी गयी कि सस्ते-से-सस्ते फलसे काम चलाया जाय। हम दोनोंकी आकांक्षा यह थी कि गरीब लोगोंके अनुसार जीवन व्यतीत किया जाय। फलाहारमें बहुतांशमें चूल्हा सुलगानेकी जरूरत नहीं होती, इसलिए कच्ची मूंगफली, केले, खजूर, नीबू और जैतूनका तेल, यह हमारा खाना हो गया था।

जो लोग ब्रह्मचर्यका पालन करनेकी इच्छा रखते हैं, उनके लिए यहां एक चेतावनी देनेकी आवश्यकता है। यद्यपि मैंने ब्रह्मचर्यके साथ भोजन और उपवासका निकट सम्बन्ध बताया है, फिर भी यह निश्चित है कि उसका मुख्य आधार है हमारा मन।

मलिन मन उपवाससे शुद्ध नही होता। भोजनका उसपर असर नही होता। मनकी मलिनता विचारसे, ईश्वर-ध्यानसे और अन्तको ईश्वर-प्रसादसे मिटती है, परन्तु मनका शरीरके साथ निकट सम्बन्ध है और विकारयुक्त मन अपने अनुकूल भोजनकी तलाशमे रहता है और फिर उस भोजन और भोगोका असर मनपर होता है। इस अशतक भोजनपर अकुश रखनेकी और निराहारकी आवश्यकता अवश्य उत्पन्न होती है।

मैंने सयमके हेतुसे उपवासके प्रयोग आरम किये। वे श्रावण महीनेके दिन थे और उस साल रमजान और श्रावण-मास एक साथ आये थे। गाधी-कुटुम्बमे वैष्णव-व्रतोके साथ शैव-व्रतोका पालन किया जाता था। हमारे परिवारके लोग जिस प्रकार वैष्णव-देवालयोमे जाते, उसी प्रकार शिवालयोमे भी जाते। श्रावण-मासमे प्रदोष-व्रत तो हर साल कुटुम्बमे कोई-न-कोई रखता ही था। इसलिए मैंने इस बार श्रावण-मासके व्रत रखनेका इरादा किया।

इस महत्त्वपूर्ण प्रयोगका आरम्भ टॉल्स्टॉय-आश्रममे हुआ। वहा सत्याग्रही कैदियोके कुटुम्बोको एकत्र कर मैं और केलनबेक रहते थे। उनमे बालक और नवयुवक भी थे। उनके लिए एक पाठशाला खोली थी। इन नवयुवकोमे चार-पाच मुसलमान भी थे। उन्हे मैं इस्लामके नियम-पालनमे मदद करता और उत्तेजना देता। नमाज वगैरहकी सहूलियत कर देता। आश्रममे पारसी और ईसाई भी थे। नियम यह था कि सबको अपने-अपने धर्मोंके अनुसार आचरण करनेके लिए प्रोत्साहन दिया जाय। इसलिए मुसलमान नवयुवकोको मैंने रोजा रखनेमे उत्तेजन दिया और मुझे तो प्रदोष रखने ही थे, परन्तु हिन्दुओ, पारसियो और ईसाइयोको भी मैंने मुसलमान नवयुवकोका साथ देनेकी सलाह दी। मैंने उन्हे समझाया कि सयम-पालनमे सबका साथ देना अच्छा है। बहुतेरे आश्रमवासियोने बात पसन्द की। हिन्दू और पारसी लोग मुसलमान साथियोका पूरा-पूरा अनुकरण नही करते थे। करनेकी आवश्यकता भी नही थी। मुसलमान इधर सूरज डूबनेकी राह देखते, तबतक दूसरे लोग उनसे पहले भोजन कर लेते, जिससे वे मुसलमानोको परोस सके और उनके लिए खास चीजें तैयार कर सकें। इसके अलावा मुसलमान सरगही करते—अर्थात् व्रतके दिनोमे सवेरे सूर्योदयके पहले भोजन करते थे, पर दूसरे लोग उसमे शरीक नही होते थे। इधर मुसलमान तो दिनमे पानी भी नही पीते थे, पर दूसरे लोग जब चाहते, पी लिया करते।

इन प्रयोगोसे मेरा यह अनुभव हुआ है कि जिसका मन सयमकी ओर झुक रहा है, उसके लिए भोजनकी मर्यादा और निराहार बहुत सहायक होते है।

३०. वकील-जीवनकी कुछ स्मृतियां

दक्षिण अफ्रीकामें वकालत करते हुए मुझे जो कुछ अनुभव हुए हैं, उनकी कुछ स्मृतियां यहां देना चाहता हूं। जब मैं पढ़ता था तब सुना था कि वकीलका काम बिना झूठ बोले नहीं चल सकता, परन्तु इसका मुझपर कोई असर न होता था, क्योंकि मैं झूठ बोलकर न तो धन कमाना चाहता था, न पद-प्रतिष्ठा ही पाना चाहता था।

जहांतक मुझे याद है, वकालत करते हुए मैंने कभी असत्यका प्रयोग नहीं किया और आमदनीका एक बड़ा हिस्सा केवल लोक-सेवाके लिए ही अर्पित कर दिया था एवं उसके लिए मैं जेब-खर्चसे अधिक नहीं लेता था। कभी-कभी तो वह भी छोड़ देता था। मवक्किलसे भी पहले ही कह देता कि यदि मामला झूठा हो तो मेरे पास न आना। गवाहोंको बनानेका काम करनेकी आशा मुझसे न रखना। आगे जाकर तो मेरी ऐसी साख हो गयी थी कि कोई झूठा मामला मेरे पास आता ही नहीं था। ऐसे मवक्किल भी मेरे थे, जो अपने सच्चे मामले ही मेरे पास लाते और जिनमें जरा भी गन्दगी होती, वे दूसरे वकीलके पास ले जाते।

जोहान्सवर्गकी एक घटना मुझे याद आती है। मैं एक मुकदमेकी पैरवी कर रहा था। मुकदमेके दौरानमें मुझे मालूम हुआ कि मेरे मवक्किलने मुझे धोखा दिया है। कठघरेमें वह बिलकुल घबरा गया था। मैंने बिना बहस किये ही मैजिस्ट्रेटसे कहा कि मुकदमा खारिज कर दीजिये। विरोधी वकीलको इसपर ताज्जुब हुआ। लेकिन मैजिस्ट्रेट इससे खुश हुआ। इस घटनाके कारण मेरी वकालतपर कोई बुरा असर नहीं हुआ, बल्कि मुझे कहना चाहिए कि उलटा मेरा काम आसान हो गया। मैंने यह भी अनुभव किया कि मेरे सत्य-पालनका प्रभाव मेरे साथी वकीलोंपर भी अच्छा ही पड़ा और मेरी ख्याति भी बढ़ी। वहाके राग-द्वेषके वातावरणमें भी मैं कुछ मामलोंमें उनका प्रीति-पात्र भी बन जाता था।

पारसी रुस्तमजीका नाम दक्षिण अफ्रीकाके हिन्दुस्तानियोंमें घर-घर फैला हुआ था। सार्वजनिक कार्योंमें अरसेसे वह मेरे साथी थे। इनपर एक बार विपत्ति आ गयी। हालांकि वह अपनी व्यापार-सम्बन्धी बहुत-सी बातें मुझसे किया करते थे, फिर भी एक बात मुझसे छिपा रखी थी। बम्बई कलकत्तेसे जो माल मंगाते उसकी चुंगीमें चोरी कर लिया करते। तमाम अधिकारियोंसे उनका मेल-जोल अच्छा था। इसलिए किसीको उनपर शक नहीं होता था।

मगर एक बार उनकी यह चोरी पकड़ी गयी। तब वह मेरे पास दौड़े

आये। उनकी आखोसे आसू निकल रहे थे। मुझसे कहा, "भाई, मैंने आपको धोखा दिया है। मेरा पाप आज प्रकट हो गया है। मैं चुगीकी चोरी करता हू। यह बात मैंने आपसे छिपायी थी, अब इसके लिए पछताता हू।"

मैंने उन्हें धीरज और दिलासा देकर कहा—"मेरा तरीका तो आप जानते ही है। छुडाना-न-छुडाना ईश्वरके हाथ है। मैं तो आपको उसी हालतमे छुडा सकता हू, जब आप अपना गुनाह कबूल कर ले।"

"परन्तु मैंने आपके सामने कबूल कर लिया, इतना ही क्या काफी नही है?" रुस्तमजी सेठने कहा।

"आपने कसूर तो सरकारका किया है, मेरे सामने कबूल करनेसे क्या होगा?' मैंने धीरजसे उत्तर दिया।

हमने उनके वकीलसे सलाह ली। उन्होने मेरी तजवीज पसन्द नही की, लेकिन पारसी रुस्तमजीने मेरी सलाहपर चलना ही बेहतर समझा। मैंने कहा, "चुगीके अफसर और अटार्नी-जनरल दोनोसे मिलूगा, क्योकि उन्हीपर इस मुकदमेके चलानेकी जिम्मेदारी है। मैं उन्हें सुझाऊगा कि पारसी रुस्तमजीपर जुरमाना कर दिया जाय। अगर वे राजी न हुए तो आपको जेल जाना होगा।" मैंने उन्हें समझाया कि जेल जानेमे शर्मकी बात नही है, शर्मकी बात तो चोरी करनेमे है। मैं यह नही कह सकता कि रुस्तमजी सेठ इन सब बातोको ठीक-ठीक समझ गये हो, पर वह बहादुर आदमी थे।

उन्होने कहा, "मैं तो आपसे कह चुका हू कि मेरी गरदन आपके हाथमे है। जैसा आप मुनासिब समझे, करे।"

मैंने इस मामलेमे अपनी सारी कला और सौजन्य खर्च कर डाला। मैं दोनो अफसरोसे मिला, चोरीकी सारी बाते मैंने नि शक होकर उनसे कह दी।

मुझे कहना चाहिए कि मेरी सत्य-प्रियताको उन्होने देख लिया और उनके सामने मैं यह सिद्ध कर सका कि मैं कोई बात उनसे छिपाता नही था।

रुस्तमजीपर मुकदमा नही चलाया गया। हुक्म हुआ कि जितनी चोरी पारसी रुस्तमजीने कबूल की है, उसके दूने रुपये ले लिये जाय और मुकदमा न चलाया जाय।

रुस्तमजीने अपनी इस चुगी-चोरीका किस्सा लिखकर शीशेमे जडाकर अपने दफ्तरमे टाग दिया और अपने वारिसो तथा व्यापारियोको ऐसा करनेके लिए खबरदार कर दिया।

३१. सत्याग्रहका जन्म

जुलू-विद्रोहमें सौंपे गये अपने कामको खतम करके जब मैं अपने फिनिक्सके सहयोगियोंसे अपनी योजनाओं और जीवनके आदर्शोंकी चर्चा कर रहा था, मुझे खबर मिली कि २२ अगस्त १९०६ के ट्रान्सवाल-सरकारके 'असाधारण गजट' में एक आर्डिनेन्सका मसविदा छपा है, जिसका उद्देश्य एक प्रकारसे दक्षिण अफ्रीका-प्रवासी भारतीयोंकी बरबादी करना था। उसके मुताबिक आठ साल या उससे ज्यादा उम्रके हरएक हिन्दुस्तानीको— चाहे वह मर्द हो या औरत—ट्रान्सवालमें रहनेके लिए एशियाटिक-रजिस्टरमें अपना नाम दर्ज करवाना पडता और अपने लिए रजिस्ट्रीका परवाना प्राप्त करना पडता। ये परवाने लेते वक्त अपने पुराने परवाने अधिकारियोंको सौंप देने पडते। नाम लिखनेकी अर्जीमें अपना नाम, स्थान, जाति, उम्र वगैरह लिखे जाते। नाम लिखनेवाले अधिकारी अर्जीदारका हुलिया नोट करते और अंगुलियों तथा अंगूठेके निशान ले लेते। जो स्त्री-पुरुष नियत समयमें रजिस्ट्री न करवा लेते, उनका ट्रान्सवालमें रहनेका हक छिन जाता। अर्जी न देना भी कानूनी अपराध माना जाता और उसके लिए अपराधी जेलमें भेज दिया जा सकता था या जुर्माना भी कर दिया जा सकता था और अगर अदालत चाहे तो देश-निकालेकी भी सजा दे सकती थी।

दूसरे दिन कुछ गण्यमान्य भारतीयोंको इकट्ठा करके मैंने उन्हें इसक मतलब अक्षरशः समझाया। उसका असर उनपर भी वही हुआ, जो मुझपर हुआ था। सभी स्थितिकी गम्भीरताको समझ गये और यह निश्चय हुआ कि एक सार्वजनिक सभा बुलायी जाय।

११ सितम्बर १९०६ को सभा बुलायी गयी। उसमें जो सबसे महत्त्व पूर्ण प्रस्ताव पास हुआ, वह चौथा प्रस्ताव है, जो कि बहुत प्रसिद्ध हो चुक है। मैंने यह प्रस्ताव सभाको अच्छी तरह समझा दिया। उसका आशय यह था कि इस बिलका विरोध करनेके लिए तमाम उपायोंका अवलम्ब किया जाय, पर यदि इतनेपर भी वह पास हो ही जाय तो भारतीयोंको उसवे आगे अपना सिर न झुकाना चाहिए और इस अवज्ञाके फलस्वरूप जो कु दुख सहना पड़े, वह सब सह लेना चाहिए। आन्दोलनको उस सम 'निष्क्रिय-प्रतिरोध' (Passive Resistance) कहते थे। बादमें इ 'सत्याग्रह' कहने लगे।

हमारे आन्दोलनके बावजूद वह बिल पास हो ही गया। हालांकि हमने पिकेटिंग भी की और लोक-मत भी उसके विरुद्ध था, फिर भी कुछ हिन्दुस्तानियोंने अपने नामकी रजिस्ट्री करवा ही ली। लेकिन जब एशिया-

टिक विभागने देखा कि उनके तमाम आकाश-पाताल एक करनेपर भी उन्हे ५०० से अधिक लोग रजिस्ट्री करानेवाले न मिले, तब उन्होंने पकडा-धकडी शुरू की। जर्मिस्टनमें बहुत-से भारतीय रहते थे। उनमे रामसुन्दर नामक एक व्यक्ति भी था। वह बडा वाचाल और बहादुर दिखता था। उसके गिरफ्तार होते ही, जहा केवल जर्मिस्टनके ही भले लोग उसे जानते थे, वहा अब सारे दक्षिण अफ्रीकाके लोग जानने लग गये। अदालतमे भी रामसुन्दरका वैसा ही आदर-सत्कार किया गया, जैसा कि कौमके प्रतिनिधि और एक असाधारण अपराधीका होना चाहिए था। अदालत उत्सुक भारतीयोंसे खचाखच भर गयी थी। रामसुन्दरको एक मासकी सादी कैदकी सजा हुई और वह जोहान्सवर्गकी जेलके यूरोपियन वार्डमे अलग कमरेमे रखा गया। उसकी गिरफ्तारीका दिन बडी धूमधामसे मनाया गया।

पर रामसुन्दर अयोग्य साबित हुआ। कौम और जेल-अधिकारियोंसे खासी-अच्छी सेवा लेनेके बाद भी उसे जेल दु खदायी मालूम हुआ और उसने ट्रासवाल और आन्दोलन दोनोको अतिम नमस्कार करके अपनी राह ली।

रामसुन्दरका यह किस्सा मैंने उसके दोष-दर्शनके लिए नही लिखा है, बल्कि उससे शिक्षा ग्रहण करनेके लिए लिखा है। प्रत्येक पवित्र आन्दोलन या युद्धके सचालकोको चाहिए कि वे उसमे शुद्ध मनुष्योंको ही शरीक करें।

३२. जेलमें

मगर रामसुन्दरकी गिरफ्तारीसे सरकारको जरा भी लाभ न हुआ, बल्कि उलटा कौमका उत्साह दिन-दूना रात-चौगुना बढने लगा। एशियाटिक विभागके अधिकारी 'इडियन ओपीनियन' के लेख ध्यानपूर्वक पढा करते थे। युद्ध-सम्बन्धी कोई भी बात छिपाकर नही रखी जाती थी। कौम और आन्दोलनकी सारी गतिविधि सब इस अखबारसे जानी जा सकती थी। इससे उन्होने यह तय किया कि जबतक वे कुछ खास-खास अगुआओको गिरफ्तार नही कर लेते, तबतक लडाईकी कमर नही तोडी जा सकती। इसलिए दिसम्बर १९०७ मे कितने ही अगुआओको अदालतमे हाजिर होनेका समन मिला। वे सब २८ दिसम्बर, शनिवारको अदालतमे हाजिर हुए। उन्हें इस बातका जवाब देना था कि एशियाटिक कानूनके मुताबिक रजिस्ट्री न करनेके कारण क्यो न उनपर मुकदमा चलाया जाय? मैजिस्ट्रेट-ने हरएकका मुकदमा अलग-अलग किया और तमाम मुलजिमोको हुक्म दिया कि कुछ तो ४८ घटेके अन्दर और कुछ ७ या १४ दिनके भीतर ट्रासवाल छोडकर चले जाय। यह मीयाद १० जनवरी १९०८ को खत्म होती थी

और उसी दिन हमें अदालतमें सजा सुननेके लिए बुलाया गया। हमें किसीको सफाई देनी ही नहीं थी। सब अपना गुनाह कबूल करनेवाले थे कि हमने मीयादके अन्दर ट्रान्सवाल न छोडकर आज्ञा भंग की है।

अदालतमें जो बयान मैंने दिया, उसमें मैंने मैजिस्ट्रेटसे अपने लिए अधिक-से-अधिक सजा मांगी। फिर भी मैजिस्ट्रेटने मुझे सिर्फ दो महीनेकी ही सजा दी। जिस अदालतमें मैं सैकडों बार वकीलकी हैसियतमें खडा रहता था, वकीलोंके साथ बैठता था, वहींपर आज मैं अपराधीके कठघरेमें खडा हूं—यह विचार कुछ विचित्र जरूर मालूम हुआ, पर यह तो मुझे अच्छी तरह याद है कि वकीलोंके साथ बैठनेमें अपना जो सम्मान समझता था, उसकी बनिस्बत कहीं अधिक सम्मान आज मैंने इस कठघरेमें खडे रहकर माना।

अदालतमें तो सैकडों हिन्दुस्तानी भाई, वकील, मित्र वगैरहके सामने मैं खडा था, लेकिन सजा सुनाते ही मुझे फौरन् हवालातमें ले गये और वहां अकेला रखा गया। एक पुलिस सिपाहीने मुझे वहां एक बेंचपर बैठनेके लिए कहा और दरवाजा बन्द करके चला गया। यहां मेरे दिलमें जरूर क्षोभ पैदा हुआ। मैं गहरे विचार-सागरमें गोते खाने लगा। वकालत कहां गयी? घर-बार कहां है? वे सभाएं कहां हैं? क्या यह सब सपना था? और आज मैं कैदी हो गया हूं! इन दो महीनोंमें क्या होगा?

क्या पूरी सजा काटनी होगी? यदि लोग बराबर एकके बाद एक आते रहे, तब तो यहां दो महीने न रहना पडेगा, पर यदि न आये तो यह दो महीने कैसे कटेंगे? यह लिखते हुए जितना समय लग रहा है, उसके सौवें हिस्सेमें भी कम समयमें मेरे मनमें ये तथा ऐसे कितने ही विचार आये। और फिर मेरा सिर शर्मके मारे झुक गया। "अरे, यह कैसा मिथ्याभिमान! मैं तो जेलको महल बता रहा था—उस खूनी कानूनका सामना करते हुए, जो कुछ मुसीबतें आयें, उन्हें दुःख नहीं, सुख समझना चाहिए, उसका सामना करते हुए जान-माल भी अर्पण कर देना ही तो सत्याग्रहकी पूर्णता है—यह सब ज्ञान अब कहां चला गया?" बस, यह विचार आते ही मैं फिर होशमें आया और अपनी मूर्खतापर आप ही हंसने लगा। अब दूसरे भाइयोंको कैसी सजा दी जायगी, उन्हें मेरे साथ ही रखेंगे या अलग, आदि व्यावहारिक विचारोंमें मैं पडा। इस प्रकार विचार-सागरमें गोते लगा ही रहा था कि दरवाजा खुला। पुलिस-अधिकारीने आकर मुझसे कहा कि मेरे साथ चलो। मैं रवाना हुआ। मुझे आगे करके वह पीछे हो लिया और जेलकी बन्द गाडीके पास मुझे ले जाकर उसमें बैठनेके लिए कहा। मेरे बैठते ही गाडी जोहान्सबर्ग-जेलकी तरफ चली।

जेलमे आनेपर मेरे कपडे उतरवाये। मेरा नाम-ठाम लिखनेके बाद मुझे एक बडे कमरेमे ले गये। कुछ देर वहा रखा होगा कि इतने हीमे मेरे और साथी भी हँसते-हँसते और बातचीत करते हुए आ पहुचे। मेरे बाद उनका मुकदमा कैसे चला, आदि सब हाल उन्होने कह सुनाया। हम सबको एक ही जेल और एक ही बडे कमरेमे रखा गया। इससे हम सब बडे प्रसन्न हुए।

३३. जेलके प्रथम अनुभव

छ बजे हमारे कमरेका दरवाजा बन्द कर दिया गया। वहाके जेल-की कोठरियोके दरवाजेमे लोहेकी छडें नही होती। वे बिलकुल मुदे रहते हैं और ठेठ ऊपर दीवारमे एक झरोखा हवाके लिए रखा जाता है। इसलिए हमे तो यही मालूम हुआ कि हम मानो सन्दूकमे बन्द हैं।

दूसरे-तीसरे दिनसे सत्याग्रही कैदियोके झुण्ड आने लगे। वे सब जान-बूझकर गिरफ्तार होते थे। उनमे अधिकाश तो फेरीवाले थे। दक्षिण अफ्रीकामे हरएक फेरीवालेको, फिर वह गोरा हो या काला, फेरीका परवाना लेना पडता है, जो उसे हमेशा पास रखना पडता है और पुलिसके मागनेपर बताना पडता है। अकसर कोई-न-कोई पुलिसका आदमी परवाना माग ही बैठता था और उसके पास परवाना नही हुआ तो उसे गिरफ्तार कर लेते। फेरीवाले इस काममे बढे। उनके लिए गिरफ्तार होना भी आसान था। फेरीका परवाना नही बताया कि हुए गिरफ्तार! इस प्रकार गिरफ्तारिया होते-होते एक सप्ताहके अन्दर कोई १०० सत्याग्रही कैदी हो गये। और भी आ ही रहे थे। इसलिए हमें तो बिना ही अखबारके खबरें मिल जाया करती। ये भाई नित-नयी खबरें लाते थे। जब सत्याग्रही बडी तादादमे गिरफ्तार होने लगे तब उन्हे सख्त कैदकी सजा दी जाने लगी।

जोहान्सबर्ग-जेलमे सादी कैदके कैदियोको सुबह मक्कीका दलिया मिलता था। दलियेमे नमक नही रहता था। वह अलगसे दिया जाता था। दोपहरको बारह बजे एक पाव भात, थोडा नमक और आधी छटाक घीके साथ एक डबल रोटी भी मिलती थी। शामको मक्कीके आटेकी राब और थोडी आलूकी तरकारी मिलती। आलू अगर छोटे होते तो दो, और बडे होते तो एक मिलता था। इसलिए उससे किसीका पेट नही भरता था। चावल पतले पकाये जाते। जेलके डॉक्टरसे कुछ मसाले मागे गये और कहा गया कि मसाला भारतकी जेलोंमे भी दिया जाता है तो डॉक्टरने कडककर जवाब दिया—"यह हिन्दुस्तान नही है। कैदीको स्वाद कैसा?

मसाला नहीं मिल सकता।" तब हमने दाल मागी, क्योकि जो खाना हमें दिया जाता था, उसमे स्नायुपोषक द्रव्य एक भी नहीं था। इसपर डॉक्टरने उत्तर दिया—"कैदियोको डॉक्टरी दलीलें नहीं देनी चाहिए। तुम लोगोको स्नायुपोषक खुराक भी दी जाती है, क्योकि सप्ताहमें दो बार मक्कीके बदले शामको मटर दी जाती है।" सप्ताह अथवा पखवारेसे जुदे-जुदे गुणवाली खुराक जुदे-जुदे समयपर एक साथ लेकर यदि मनुष्य उसके सत्त्वको आकर्षित कर सकता हो, तब तो डॉक्टरकी दलील ठीक थी। पर बात यह थी कि डॉक्टर किसी प्रकार हमारी बात सुनना ही नहीं चाहता था, परन्तु सुपरिण्टेण्डेण्टने हमारी इस सूचनाको मजूर किया कि हम अपना भोजन खुद ही पका लिया करें। थबी नायडूको हमने अपना पाक-शास्त्री बनाया। चौकेमे उन्हें कितने ही झगडे करने पडते थे। साग अगर कम मिलता तो और मागते। यही हाल दूसरी चीजोका भी था। यह स्वतन्त्रता मिलनेपर भोजन कुछ सन्तोषजनक मिलने लगा।

पर ये सुविधाए मिले या न मिलें, हम सबने तो यही निश्चय किया था कि इस जेलकी सजाको सुखपूर्वक ही काटें। सत्याग्रही कैदियोकी सख्या बढते-बढते १५० तक चली गयी।

इस प्रकार कोई १५ दिन बीते होंगे कि नये कैदी खबर लाने लगे कि सरकारके साथ सुलहकी कोई बातचीत चल रही है। मुझे जनरल स्मट्ससे मिलने बुलाया गया और यह तजवीज पेश की गयी कि भारतीय स्वेच्छासे अपने परवाने बदलवा लें। उनपर कानूनकी कोई पाबन्दी न रहेगी। नवीन परवाना भारतीयोकी सलाहसे बनाया जाय और यदि भारतीय इसे स्वेच्छासे मजूर कर ले तो यह काला कानून रद्द हो जायगा और सब कैदी छोड दिये जायगे। सत्याग्रहीके नाते मैं ऐसे समझौतेको नामजूर नहीं कर सकता था। फलत कैदी छोड दिये गये और मैं अपने देश-बन्धुओको समझौतेकी शर्तें समझानेमे लग गया।

३४. स्मरणीय प्रसग—१

जेलसे छूटकर मैं सीधा जोहान्सबर्ग पहुचा। उसी रात ११-१२ बजे सभा हुई। सूचनाके लिए समय बहुत कम मिला था, रात भी ज्यादा बीत गयी थी। पर तो भी लगभग १००० आदमी जुट गये थे। सभामें दो पठानोको छोड किसीने समझौतेका विरोध नहीं किया, क्योकि पठानोको यह बात जच नहीं रही थी कि स्वेच्छासे भी अगुलियोकी छाप देना मुनासिब है।

१० फरवरी १९०८ को हम कितने ही लोग परवाना लेने जानेको

तैयार हुए। लोगोको खूब समझा दिया गया था कि वे अपने-आप परवाने ले ले। यह भी तय हो चुका था कि पहले दिन खास-खास लोग ही परवाना लें। उसके तीन कारण थे। एक तो यह कि लोगोके दिलसे भयको भगा दें। दूसरे यह देखना था कि एशियाटिक आफिसके लोग कामको सचाई और सभ्यतासे करते हैं या नही, और तीसरा कौमकी देखभाल करना। मेरा दफ्तर ही सत्याग्रह-आफिस था। मैं वहा पहुचा तो मैंने आफिसके मकानके बाहर मीर आलम और उसके मित्रोको देखा। मीर आलम मेरा पुराना मवक्किल था। अपने तमाम कामोमे वह मेरी सलाह लेता था। वह छ फुटसे अधिक ऊचा जवान था। शरीर भी दुहरा था। आज मैंने मीर आलमको पहले-पहल ही इस प्रकार आफिसके बाहर खडे हुए देखा। वह अकसर अन्दर आकर बैठ जाया करता था। हमारी आखे मिली, पर पहला ही मौका था, जब उसने सलाम नही किया। जब मैंने सलाम किया तो उसने भी किया। अपने रिवाजके मुताबिक मैंने पूछा, "कैसे हो ?" मुझे कुछ-कुछ ऐसा याद है कि उसने उत्तरमे कहा, "अच्छा हू !" पर आज उसका चेहरा हमेशाकी तरह प्रसन्न नही था। मैंने यह देखा और इसे अपने दिलमे नोट कर लिया। उसी समय यह भी सोच लिया कि आज कुछ गडबड होगी। मैं आफिसके अन्दर घुसा। शीघ्र ही ईशप मिया, जो कि अध्यक्ष थे, अन्य मित्रोके साथ आ पहुचे और हम एशियाटिक आफिसकी ओर रवाना हुए। मीर आलम और उसके साथी पीछे-पीछे हो लिये।

एशियाटिक आफिसवाला मकान मेरे आफिससे एक मीलसे भी कम फासलेपर था। वह एक बडे मैदानमें था। वहा हमे एक बडी सडकपर होकर जाना पडता था। आफिस कोई पाच कदम रहा होगा कि मीर आलम मेरी बगलमे आ पहुचा और उसने पूछा—"कहा जा रहे हो ?" मैंने जवाब दिया, "दस अगुलियोकी छाप देकर परवाना निकलवाना चाहता हू। अगर तुम भी चलोगे तो तुम्हें दसो अगुलियोकी छाप नही देनी होगी, तुम्हारा परवाना पहले निकलवाकर बादमें अपनी अगुलियोकी छाप देकर अपना परवाना निकलवाऊगा।" यह मैं कह ही रहा था कि इतनेमें मेरे सिरपर पीछेसे एक लाठी आकर लगी। मैं बेहोश होकर औधे मुह गिर पडा और मुहसे निकला—"हे राम !" इसके बाद क्या हुआ, सो मैं नही जानता, पर मीर आलम और उसके साथियोने और भी लाठियाँ और लातें मुझे लगायी! चारो ओर शोर मच गया। राहगीर गोरे इकट्ठे हो गये। मीर आलम और उसके साथी भागे, मगर गोरोने पकड लिया। तबतक पुलिस भी वहा आ पहुची। पुलिसने उन्हे हिरासतमे ले लिया। पास ही एक गोरेका आफिस था। वहा मुझे उठाकर ले गये। थोडी देरमे मुझे होश आया, तब

मैंने रेवरेण्ड डोकको अपने ऊपर झुके हुए देखा। उन्होंने पूछा—"अब कैसे हो ?" मैंने हँसकर कहा—"मैं तो ठीक हू, पर मेरे दात और पसलियोंमे दर्द है। मीर आलम कहा है ?" उत्तर मिला, "वह और उसके साथी तो गिरफ्तार कर लिये गये।" मैंने कहा, "तो उन्हें छूटना चाहिए।" डोकने उत्तर दिया—"यह सब होता रहेगा। यहा तो आप एक अपरिचित गृहस्थके आफिसमे पड़े हुए हैं। आपके होठ और गाल बुरी तरह फट गये हैं। पुलिस अस्पताल ले जाना चाहती है, अगर आप मेरे यहा चले तो मिसेज डोक और मैं अपनी शक्तिभर आपकी शुश्रूषा करेंगे।" मैंने कहा, "हा, मुझे अपने यहा ले चलिये। पुलिसकी मेहरबानीके लिए मेरी ओरसे उसका अहसान मान लीजिये। उन लोगोंसे कहियेगा कि मैं आपके यहा जाना चाहता हू।"

इतनेमे एशियाटिक आफिसके अधिकारी मि० चमनी भी आ पहुचे। एक गाडीमे डालकर मुझे इन पादरी सज्जनके मकानपर ले गये। डॉक्टर बुलाया गया, इस बीचमें ही मैंने मि० चमनीसे कहा, "मैं तो यह उम्मीद करता था कि आपके दफ्तरमे जाकर दसो अगुलियोंकी छाप देकर सबसे पहले अपना परवाना लू, पर ईश्वरको यह मंजूर न था। अब कृपया यहीपर अपने कागज मगवाकर मुझे रजिस्टर कर लीजिये। मैं आशा करता हू कि आप मुझसे पहले किसीकी रजिस्ट्री न करेंगे।" उन्होंने कहा, "ऐसी कौन जल्दी पडी है ? अभी डॉक्टरसाहब आते है। आपको जरा तसल्ली हो जाय, तो फिर यह सब होता रहेगा। दूसरोको परवाने अगर दूगा तो भी आपका नाम सबमे पहले रखूगा।"

मैंने कहा, "यह नही हो सकता। मेरी तो यह प्रतिज्ञा है कि अगर जिन्दा रहा और परमात्माने चाहा तो मैं ही सबसे पहले परवाना लूगा। इसीलिए तो मैं इतना आग्रह कर रहा हू। आप कागज ले आइये।" मि० चमनी जाकर कागज ले आये।

मेरा दूसरा काम यह था कि अटार्नी-जनरल अर्थात् सरकारी वकीलको यह तार कर दू कि मीर आलम और उसके साथियोंने मुझपर जो हमला किया है, उसके लिए मैं उन्हें दोषी नही समझता। जो भी हो, मैं यह चाहता हू कि आप उन्हे मेरी खातिर मुक्त कर दें। इस तारके फलस्वरूप मीर आलम और उसके साथी छोड दिये गये।

पर जोहान्सबर्गके गोरोंने अटार्नी-जनरलको नीचे लिखे अनुसार एक लम्बा पत्र लिखा

"मुलजिमोको सजा देने-न-देनेके विषयमे गाधीजीके जो विचार हो, वे दक्षिण अफ्रीकामे नही चल सकते। खुद उन्हीको मारा है, इसलिए वह भले ही उनका कुछ न करें, पर मुलजिमोंने उन्हें उनके घरमे जाकर नही मारा

है, जुर्म आम रास्तेपर हुआ है। यह एक सार्वजनिक अपराध है। कितने ही अंग्रेज इस बातका सबूत दे सकते हैं, इसलिए अपराधियोका चालान करना जरूरी है।" इसपर सरकारी वकीलने मीर आलम और उसके एक साथीको गिरफ्तार करवाया, उन्हे छ-छ महीनेकी सख्त सजा हुई। हा, मुझे गवाह बनाकर नही बुलाया गया।

३५. स्मरणीय प्रसंग–२

जबतक मि० चमनी कागज वगैरह लेने गये, तबतक डॉक्टर आ पहुचे। उन्होंने मेरे शरीरकी जाच की। मेरा होठ फट गया था, उसे जोडा, पसलियोंको जाच करके मालिश करनेकी दवा दी और होठके टाके टूटने न पाये, इसलिए धीरे-धीरे बोलनेकी इजाजत दी। इससे मेरा बोलना तो बन्द-सा हो गया, केवल हाथ हिला सकता था।

मैंने कौमके नाम एक छोटा-सा पत्र गुजरातीमे लिखकर अध्यक्षके द्वारा प्रकाशित करनेको भेज दिया। वह इस प्रकार है

"मेरी हालत अच्छी है। मि० और मिसेज डोक मुझपर जान दे रहे हैं। मैं बहुत जल्दी अपना काम सभालने लायक हो जाउगा। हमला करनेवालोपर मुझे कोई रोष नही है। उन्होंने अज्ञानके कारण ऐसा किया है। उनपर कोई मामला न चलाया जाय। अगर हम सब भाई शान्त रहेगे तो यह घटना भी हमारे लिए लाभदायक सिद्ध होगी।

"हिन्दू लोग अपने दिलमे जरा भी नाराज न हो। मैं चाहता हू कि इस घटनाके कारण हिन्दू-मुसलमानोंके बीच वैमनस्य नही, पर प्रेम बढे। परमात्मासे मेरी यही प्रार्थना है।

"मुझे मार खानी पड़ी। शायद आगे खानी पडे, तो भी मैं तो यही सलाह दूगा कि सब मिलकर यही प्रयत्न करें कि हममेसे अधिकाश व्यक्ति अपनी दसो अगुलियोकी छाप दें। कौमका और गरीबोका भला इसीमे है। उसकी रक्षा इसीमे होगी।

"अगर हम सच्चे सत्याग्रही होगे, तो मारकी, या भविष्यमे विश्वासघात होनेकी आशकासे जरा भी नही डरेंगे। जो दस अगुलियोकी छाप न देनेवाली बातपर ही अडे हैं, वे गलती कर रहे हैं।

"मैं परमात्मासे प्रार्थना करता हू कि वह कौमका भला करे। उसे सत्य मार्गपर ले चले और मेरे खूनसे हिन्दू तथा मुसलमानोको एक करे।"

मि० चमनी कागजात लेकर लौटे। बडी मुश्किलसे मैंने अपनी अगुलियोंकी छाप दी। उस समय मैंने उनकी आखोमे आसू देखे। उनके खिलाफ तो

मुझे बड़े सख्त लेख लिखने पड़े थे, पर उस समय मेरी आंखोंके सामने इस बातका चित्र खड़ा हो गया कि मौका पड़नेपर मनुष्यका हृदय कितना कोमल हो सकता है। इस कार्रवाईमें बहुत समय नहीं लगा। फिर भी मि० डोक और उनकी धर्मपत्नी बड़े अधीर हो रहे थे कि मैं शीघ्र शान्त और स्वस्थ हो जाऊं। चोटके बाद मेरी मानसिक प्रवृत्तिके कारण उन्हें दुःख हो रहा था। उन्हें यह भय था कि कहीं मेरे स्वास्थ्यपर इसका विपरीत असर न हो। इसलिए संकेत द्वारा तथा और तरकीबसे वे पलंगके पाससे सबको दूर ले गये और मुझे लिखने वगैरहकी मनाही कर दी। मैंने चाहा (और उसे लिखकर प्रकट किया) कि सोनेसे पहले और चित्त-शान्तिके लिए उनकी लड़की ओलिव, जो उस समय बालिका थी, मुझे मेरा प्रिय अंग्रेजी भजन Lead kindly light (प्रेमल ज्योति) सुना दे। मेरी इस इच्छाको डोकने खूब पसन्द किया। यह लिखते समय वह सारा दृश्य मेरी आंखोंके सामने खड़ा हो रहा है और ओलिवकी वे दिव्य तानें अब भी मेरे कानमें गूंज रही हैं।

३६. फिर सत्याग्रह

पिछले प्रकरणमें हमने देखा कि किस तरह भारतीयोंने खुद-ब-खुद अपनी रजिस्ट्री करा ली। उससे ट्रान्सवाल-सरकारको भी सन्तोष हुआ। अब सरकारकी बारी थी। उसे 'काला कानून' रद्द कर देना था और अगर उसने ऐसा किया होता तो सत्याग्रह-संग्राम खत्म हो गया होता। मगर उस काले कानूनको रद्द करनेके बजाय जनरल स्मट्सने एक नयी ही कार्रवाई की। उन्होंने एक वक्तव्य प्रकाशित किया, जिसके द्वारा एक ओर तो काला कानून बहाल रखा और दूसरी ओर उन ऐच्छिक परवानोंको कानूनी करार दिया, पर उस वक्तव्यमें उन्होंने एक वाक्य यह भी डाल दिया था कि जो भारतीय अबतक परवाना ले चुके हैं, उनपर काले कानूनका अमल नहीं होगा।

इसको पढ़कर मैं तो बिलकुल किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गया। मैंने जनरल स्मट्सको एक चिट्ठी लिखी, लेकिन राजनीतिज्ञोंका यह कायदा होता है कि वे प्रायः ऐसी बातोंका जवाब नहीं देते, जो उन्हें उलझनमें डालती हैं। अगर देते भी हैं, तो गोल-मोल।

तब हमने ट्रान्सवाल-सरकारको एक जोरदार पत्र लिखा, जिसमें कहा गया था कि समझौतेके मुताबिक 'एशियाटिक कानून' रद्द नहीं किया गया; और अगर ऐसा करनेके सम्बन्धमें सरकारके निश्चयकी खबर नियत समयमें

पहले कौसिलको न मिली तो वह उन तमाम परवानोको जला देगी, जिनको उसने एकत्र कर रखा है और यह करनेके लिए उसपर जो मुसीबतें आयेगी, उन सबको वह विनय और दृढतापूर्वक सहेगी।

इस अल्टीमेटम अथवा निश्चय-पत्रकी आखिरी मीयादका दिन वही रखा गया था, जिस दिन कि वह दूसरा 'एशियाटिक कानून' मजूर होनेको था। मीयाद बीतनेके दो घटे बाद परवाने जलानेका सार्वजनिक समारोह करनेके हेतु एक सभा बुलायी गयी थी। सत्याग्रह-कमेटीने सोचा था कि अगर कही सरकार अनुकूल उत्तर भेज दे (यद्यपि यह एक अकल्पित बात ही होती) तो भी वह सभा निरर्थक न सिद्ध होती, क्योकि यदि ऐसा ही होता, तो उस सभा द्वारा सरकारका अनुकूल निश्चय ही जाहिर किया जा सकता था।

सभाका काम शुरू होनेवाला ही था कि इतनेमे एक स्वयसेवक बाइसिकलपर चढा आ पहुचा। उसके हाथमे एक तार था। वह सरकारका उत्तर था। उसमे कौमके निश्चयपर दुख प्रकट करते हुए जाहिर किया गया था कि सरकार अपने निश्चयको नही बदल सकती। तार सभामे पढकर सुना दिया गया। सभाने उसका बडा स्वागत किया, मानो सरकार यदि निश्चय-पत्रकी मागोको मजूर कर लेती तो परवानोकी होली जलानेका शुभ अवसर हाथसे चला जाता।

सभाका कार्य शुरू हुआ। अध्यक्षने सभाको सावधान किया, सारी परिस्थिति समझायी और प्रसगोचित प्रस्ताव स्वीकृत किये गये।

अबतक कमेटीके पास दो हजारसे भी अधिक परवाने जलानेके लिए आ पहुचे थे। उनके बण्डलको मैने एक कडाहीमे फलाया। ऊपरसे मिट्टीका तेल छिडका और आग लगा दी। एकदम सारी सभा खडी हो गयी और जबतक वे परवाने जलते रहे, तालियोसे उसने सारे मैदानको गुजा दिया। कितने ही लोगोने अब भी अपने परवाने रख छोडे थे। अब उनकी वर्षा मचपर होने लगी। ये भी कडाहीमे झोक दिये गये।

अग्रेजी अखबारोके सम्वाददाता भी इस सभामे आये थे। उनपर भी उस दृश्यका बडा अच्छा असर पडा। उन्होने अपने समाचारपत्रोको सभाका पूरा वर्णन भेजा।

धारासभाकी जिस बैठकमे (दूसरा) एशियाटिक कानून मजूर किया गया, उसीमे जनरल स्मट्सने एक और बिल पेश किया। उसका नाम था—'इमिग्रेन्ट्स रेस्ट्रिक्शन बिल'। यह नवीन बस्तीका नियमन करनेवाला कानून था। यह इस तरकीबसे बनाया गया था कि अप्रत्यक्ष रूपसे वहा एक भी नवीन भारतीय प्रवेश नही पा सकता था।

उनका विरोध करना तो कौमके लिए बडा ही आवश्यक था, क्योंकि वह उनके अधिकारोंपर नया कुठाराघात था। अगले दो सालमें पडोसके नेटालसे बहुत-से सत्याग्रही स्वेच्छासे ट्रासवालमें प्रविष्ट हुए थे और वे वोक्स-रस्टकी जेलमें रखे गये थे। नेटालके इन मित्रोका साथ देनेकी इच्छासे दूसरे बहुत-से उत्साही लोगोंने, जिन्होंने अपने परवाने जला दिये थे, बाजारमें साग-सब्जीकी टोकरी लगाना शुरू कर दिया था। इसके लिए परवानेकी जरूरत थी और चूकि वे विना परवानेके थे, अत गिरफ्तार कर लिये गये। एक समय वोक्सरस्ट-जेलमें भारतीयोकी सख्या ७५ तक पहुच गयी थी। सरकार इन सत्याग्रहियोंके जमावसे परेशान हो रही थी, जेलमें डालनेके बदले देश-निकाला देना शुरू किया। इससे जरूर कुछ भारतीय कमजोर पडे, मगर बहुतेरे विलकुल दृढ और प्रसन्न रहे और लडाई चलाते रहे।

३७. टॉल्स्टॉय-आश्रम

अबतक (१९१० ई०) तो जेल जानेवाले कुटुम्बोंका पोषण उनको प्रतिमास द्रव्य देकर किया जाता था। यह बहुत असन्तोषजनक और सार्व-जनिक धनका दुर्व्यय सिद्ध हुआ, लेकिन जो बराबर जेल जाते थे वे बीचके दिनोंके लिए रहें भी कहा, यह प्रश्न था, क्योंकि उन्हें तो कोई नौकरीपर रखता नही था। इन दोनो कठिनाइयोका एक ही हल था। वह यह कि तमाम सत्याग्रही और उनके कुटुम्बी सब एक साथ रहें और एक बडे कुटुम्बके लोगोंकी तरह हिल-मिलकर काम करें। इसके लिए मि० केलनबेकने अपनी ग्यारह सौ एकड जमीन मुफ्तमें हमें प्रदान कर दी। इस खेतमें कोई एक हजार पेड थे। उसके सिरेपर एक छोटी-सी टेकडी थी, जिसपर एक छोटा-सा मकान भी था। दो कुएँ थे, एक छोटा-सा झरना भी था, जहासे स्वच्छ पानी मिलता था। लाली रेलवे स्टेशन वहासे कोई एक मील पडता था और जोहान्सबर्ग २१ मील। बस, इसी जमीनपर मकान बनाकर सत्या-ग्रही कुटुम्बोंको बसानेका निश्चय किया। इस खेतमें सन्तरा, खुमानी और बेर खूब पैदा होते थे, इतनी तादादमें कि मौसममें सत्याग्रहियोंके भरपेट खानेपर भी बच रहते थे। झरना रहनेके स्थानसे कोई पाच सौ गजके फासलेपर था। हमने यह नियम रखा कि नौकरोंके द्वारा किसी प्रकारका, घरू, खेती या मकान बनानेका काम भी न लिया जाय। इसलिए पाखाना साफ करनेसे लेकर खाना पकानेतकका सभी काम प्रत्येक कुटुम्ब-को करना पडता था। कुटुम्बोंको रखनेमें यह नियम पहले हीमें बना लिया था कि स्त्रियों और पुरुषोंको अलग-अलग ही रखा जाय। इसलिए मकान

भी अलग-अलग और दूर-दूर ही बनाये गये। शुरुमे १० स्त्रियो और ६० पुरुषोंके रहने योग्य मकान बनानेका निश्चय किया गया। मि० केलनबेकके रहनेके लिए भी मकान बनाना था। साथ ही एक पाठशालाके लिए भी मकान बनाना था। इसके अलावा बढ़ईखाना, मोचीखाना आदिके लिए भी एक मकान बना लेना जरूरी था।

यहा रहनेके लिए जो लोग आनेवाले थे, वे गुजरात, मद्रास, आध्र तथा उत्तर भारतके थ। धर्मके अनुसार वे हिन्दू, मुसलमान, पारसी और ईसाई थे। लगभग ४० युवक, २-३ बूढ़े, ५ स्त्रिया और २५-३० बच्चे थे, जिनमे ४-५ कुमारिया थी। इस आश्रममें आकर कमजोर आदमी भी सशक्त हो गये और सभी परिश्रमके आदी हो गये। सभीको किसी-न-किसी काममे जोहान्सबर्ग जाना पडता। बच्चोको वहाकी सैर करनेकी इच्छा होती। मुझे भी काम-काजके लिए वहा जाना पडता। इसलिए यह तय किया कि सार्वजनिक कामके लिए जानेवालोको ही रेलसे जानेकी छुट्टी दी जाय। जिसे केवल सैर करनेके लिए जाना हो, वह पैदल जाय। हा, रास्तेमें नाश्तेके लिए जरूर कुछ ले जा सकते है। शहरमें अपने खानेपर कोई खर्च न करे। यदि इतने कडे नियम नही बनाये जाते तो जिन पैसोकी बचत करनेके लिए वनवासके कष्ट उठाये थे, वे रेल-किराये और शहरके नाश्ते-खर्चमें ही उठ जाते। घरसे हम लोग जो नाश्ता ले जाते, वह भी सादा ही होता था। हाथके पिसे मोटे और बिना छने आटेकी रोटी, मूगफलीसे घरपर बनाया हुआ मक्खन और सन्तरेके छिलकोका मुरब्बा। आटा पीसनके लिए हाथसे चलानकी लोहेकी चक्की खरीद ली गयी थी। मूगफलीको भूनकर पीस डालनेसे मक्खन बन जाता है। दूधसे बनाये मक्खनसे इसकी कीमत एक-चौथाई होती थी। सन्तरे तो आश्रममे ही पैदा होते थे। आश्रममें गायका दूध शायद ही कभी खरीदते। अकसर डिब्बेके दूधसे ही काम चला ले जाते।

जिनको सैर करनेके लिए जोहान्सबर्ग जानेकी इच्छा होती थी, वे सप्ताहमें एक-दो बार जाते, पर उसी दिन लौट आते। मैं पहले ही कह चुका हू कि फासला २१ मीलका था, पैदल जानेके नियमसे सैकडो रुपये बच गये और पैदल जानेवालोको भी बडा लाभ हुआ—कितनो हीको तो चलनेका नवीन अभ्यास हो गया। नियम यह था कि इस तरह जानेवालोको रातको २ बजे उठकर २॥ बजे निकल पडना चाहिए। कम-से-कम समयमें पहुचने-वालोको ४ घण्टे और १८ मिनट लगते।

हमारा उद्देश्य यह था कि सत्याग्रही कुटुम्बोको उद्यमी रखें, उनके पैसे बचायें और अतत हम कुछ स्वाश्रयी बन जाय। हमने सोचा कि अगर

हम इतना कर सके तो चाहे जितने समयतक लड सकेंगे। हमने जूतोंका एक कारखाना भी खोल लिया था। पास ही जर्मन कैथोलिक पादरियोंका एक मठ था। वहांपर चप्पलें बनाना सिखाया जाता था। उस मठमें जाकर मि० केलनबेकने चप्पलें बनाना सीख लिया और मुझे तथा दूसरे साथियोंको भी सिखा दिया। मैंने खुद दर्जनों चप्पलें बनायी हैं। मेरे कई चेले इस कलामें मुझसे बहुत आगे बढ गये। अपने मित्रोंमें हम उन चप्पलोंको बेचते भी थे। हमने बढईका काम शुरू किया। हम बेंचसे लेकर सन्दूकतक छोटी-मोटी चीजें खुद ही बना लेते थे। आश्रमके लिए पाठशाला तो होनी ही चाहिए। पर वह काम सबसे कठिन मालूम हुआ और अबतक पूर्णताको नहीं पहुचा। शिक्षाका खास भार मि० केलनबेक और मुझपर था। पाठशालाका समय दोपहरके बाद ही रखा जा सकता था। मजदूरी करते-करते हम दोनों खूब थक जाते और मारे नींदके हम झोंके खाते और आंखोंपर पानी लगाकर नींद भगाते। बच्चोंके साथ हंसी-खेल करते और उनका तथा अपना भी आलस्य भगाते, पर कई बार यह सब प्रयत्न निष्फल होता। शरीरको आवश्यक आराम देना पडता, परन्तु यह तो पहला और सबसे छोटा विघ्न हुआ, क्योंकि ऊंघते रहनेपर भी हम वर्गको तो चालू ही रखते, किन्तु सबसे कठिनाई तो यह थी कि तमिल, तेलगू और गुजराती इन तीनों भाषाओंके बोलनेवालोंको एक साथ क्या और किस तरह पढाया जाय? मातृभाषाके द्वारा शिक्षा देनेका लोभ तो हमें अवश्य ही रहता था। तमिल तो मैं कुछ जानता भी था, पर तेलगू बिल्कुल नहीं। इस हालतमें अकेला एक शिक्षक क्या कर सकता था?

पर यह शिक्षा-प्रयोग व्यर्थ साबित नहीं हुआ। लडकोंमें कभी असहिष्णुता नहीं दिखाई दी। एक-दूसरेके धर्म और रीति-नीतिका उन्होंने आदर करना सीखा, सभ्यता सीखी और उद्यमी भी बने। आज भी उन बालकोंमेंसे जितनोंको मैं जानता हूं, उनके कार्योंको देखते हुए मुझे यही मालूम होता है कि टॉल्स्टॉय-आश्रमकी अत्यन्त मधुर स्मृतियोंमेंसे शिक्षा-प्रयोगकी स्मृति किसी प्रकार कम मधुर नहीं है।

३८. अच्छे-बुरेका मेल

टॉल्स्टॉय-आश्रममें मि० केलनबेकने मेरे सामने एक प्रश्न खडा कर दिया था। इससे पहले मैंने उसपर कभी विचार नहीं किया था। आश्रममें कितने ही लडके बडे ऊधमी और आवारा भी थे। उन्हींके साथ मेरे तीन लडके रहते थे। दूसरे लडके भी थे, जिनका लालन-पालन मेरे

लडकोकी ही तरह हुआ था, परन्तु मि० केलनवेकका ध्यान तो इसी बातकी तरफ था कि वे आवारा लडके और मेरे लडके एक साथ इस तरह नही रह सकते। एक दिन उन्होने कहा, "आपका यह सिलसिला मुझे बिलकुल नही जचता। इन लडकोके साथ आपके लडके रहेगे तो इसका बुरा नतीजा होगा। उन आवारा लडकोकी सोहबतसे ये बिगडे बिना कैसे रहेगे ?"

इसको सुनकर मै सोचमें पडा या नही, यह तो मुझे इस समय याद नही, परन्तु अपना उत्तर मुझे याद है। मैंने जवाब दिया, "अपने लडको और इन आवारा लडकोमें मैं भेद-भाव कैसे रख सकता हू ? अभी तो दोनोकी जिम्मेदारी मुझपर है। ये लडके मेरे बुलाये यहा आये है। यदि मैं रुपये दे दू, तो ये आज ही जोहान्सबर्ग जाकर पहलेकी तरह रहने लग जायगे। आश्चर्य नही यदि उनके माता-पिता यह समझते हो कि उन लडकोने यहा आकर मुझपर बहुत मेहरबानी की है। यहा आकर वे असुविधा उठाते है, यह तो आप और मैं दोनो देख रहे है। सो इस सम्बन्धमे मेरा धर्म मुझे स्पष्ट दिखाई दे रहा है। मुझे उन्हे यही रखना चाहिए, मेरे लडके भी उन्हींके साथ रहेगे। फिर क्या आजसे ही मेरे लडकोको यह भेद-भाव सिखाया जाय कि वे औरोसे ऊचे दर्जेके है ? ऐसा विचार उनके दिमागमे डालना, उन्हे उल्टे रास्ते ले जाना है। इस स्थितिमे रहनेसे उनका जीवन बनेगा, स्वय भले-बुरेकी परीक्षा करने लगेगे। हम यह क्यो न माने कि उनमे यदि सचमुच कोई गुण होगा, तो उसीका असर उनके साथियोपर होगा ? जो कुछ भी हो, पर मै तो उन्हे नही हटा सकता और ऐसा करनेमे यदि कुछ जोखिम हो तो उसके लिए हमें तैयार रहना चाहिए।" इसपर मि० केलनबेक सिर हिलाकर रह गये।

नही कह सकते कि इस प्रयोगका नतीजा बुरा हुआ। नही मानता कि मेरे लडकोको इससे कुछ नुकसान हुआ। हा, लाभ होता हुआ तो अलबत्ता मैंने देखा है। उनमे बडप्पनका यदि कुछ अश रहा होगा तो वह चला गया, उन्होने सबके साथ मिल-जुलकर रहना सीखा।

इससे तथा ऐसे दूसरे अनुभवोमे मेरा यह ख्याल बना कि यदि मा-बाप ठीक-ठीक निगरानी रख सके तो उनके भले और बुरे लडकोको एक साथ रहने और पढनेसे अच्छे लडकोका किसी प्रकार नुकसान नही हो सकता। अपने लडकोको घरमे बन्द कर रखनेसे वे शुद्ध ही रहते है और बाहर निकलनेसे वे बिगड जाते है, यह कोई नियम नही है। हा, यह बात जरूर है कि जहा अनेक प्रकारके बालक और बालिकाए एक साथ रहते और पढते हो, वहा मा-बापकी और शिक्षककी कडी जाच हो जाती है। उन्हे बहुत सावधान और जागरूक रहना पडता है।

इस तरह लडके-लडकियोकी सचाई और ईमानदारीके साथ पर-वरिश करने और पढाने-लिखानेमे कितनी और कैसी कठिनाइया है, इसका अनुभव दिन-दिन बढता गया। शिक्षक और सरक्षककी हैसियतसे मुझे उनके हृदयोंमें प्रवेश करना था। उनके सुख-दुखमे हाथ बटाना था। उनके जीवनकी गुत्थिया सुलझानी थी। उनकी चढती जवानीकी तरगो-को सीधे रास्ते ले जाना था।

कितने ही कैदियोके छूट जानेके बाद टॉल्स्टॉय-आश्रममें थोडे ही लोग रह गये। ये खास करके फिनिक्सवासी थे। इसलिए मैं आश्रमको फिनिक्स ले गया। फिनिक्समें मेरी कडी परीक्षा हुई। इन बचे हुए आश्रमवासियो-को टॉल्स्टॉय-आश्रमसे फिनिक्स पहुचाकर मै जोहान्सबर्ग गया। थोडे ही दिन जोहान्सबर्ग रहा होऊगा कि मुझे दो व्यक्तियोके पतनके समाचार मिले। सत्याग्रह जैसे सग्राममें यदि कही भी असफलता-जैसी कुछ चीज दिखाई देती तो उससे मेरे दिलको चोट नही पहुचती थी, परन्तु इस घटना-ने तो मुझपर वज्र-प्रहार ही कर दिया। मेरे दिलमें घाव हो गया। उसी दिन मै फिनिक्स रवाना हो गया। मि० केलनबेकने मेरे साथ जानेका आग्रह किया। वह मेरी दयनीय स्थितिको समझ गये थे। जोर देने लगे, मै आपको अकेला नही जाने दूगा। इस पतनकी खबर मुझे उन्हीके द्वारा मिली थी। रास्ते हीमे मैने सोच लिया, अथवा यो कहू कि मैने मान लिया कि इस अवस्थामें मेरा धर्म क्या है। मेरे मनने कहा कि जो लोग हमारे सरक्षणमें है, उनके पतनके लिए सरक्षक और शिक्षक किसी-न-किसी अशमे जरूर जिम्मेदार है और इस दुर्घटनाके सम्बन्धमें तो मुझे अपनी जिम्मेदारी साफ-साफ दिखाई दी। मेरी पत्नीने मुझे पहले ही चेताया था, पर मैं स्वभावत विश्वासशील हू, इससे मैने उसकी चेतावनीपर ध्यान नही दिया था। फिर मुझे यह प्रतीत हुआ कि ये पतित लोग मेरी व्यथाको तभी समझ सकेंगे, जब मैं इस पतनके लिए कुछ प्रायश्चित्त करूगा। इसीसे उन्हें अपने दोषोका ज्ञान होगा और उसकी गम्भीरताका कुछ अन्दाजा मिलेगा। इस कारण मैने सात दिनके उपवास और साढे चार मासतक एक समय भोजन करनेका विचार किया। मि० केलनबेकने मुझे रोकनेकी बहुत कोशिश की, पर उनकी न चली। अन्तमें उन्होने प्रायश्चित्तके औचित्यको माना और अपने लिए भी मेरे साथ व्रत रखनेपर जोर दिया। उनके प्रेमको मैं न रोक सका। इस निश्चयके बाद ही तुरन्त मेरा हृदय हल्का हो गया, मुझे शान्ति मिली। दोष करनेवालोपर जो कुछ गुस्सा आया था, वह दूर हुआ और उसपर दया ही आती रही।

इस तरह ट्रेनमें ही अपने हृदयको हलका करके मैं फिनिक्स पहुचा। पूछताछकर जो कुछ बाते जाननी थी, वे जान ली। यद्यपि मेरे इस उपवाससे

सबको बहुत कष्ट हुआ, पर उससे वातावरण शुद्ध हुआ। उस पापकी भयकरताको सबने समझा और विद्यार्थी-विद्यार्थिनियोका और मेरा सम्बन्ध अधिक मजबूत और सरल हुआ।

इस दुर्घटनाके सिलसिलेमे ही, कुछ समयके बाद, मुझे फिर चौदह दिनका उपवास करनेकी नौबत आयी थी और मैं जानता हू कि उसका परिणाम आशासे अधिक अच्छा निकला, परन्तु इन उदाहरणोसे मैं यह नही सिद्ध करना चाहता कि शिष्योंके प्रत्येक दोषके लिए हमेशा शिक्षकको उपवासादि करना ही चाहिए, पर मैं यह जरूर मानता हू कि मौकेपर ऐसे प्रायश्चित्त-रूप उपवासके लिए अवश्य स्थान है, किन्तु उसके लिए विवेक और अधिकारकी आवश्यकता है। जहा शिक्षक और शिष्यो मे शुद्ध प्रेम-बन्धन नही, जहाकी शिक्षकको अपने शिष्यके दोषोंसे सच्ची चोट नहीं पहुचती, जहा शिष्यके मनमे शिक्षकके प्रति आदर नही, वहा उपवास निरर्थक है और शायद हानिकारक भी हो, परन्तु ऐसे उपवास या एक समय भोजन करनेके विषयमें भले ही कुछ शका हो, किन्तु शिष्योंके दोषोंके लिए शिक्षक थोडा-बहुत जिम्मेदार जरूर है, इस विषयमें कुछ भी सन्देह नही।

३९. बहनोंका हिस्सा–१

१९१२ के जाडेमे गोखले दक्षिण अफ्रीका आये। उनके आनेका उद्देश्य था—सरकार और सत्याग्रहियोंके बीच समझौता कराना। जनरल बोथासे मिलनेके बाद उन्होंने हमें यह आशा दिलायी कि सब मामला ठीक हो जायगा। उन्होने कहा, "अगले साल काला कानून रद्द हो जायगा और तीन पौण्डका टैक्स हटा दिया जायगा।"

दूसरा साल आया, लेकिन हमारी आशा पूरी न हुई और १९१३ मे टॉल्स्टॉय-आश्रमके निवासियोको सत्याग्रहकी तैयारी करनी पडी, जिसका उद्देश्य था तीन पौडके करको हटवाना।

अबतक हमने स्त्रियोको सत्याग्रहमें जेल जानेसे रोक रखा था—हालाकि वे अपने पतियोके साथ जेल जानेके लिए उत्सुक रहती थी, परन्तु अब एक ऐसी घटना हुई, जिसे देखते हुए यह मालूम होने लगा कि मानो परमात्मा स्वय अदृश्य रूपसे भारतीयोकी जीतके लिए कोई सामग्री तैयार कर रहे हो और मानो दक्षिण अफ्रीकाके गोरोंके अन्यायोको अधिक स्पष्ट रीतिसे बता देना चाहते हो। एक ऐसा मामला अदालतमे आया, जिसमें न्यायाधीशने यह फैसला दिया कि दक्षिण अफ्रीकाके कानूनमें उसी विवाहके लिए स्थान है, जो ईसाई-धर्मके अनुसार होता है अर्थात् जो विवाह

अधिकारीके रजिस्टरमें दर्ज कर लिया जाता है, उसके सिवा और किसी विवाहके लिए उसमें स्थान नहीं हैं। इस भयकर फैसलेके अनुसार हिन्दू, मुस्लिम, पारसी सभी विवाह रद्द करार दे दिये गये और इसके अनुसार दक्षिण अफ्रीकामे विवाहित कितनी ही भारतीय स्त्रियोका दर्जा धर्म-पत्नीका न रहा। वे सरासर रखेलिया समझी जाने लगी। स्त्रियोका ऐसा अपमान होनेपर कैसे धीरज धारण किया जा सकता था? अब स्त्रियोको सत्याग्रहमें शामिल होनेपर हम नही रोक सकते थे। यह निश्चय हुआ कि उन्हें सत्याग्रह-सग्राममें शामिल होनेके लिए निमन्त्रित किया जाय। सबसे पहले टॉल्स्टॉय-आश्रममें रहनेवाली बहनोको ही निमन्त्रण दिया गया। वे स्वय भी सत्याग्रहमें शामिल होनेके लिए तड़प रही थी। सग्राममे आने-वाली तमाम कठिनाइयो और जोखिमोका चित्र मैंने उनके सामने रखा। खान-पान, कपडे-लत्ते, सोना-बैठना आदि सब बातोमें उन्हें परतन्त्रता रहेगी आदि समझाया। जेलमें सख्त मेहनत करनी होगी, कपडे धुलवाये जायगे, अधिकारी लोग अपमान करेंगे, इत्यादि बातोंसे भी उन्हें सावधान कर दिया, पर वे बहनें तो एक बातसे भी नही डरी—सब-की-सब बहा-दुर थी। उनमेंसे एक तो गर्भवती थी। कई बहनोकी गोदमें नन्हें-नन्हें बच्चे थे, पर उन्होंने भी शामिल होनेका आग्रह किया। जिस प्रकार नेटालसे बिना परवाने ट्रासवाल जाना गुनाह समझा जाता था, उसी प्रकार ट्रासवालसे नेटाल आनेवाला भी गुनहगार था। इसलिए यह निश्चय किया गया था कि इन लोगोको सरहद लाघकर बिना परवानेके ट्रासवालमें प्रवेश करनेके गुनाहमें गिरफ्तार करवा दें। इसी बीच जो बहनें गिरफ्तार करके छोड दी गयी थी, उन्हे वापस नेटाल भेजा जाय। अगर उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया तो ठीक, यदि नही, तो नेटालकी कोयलेकी खानोमे, जिनका केन्द्र न्यू-कैसल था, चली जाय और वहाके मजदूरोको खानें छोडनेके लिए समझायें। मजदूर प्राय मद्रास इलाकेके तमिल-तेलगू ही थे।

इसके बाद मैं फिनिक्स पहुचा। वहा सबके साथ मैंने चर्चा की। सबसे पहले फिनिक्स रहनेवाली बहनोंसे इस विषयमे बातचीत कर लेना था। मैं जानता था कि बहनोको जेलमें भेजना एक भयकर बात है। फिनिक्समें रहनेवाली बहुत-सी बहनें गुजराती थी। इसलिए उन्हे ट्रासवाल-वाली बहनोके समान मुस्तैद और अनुभवी नही कह सकते थे। फिर उनमेंसे कितनी ही तो मेरी रिश्तेदार थी, इसलिए सम्भव था कि केवल मेरे लिहाज-से जेल जाना मजूर कर लें और यदि ऐन वक्तपर घबडाकर अथवा जेलमें जानेके बाद कष्टोंसे उकताकर माफी माग लें तो मुझे कितना आघात पहुचेगा, लडाई भी एकदम शिथिल हो जायगी, इत्यादि सभी बातोपर विचार कर

लेना जरूरी था। यह तो मैंने निश्चय ही कर लिया था कि अपनी पत्नीको मैं कभी नही ललचाऊगा। एक तो वह ललचानेपर 'न' कह नही सकती थी और यदि 'हा' कर भी ले तो मुझे यह निश्चय नही था कि उसकी 'हा' को कितना महत्त्व दिया जाय। ऐसे जोखिमके समय सभी अपने-आप जो काम करे, उसीको मजूर करना हितकर होता है। इसलिए अन्य बहनोके साथ मैंने बातचीत की। उन्होने ट्रासवालकी बहनोकी तरह फौरन् बीडा उठा लिया और सब जेल-यात्रा करनेको तैयार हो गयी। उन्होंने मुझे यह विश्वास दिलाया कि हर प्रकारके कष्ट झेलकर भी वे जेल-यात्रा पूरी करेगी। इन सब बातोको मेरी पत्नीने सुन लिया। उसने मुझसे कहा–"मुझे दु ख है कि आप मुझसे इस विषयमे कोई बातचीत क्यो नही करते? मुझमें ऐसी कौन-सी कमी है, जो मै जेल न जा सकूंगी? मै भी तो उसी पथपर चलना चाहती हू, जिसके लिए आप इन बहनोको सलाह दे रहे है।" मैंने जवाब दिया—"तुम्हारे चित्तको मै दु खी तो कैसे कर सकता हू? न इसमें अविश्वासकी कोई बात है। मै तो तुम्हारे जवाबसे खुश हू, पर मुझे इस बातका आभासतक पसन्द नही कि तुम मेरे कहनेसे जेल गयी हो। ऐसे काम सबको अपनी-अपनी हिम्मतपर ही करने चाहिए। यदि मै तुमसे कहू और तुम मेरी आज्ञाका पालन करनेके लिए जेल चली भी जाओ, पर अगर अदालतमें खडे रहते समय तुम्हारे हाथ-पाव कापने लगे, हिम्मत हार जाओ, जेलके कष्ट बरदाश्त न कर सको तो, मेरा क्या हाल होगा? ससारमें हम ऊचा सिर करके कैसे खडे रह सकेंगे?" उत्तर मिला—"यदि मै हिम्मत हारकर छूट आऊ, तो मुझे स्वीकार मत करना। आप यह कल्पना भी किस तरह कर सकते है कि आप और हमारे बच्चे तो उन कष्टोको सह सकते है और मै उन्हें नही सह सकूगी? मुझे तो आपको इस युद्धमें शामिल करना ही होगा।" मैंने उत्तर दिया—"तब तो हमे तुम्हें शामिल करना ही पडेगा। तुम मेरी शर्त जानती ही हो। मेरा स्वभाव भी जानती हो। अब भी विचार करना हो, तो कर लो। पूरा विचार कर लेनेपर तुम्हें लगे कि शामिल न होना चाहिए तो तुम्हे छुट्टी है। आगे कदम बढानेके पहले ही अपना निश्चय बदलनेमें कोई शर्मकी बात नही है।" उसने कहा—"मुझे कुछ सोचना-विचारना नही है, मै अपने निश्चयपर दृढ हू।"

फिनिक्समे और रहनेवाले भी थे। उन्हें भी मैंने इस प्रश्नपर स्वतन्त्र रीतिसे विचार करनेके लिए कहा। सग्रामका अत शीघ्र हो या देरीसे, फिनिक्स बना रहे या मिट जाय, जानेवाले भले-चगे रहें या बीमार हो जाय, किसीको पीछे न हटना चाहिए—इत्यादि शर्तें मैंने बार-बार भली प्रकार समझा दी। सब तैयार हो गये। फिनिक्सके बाहरवालोमें केवल रुस्तमजी

पारसी थे। उन्हें सब लोग प्रेमसे 'काकाजी' कहते थे। उनसे ये सब बातें मैं छिपा नहीं सकता था और न वह पीछे रह सकते थे। पहले सत्याग्रहमें भी वह जेल जा चुके थे। अब दूसरी बार भी तैयार हो गये।

जैसा हमने सोचा था, वैसा ही सब हुआ। जो बहनें ट्रांसवालमें गिरफ्तार न हो सकी, वे निराश होकर अब नेटाल आयी, मगर पुलिसने उन्हें गिरफ्तार नहीं किया। इसलिए वे न्यू-कैसल चली गयीं और वहां अपना काम शुरू कर दिया। इसका असर बिजलीकी तरह हुआ। तीन पौंडके करकी बातका उनपर बहुत प्रभाव पड़ा। बस, मजदूरोंने अपना काम छोड़ दिया।

भला, अब सरकार उन बहादुर बहनोंको कैसे छोड़ सकती थी? उन्हें पकड़ा और तीन मासकी सजा दी गयी।

४०. बहनोंका हिस्सा—२

स्त्रियोंकी बहादुरीका वर्णन करना कठिन है। वे सब नेटालकी राजधानी मेरित्सबर्गके जेलमें रखी गयी। वहां उन्हें कष्ट भी खूब दिये गये। उनके खान-पानकी जरा भी चिन्ता नहीं की जाती थी।

उनको धोबीका काम दिया गया। बाहरसे खाना मंगानेकी मनाही थी, जो आखिरतक कायम रही। कस्तूरबाई (मेरी पत्नी) का व्रत था कि वह एक खास तरहका भोजन ही कर सकती थी। बड़ी मुश्किलसे उसे वही खुराक देना अधिकारियोंने मंजूर किया, पर चीजें ऐसी मिलती थीं कि खायी नहीं जा सकती थीं। जैतूनके तेलकी खासतौरपर जरूरत थी। पहले तो वह दिया ही नहीं गया और जब मिला, तो पुराना और खराब। जब यह प्रार्थना की गयी कि हमारे खर्चसे ही खाना मंगवा दिया जाय, तो उसपर जवाब दिया गया—"यह होटल नहीं है। जो मिलेगा, वही खाना पड़ेगा।" वह जब जेलसे छूटी, तो बदनमें हड्डियांभर रह गयी थीं और बड़ी मुश्किलसे वह बची।

एक दूसरी बहन भयकर बुखार लेकर बाहर निकली; जिसने थोड़े ही दिन बाद उसे परमात्माके घर पहुंचा दिया। उसे मैं कैसे भूल सकता हूं? वालीअम्मा आर० मनूस्वामी मुदलियार १६ वर्षकी बालिका थी। मैं उसके पास गया, तब वह बिस्तरसे उठ नहीं सकती थी। कद ऊंचा था, इससे उसका लड़कोंके जैसा शरीर बड़ा डरावना मालूम होता था। मैंने पूछा—'वालीअम्मा, जेल जानेपर अफसोस तो नहीं है?"

"अफसोस क्यों हो ? अगर मुझे फिर गिरफ्तार करें, तो मैं इसी क्षण जेल जानेके लिए तैयार हू।"

"पर इसमें अगर मौत आ जाय तो ?"

"भले ही आये न! देशके लिए मरना किसे अच्छा न लगेगा ?"

इस बातचीतके कुछ ही दिन बाद वालीअम्मा चल बसी। उसकी देह चली गयी; पर वह अपना नाम अमर कर गयी। इन बहनोंका बलिदान विशुद्ध था। उनका जेल जाना उनका आर्तनाद था, शुद्ध यज्ञ था। ऐसी शुद्ध हार्दिक प्रार्थनाको ही प्रभु सुनते है। यज्ञकी शुद्धि हीमें उसकी सफलता है। भगवान् तो भावनाके भूखे हैं। भक्तिपूर्वक अर्थात् निःस्वार्थ भावमे अर्पित किया हुआ पत्र, पुष्प और जल भी परमात्माको प्रिय है। उसे वह सप्रेम अंगीकार करके करोड़ोगुना फल देते हैं। सुदामाके मुट्ठीभर चावलके बदलेमें उनकी बरसोकी भूख भाग गयी। अकेलेके जेल जानेमे चाहे कोई फल न निकले, मगर एक शुद्धात्माका भक्तिपूर्ण समर्पण किसी समय निष्फल नही हो सकता। कौन कहता है कि दक्षिण अफ्रीकामें किस-किसका यज्ञ सफल हुआ, पर इतना हम जरूर जानते हैं कि वालीअम्माका बलिदान अवश्य ही सफल हुआ।

स्वदेश-यज्ञमें, जगत्-यज्ञमें असख्य आत्माओंका बलिदान दिया गया है, दिया जा रहा है और दिया जायगा। यही ठीक भी है, क्योंकि कोई नही जानता कि पूर्णरूपसे शुद्ध क्या है ? पर सत्याग्रही इतना तो जरूर जानते हैं कि उनमेंसे यदि एक भी शुद्ध होगा, तो उसका यज्ञ फलोत्पत्तिके लिए काफी है। पृथ्वी सत्यके बलपर टिकी हुई है। 'असत्'—'असत्य' के मानी हैं 'नही', 'सत्'—'सत्य' अर्थात् 'है'—जहा असत् अर्थात् अस्तित्व ही नही उसकी सफलता कैसे हो सकती है ? और जो सत्—अर्थात्—'है', उसका नाश कौन कर सकता है ? बस, इसीमें सत्याग्रहका सिद्धान्त समाविष्ट है।

४१. मजदूर भी

बहनोंकी इस गिरफ्तारीका मजदूरोपर बड़ा अद्भुत प्रभाव पड़ा। न्यू कैसलके पासकी खानोंमें काम करनेवाले मजदूरोंने अपने औजार फेंक दिये और जत्थे-के-जत्थे नगरमें आने लगे। खबर मिलते ही फिनिक्स छोड़कर मैं न्यू कैसल पहुचा।

ऐसे मजदूरोंका अपना घर नही होता। मालिक ही उनके लिए घर

बनाते हैं, वे ही उनके रास्तो आदिपर दिया-बत्तीके प्रकाशका और पानीका इन्तजाम भी करते है। मतलब यह कि मजदूर हर तरहसे पराधीन रहते हैं।

ये हडताली मजदूर मेरे पास कई प्रकारकी शिकायतें ले-लेकर आने लगे। कोई कहता कि खानोंके मालिकोने रास्तेपरकी बत्तियोंको हटा लिया है। कोई कहता है कि उन्होंने पानी बन्द कर दिया है। कोई कहते कि वे हडतालियोंका असबाब कमरोमेंसे बाहर फेंक रहे है। एक पठान भाई सैयद इब्राहीमने मुझे अपनी पीठ दिखाकर कहा—"यह देखिये, मुझे कैसा मारा है। सिर्फ आपकी खातिर मैंने उस बदमाशको छोड दिया है, क्योंकि यही आपका हुक्म है। नही तो मैं पठान हू और पठान कभी मार नहीं खाता, बल्कि मारता है।"

मैंने उत्तर दिया—"भाई, तुमने बहुत अच्छा काम किया। इसीको मैं सच्ची बहादुरी कहता हूं। तुम जैसे लोगोंके बलपर ही हम जीतेंगे।"

मजदूर पाच-पचीस नहीं, सैकडो थे। सैकडोंसे हजारो होनेमें भी देर नहीं थी। और ऐसा हुआ भी। उनके लिए मैं मकान कहासे लाऊ? खाने-पीनेका प्रबन्ध क्या करू? इतने बडे और प्रतिक्षण बढनेवाले जनसमुदायको एक ही स्थानपर बिना किसी उद्योगके रखना भयानक जरूर था।

मुझे इसका एक उपाय सूझा। इनको भी फिनिक्सके लोगोकी तरह ट्रासवाल ले जाकर जेलमें क्यो न बैठा दू? कोई ५०० आदमी इकट्ठे हो गये होंगे। उन सबको ट्रेनसे नहीं ले जा सकता था। इतने रुपये मैं कहासे लाता? फिर इससे लोगोकी परीक्षा भी नहीं हो सकती थी। न्यू कैसलसे ट्रासवालकी सरहद ३६ मील थी। नेटालका सरहदी गाव चार्ल्सटाउन था और ट्रासवालका वोक्सरस्ट। पैदल ही सफर करनेका निश्चय किया। मजदूरोंसे भी सलाह की। उनमें स्त्रिया, बच्चे वगैरह भी थे। कितने ही टाल-मटोल कर गये। हृदयको कठोर करनेके सिवा मेरे पास कोई उपाय ही नहीं था। मैंने उनसे कह दिया कि जो वापस खानोंमें कामपर जाना चाहते हों, वे जा सकते है, पर लौट जानेको कोई तैयार नहीं। जो पगु थे, उन्हें ट्रेनसे भेजनेका निश्चय हुआ, शेष सब चार्ल्सटाउनतक पैदल चलनेको तैयार हो गये। रास्ता दो दिनमें तय करना था। अन्तमे सभी प्रसन्न हो गये। न्यू कैसलके गोरोको हैजेका भय था, इसलिए वे जो कुछ इन्तजाम करनेवाले थे, उससे वे मुक्त हो गये और हम भी उनके इन्तजामके सकटसे मुक्त हो गये।

कूचकी तैयारी कर ही रहे थे कि खानके मालिकोंका निमंत्रण आया। मैं डरबन पहुचा। वे इस बातको नहीं मानते थे कि तीन पौंडके करका खानोंसे कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं उन्हें इस बातके लिए राजी न कर सका

कि वे सरकारके पास इस करको हटानेके लिए दरख्वास्त करे। तव मै न्यू कैसल लौटा। मजदूरोका प्रवाह चारो तरफसे वढता आ रहा था। मैने उन्हे सव वाते खोलकर समझा दी थी। मैने यही भी कहा था कि अगर आप लौट जाना चाहते है, तो लौट सकते है। मालिकोकी धौस-धमकीकी वात भी कही। भावी विपत्तियोका भी चित्र खीचकर वता दिया और चेता दिया कि लडाई कव समाप्त होगी, इसका कोई ठिकाना नही। जेलके कष्ट वताये। सव कुछ समझाया, पर वे अपने निश्चयसे नही हटे। "आप जवतक लडनेके लिए तैयार है, तवतक हम भी अपना कदम पीछे नही हटायेंगे। हमे कष्टोका पूरा खयाल है, हमारी चिन्ता न कीजिये।" --इस तरहका निर्भय उत्तर मुझे मिला।

अव तो सिर्फ कूच करना वाकी रहा। एक दिन साझको मैने मजदूरोको खवर दी कि दूसरे दिन (२८ अक्तूवर १९१३) वडे सवेरे कूच करना है। राहमें चलते हुए किन नियमोका पालन करना चाहिए, वे भी समझा दिये। पाच-छ हजारके झुण्डको समझाकर रखना कोई मजाक नही था। मैने उनसे कह दिया कि उन्हें रास्तेमें १॥ पौड रोटी और आधी छटाक शक्करके अलावा कोई और खुराक मिलनेकी गुजाइश नही है। हा, यदि रास्तेमें भारतीय व्यापारी कुछ देगे तो ले लूगा, लेकिन ऐसा नही हो सका तो उन्हें रोटी और शक्करपर सन्तोष करना होगा। वोअर-युद्ध और जुलू-वलवेमे मुझे जो अनुभव प्राप्त हुआ था, उसने इस मौकेपर खूव काम दिया। कोई जरूरतसे ज्यादा कपडे न ले चले, यह शर्त भी थी। रास्तेमें किसीकी चीजको हाथ न लगाया जाय। रास्तेमे अधिकारी लोग या दूसरे अग्रेज मिलें, गालिया दे या पीटे, तो सव वरदाश्त कर लिया जाय, पुलिस कैद करना चाहे, तो चुपचाप अपने-आपको सौप दिया जाय। अगर मै गिरफ्तार हो जाऊ, तो भी लोग उसी तरह कूच करते चले जाय। ये सव वाते उन्हे समझा दी गयी थी। यह भी समझा दिया था कि मेरे पीछे क्रमश कौन-कौन मेरा स्थान ले और कौन काम जारी रखे।

लोग समझ गये। हमारा झुण्ड सही-सलामत चार्ल्सटाउन जा पहुंचा। यहा व्यापारियोने खूव सहायता की। अपने मकान ठहरनेके लिए खोल दिये। मस्जिदके अहातेमे रसोई वनानेके लिए सुविधा कर दी। कूचके लिए जो खुराक दी गयी थी, वह वहीतकके लिए थी। चार्ल्सटाउनमें हमे कुछ दिन ठहरना पडा, इसलिए हमे रसोईके वर्तनोकी जरूरत पडी। व्यापारियोने ये भी खुशी-खुशी दे दिये। चावल वगैरह हमारे पास पहले ही काफी थे, पर फिर भी व्यापारियोने अपनी तरफसे और दिये।

चार्ल्सटाउन एक छोटा-सा गाव था। उस समय उसकी आवादी

मुश्किलसे १००० होगी। उसमे इतने हजार मनुष्योंका समा जाना कठिन था। इसलिए बच्चों और स्त्रियोंको ही मकानोंके अन्दर रखा, बाकी सब खुले मैदानमे ठहरे।

हमारे मनुष्योंसे स्वच्छताके नियमोंका पालन करवाना बड़ा कठिन था, लेकिन मेरे साथियोंने मेरे इस कामको आसान कर दिया। यह मेरा हमेशाका अनुभव है कि अगर नेता मुख्य सेवक बन जाय और हुक्म देनेके पहले खुद सेवा करने लग जाय, तो बहुत-सा काम हो जाता है। अगर नेता अपने शरीरको जरा भी कष्ट देगा, तो दूसरे लोग भी ऐसा ही करने लग जायगे। कम-से-कम मुझे तो इस मौकेपर यही अनुभव हुआ। मैं और मेरे साथी कभी झाड़ना-बुहारना, मैला उठाकर फेंकना आदि काम करते जरा भी नही हिचकिचाते थे, इसलिए दूसरे लोग उन्हीं कामोंको उत्साहसे करने लग जाते, अगर हम खुद अपना हाथ नहीं चला सकते, तो केवल हुक्म चला देनेमे कोई फायदा नही होता है। सभी सरदार बनकर दूसरोंपर हुकूमत जताने लगें, तो कुछ भी काम नही हो सकता, लेकिन जहा खुद सरदार ही सेवक बन जाता है, वहा दूसरे लोग सरदारीका दावा नहीं कर सकते।

भोजनमे दाल और भात दिया जाता था। सब्जी भी खूब मिल जाती थी, पर उसे अलग-अलग पकानेके लिए एक तो बर्तन नही थे, दूसरे उतना वक्त भी चाहिए। इसलिए साग दालके साथ मिला दिया जाता था। चौबीसों घण्टे खाना पकता रहता, क्योंकि भूखे आदमी दिन-रात आते रहते थे। न्यू कैसलमे किसी मजदूरके ठहरनेकी जरूरत नहीं थी। रास्ता सभीको मालूम था, इसलिए हरएक आदमी खानसे निकलते ही सीधा चार्ल्सटाउन आ पहुचता।

जब मैं मनुष्यके धीरज और सहनशीलतापर विचार करता हू, तो मेरे सामने परमात्माकी महिमा खड़ी हो जाती है। खाना पकानेवालोंमें मैं मुखिया था। किसी दिन दालमे पानी ज्यादा हो जाता, कभी वह गल ही नहीं पाती, कभी साग कच्चा रहता तो कभी भात बिगड़ जाता। लेकिन मैंने संसारमें ऐसे कम लोग देखे हैं, जो ऐसा भोजन निगल लें। इसके विपरीत दक्षिण अफ्रीकाके जेलमे मैंने यह देखा कि निश्चित भोजनसे कुछ कम या देरीसे या कच्चा खाना मिलते ही अच्छे-अच्छे शिक्षित समझे जानेवाले लोगोंका मिजाज बिगड़ जाता था।

खाना पकानेसे परोसनेका काम और भी कठिन था। वह तो बिलकुल मेरे ही सुपुर्द था। कच्चे-पक्के भोजनका उत्तरदायी मैं रहता था। कभी-कभी खानेवाले बढ़ जाते और सामग्री कम हो जाती, तो ऐसे मौकेपर थोड़ा-

थोडा कम भोजन बाटकर मुझे लोगोको समझाना भी पडता था। कम भोजन मिलनेपर बहनें मेरी ओर उलहनेकी दृष्टिसे देखने लगती और मेरा हेतु समझते ही हँसती हुई चल देती। वह दृश्य मै अपने जीवनमे कभी नही भूल सकता। मै कह देता—"मै तो लाचार हू। मेरे पास पकाया हुआ खाना थोडा है और लेनेवाले बढ गये। इसलिए अब मुझे इसी तरह देना चाहिए, जिससे थोडा-थोडा सभीको पहुच जाय।" यह सुनते ही वे "सन्तोषम्" कहकर चली जाती।

४२. हमारा कूच–१

अब चार्लसटाउन छोडनेका समय आ पहुचा था। मैंने सरकारको लिख दिया था कि हम ट्रासवालमे निवास करनेके हेतु प्रवेश करना नही चाहते। हमारा प्रवेश तो वह सक्रिय पुकार है, जिसे हम सरकारके वचन-भगके उत्तरमे उठाना चाहते है। हमारा प्रवेश महज उस दु खका चिह्न है, जो हमारे आत्म-सम्मानकी हानिसे हमारे हृदयमे हो रहा है। यदि आप हमे यही चार्लसटाउनमे गिरफ्तार कर लेगे, तो हम निश्चिन्त हो जायेगे। यदि आप ऐसा न करेगे और हममेसे कोई चुपचाप शान्तिपूर्वक ट्रासवालमे प्रवेश कर लेगे तो इसके लिए हम जवाबदेह नही है। हमारे सग्राममें छिपाने योग्य कुछ नही है। इसमे किसीका व्यक्तिगत स्वार्थ भी नही है। यदि कोई लुक-छिपकर प्रवेश करेगा, तो वह हमे प्रिय न होगा, पर जहा हजारो आदमियोसे काम लेना है, जहा प्रेमके सिवा अन्य कोई बन्धन नही है, वहा हम किसीके कार्यके लिए जिम्मेदार नही हो सकते। साथ ही आप इतना भी जान ले कि यदि आप तीन पौडवाला कर उठा लेगे, तो तमाम गिरमिटिया पुन अपने कामपर लौट आयेगे और हडताल समाप्त हो जायगी। भारतीयोके अन्य कष्टोको दूर करनेके लिए हम उन्हें अपने सत्याग्रहमें शामिल नही करेंगे।

इस पत्रके कारण भी स्थिति बडी अनिश्चित हो गयी थी। इसका कोई ठिकाना न था कि सरकार कब हमे गिरफ्तार कर लेगी, पर ऐसे अनबनके मौकेपर सरकारके उत्तरकी प्रतीक्षा कई दिनोतक नही की जा सकती थी। इसलिए हमने निश्चय कर लिया कि यदि सरकार यही हमें गिरफ्तार न करे, तो फौरन् ट्रासवालमे प्रवेश कर लिया जाय। यदि रास्तेमें भी वह हमे कही नही पकडे, तो प्रतिदिन २० से लेकर २४ मीलतकका सफर यह समुदाय ८ दिनतक करता रहे। ८ दिनमें टॉल्स्टॉय-आश्रमपर पहुचनेकी योजना थी। यह भी विचार कर लिया था कि बादमें युद्धकी समाप्तितक

वहींपर सब रहें और काम करके अपनी आजीविका पैदा करें। मि० केलन-बेकने सभी व्यवस्था कर रखी थी। इन्ही यात्रियोंकी सहायतासे वहा मिट्टीके मकान बनवा लेनेका निश्चय कर लिया था। तबतक छोटे-छोटे डेरे लगाकर बूढे और कमजोर लोगोंको उनमे रखनेका विचार था। हट्टे-कट्टे स्त्री-पुरुष तो बाहर भी पडे रह सकते थे। कठिनाई सिर्फ यही थी कि बारिशका मौसम शुरू होनेको था, इसलिए बरसातमे तो सबके लिए आसरा होना जरूरी था, पर मि० केलनबेकको विश्वास था कि तबतक यह मामला ठीक हो जायगा।

कूचकी और तैयारिया भी की गयीं। चार्ल्सटाउनके डॉक्टर ब्रिस्को बडे सज्जन थे। वह हमसे बडी सहानुभूति रखते थे। उन्होंने ऐसी दवाओं-की छोटी-सी पेटी दी, जो रास्तेमे काम आ सकती थी। उन्होंने ऐसे कई डॉक्टरी औजार भी दे दिये थे, जिनसे मुझ-जैसा आदमी भी काम ले सके। इसे खुद हम ही उठाकर ले भी जाते थे, क्योंकि दलके साथ कोई सवारी वगैरह तो थी नही। इसलिए इतनी ही दवाइया रखी, जो एक साथ सौ आदमियोंके लिए काम दे सकें। इससे हमें कोई कठिनाई नही हुई, क्योंकि प्रतिदिन शामको हमे किसी-न-किसी गावके नजदीक पडाव डालना पडता था और किसी दवाईके खतम होते ही फौरन् वहासे नयी ले ली जा सकती थी। दूसरे, हम अपने साथ एक भी मरीज या पगु आदमीको नही रखते थे। उन्हें राहमे ही छोडते चले जाते थे।

खानेके लिए डबल रोटी और शक्करके सिवा क्या मिल सकता था? पर उस रोटीको भी तो आठ दिनतक हम कैसे रख सकते थे? वह तो प्रतिदिन लोगोंको बाटी जाती थी। इसका उपाय यही हो सकता था कि हर मजिलपर कोई हमे रोटियाँ भेज दिया करे, पर करे कौन? हिन्दुस्तानी बावरची तो वहाँ थे नही। फिर हर गाँवमे इस तरह डबल रोटी बनानेवाले भी तो नही होते। देहातमे तो शहरोसे रोटियाँ जाती है। यदि बावरची रोटी बराबर तैयार कर दिया करें, और रेलवाले ठीक समय उसे पहुचा दिया करें, तभी यह हो सकता था। चार्ल्सटाउनकी अपेक्षा वोक्सरस्ट लगभग दूना बडा गाव था। वहा डबल रोटी पकानेवालेकी एक बडी दूकान थी। उसने बडी खुशीसे रोटिया पहुचानेका काम अपने जिम्मे ले लिया। हमारी कठिनाइयोंको देखकर बाजार-भावसे अधिक पैसे लेनेकी कोशिश भी उसने नही की। रोटिया भी अच्छे आटेकी देता और रेलपर वह समयपर रोटिया भेज देता और रेलवाले भी, जो कि गोरे ही थे, प्रामाणिकतापूर्वक हमारे पास पहुचा देते। यही नही, बल्कि इसमें वे विशेष सावधानी और समाल भी रखते। उन्होंने हमारे लिए कितनी और सुविधाएँ भी कर

दी, क्योंकि वे जानते थे कि हमारी किसीसे दुश्मनी नही थी और न किसीको हानि पहुचानेका हमारा उद्देश्य था। हमें तो खुद कष्ट सहकर अपने अन्यायकी पुकार करनी थी। इसलिए हमारे आसपासका वायुमण्डल भी इसी तरह शुद्ध हो गया और हो रहा था। मनुष्य-जातिका प्रेम-भाव प्रकट हुआ। सबने यही अनुभव किया कि हम सब ईसाई, पारसी, मुसलमान, हिन्दू, यहूदी इत्यादि भाई-भाई हैं।

इस तरह, कूचकी तैयारी होनेपर, मैंने एक बार फिर समझौतेकी कोशिश की। पत्र-तार वगैरह तो भेज ही चुका था। अब मैंने टेलीफोनपर जनरल स्मट्ससे बातचीत की। आधे मिनटमे जवाब मिला—"जनरल स्मट्स आपसे कोई वास्ता रखना नही चाहते। आपके जो जीमे आये, कीजिये।" और टेलीफोन बन्द! यह अकल्पित बात नही थी। हा, मैंने इतने रूखेपनकी आशा जरूर नही रखी थी। दूसरे दिन (६ नवम्बर, १९१३ को) निश्चित समय पर ६॥ बजे सुबह हमने प्रार्थना की और ईश्वरका नाम लेकर कूच शुरू कर दिया। कूचमे हमारे साथ २०३७ पुरुष, ११७ स्त्रिया और ५७ बच्चे थे।

४३. हमारा कूच-२

चार्ल्सटाउनसे एक मीलकी दूरीपर वोक्सरस्टका झरना था, इसको पार करते ही ट्रासवालमे पहुच जाते हैं। इस झरनेके उस पार घुडसवार-पुलिस खडी थी। सबसे पहले मैं उसके पार गया। लोगोको समझा दिया गया था कि जब मैं उधरसे इशारा करू, तो वे फौरन् झरना पार कर जाय, पर अभी मैं पुलिससे बातचीत कर ही रहा था कि लोग आगे घुस गये और झरनेको पार कर चले आये। घुडसवार उनके सामने खडे हो गये, पर वह समुदाय इस तरह रुकनेवाला नही था। पुलिस हमे पकडना नही चाहती थी। मैंने लोगोको शान्त किया और उन्हें समझाया कि वे एक कतारमे होकर चलें। ५-७ मिनटमे वे शान्त हो गये और अब हमने ट्रासवालमे कूच करना आरम्भ किया।

वोक्सरस्टके गोरोने दो दिन पहले ही सभा की थी, उसमे हमे अनेक प्रकारकी धमकिया दी गयी थी। कितनो हीने तो यहाँतक कहा कि भारतीय ट्रासवालमे प्रवेश करेंगे, तो हम उनपर गोलिया चला देंगे। इस सभामें मि० केलनबेक गोरोको समझाने गये थे, पर उनकी बात कोई सुनना ही नही चाहता था।

इस सभाकी खबर हमे मिल चुकी थी और हम इस अवसरके लिए

तैयार भी थे। काफी पुलिस बुलानेका मतलब यह भी हो सकता था कि गोरोंको उपद्रव करनेसे रोका जाय। जो हो, हमारा जुलूस शान्तिपूर्वक अपने मुकामपर जा पहुंचा। मुझे तो याद है कि किसी गोरेने जरा भी तूफान नहीं की। सभी इस आश्चर्यको देखनेके लिए बाहर निकल पड़े थे। उनमेंसे कितनों ही की आंखोंमें मित्रता झलकती थी।

हमारा पहला मुकाम पामफोर्ड था, जो चार्ल्सटाउनसे ८ मील दूर था। शामको कोई पांच बजे हम वहां पहुंच गये। रोटी और शक्कर खाकर सब लोग खुली हवामें लेटे हुए थे। कोई भजन गा रहा तो कोई बातचीत कर रहा था। कितनी ही स्त्रियां थककर चूर हो गयी थीं। [illegible] बच्चोंको गोदमें लेकर चलनेकी हिम्मत तो उन्होंने की थी, पर अब आगे चलना उनके बसके बाहर था। इसलिए अपनी चेतावनीके अनुसार मैंने उन्हें एक भारतीय सज्जनकी दुकानपर छोड़ दिया और उनसे कह दिया कि हम टाल्स्टाय-आश्रमपर पहुंच जायं, तो वे उन्हें वहां भेज दें, और गिरफ्तार हो जायं, तो उन्हें अपने घरपर वापस भेज दें।

जैसे-जैसे रात होती गयी, वैसे-वैसे शान्ति बढ़ती गयी। मैं भी सोनेकी तैयारी कर रहा था कि इतनेमें कुछ आवाज सुनायी दी। लालटेन हाथमें लिये हुए पुलिस-अफसरको मैंने देखा। मैं इसका मतलब समझ गया। मुझे कोई तैयारी तो करनी ही नहीं थी। पुलिस-अफसरने कहा—"मेरे पास आपके नाम वारण्ट है, आपको मुझे गिरफ्तार करना है।"

मैंने पूछा—"कब?"

उत्तर मिला—"अभी।"

"मुझे कहां ले जाइयेगा?"

"अभी तो इस नजदीकवाले स्टेशनपर। गाड़ी मिलते ही वोक्सरस्ट।"

मैंने कहा—"तब तो बिना किसीको जगाये ही आपके साथ हो लेता हूं, पर अपने एक साथीको कुछ समझा-बुझा दूं?"

"शौकसे।"

मैंने पास ही सोये हुए पी० के० नायडूको जगाया, उनसे अपनी गिरफ्तारीकी बात कही और समझा दिया कि वे लोगोंको सुबह होनेसे पहले न जगायें। प्रातः होते ही नियमानुसार सूर्य उदय होनेसे पहले कूच कर दें, जहां विश्रान्ति लेने और रोटी बांटनेका समय हो, वहीं वह मेरी गिरफ्तारीकी खबर उन्हें सुना दें। इस दर्मियानमें जो-जो पूछे, उन्हें बताते जायं। यदि सरकार दलको गिरफ्तार करना चाहे, तो वे गिरफ्तार हो जायं, न पकड़े तो दल नियमित रूपसे कूच करता चला जाय। नायडूको किसी प्रकारका डर तो था नहीं। उन्हें यह भी समझा दिया गया था कि अगर वह खुद

गिरफ्तार हो जाय, तो उन्हें क्या करना चाहिए। वोक्सरस्टमे मि० केलनवेक भी थे ही। मै पुलिसके साथ-साथ हो लिया। प्रात काल हुआ, वोक्सरस्टकी ट्रेनमे बैठे। वोक्सरस्टकी अदालतमे मुकदमा चला। सरकारी वकीलने तारीख बढानेकी दरखास्त दी, क्योकि उसके पास कोई सबूत तैयार नही था। तारीख बढा दी गयी। मैने जमानतकी दरखास्त पेश की। कारण बताया—"मेरे पास २००० पुरुष, १२२ स्त्रिया और ५० बच्चोका दल है। अगली तारीखतक मै उनको निश्चित स्थानपर पहुचाकर फिर हाजिर हो सकता हू।" सरकारी वकीलने इसका विरोध किया। मैजिस्ट्रेट लाचार था, क्योकि मुझपर जो इलजाम लगाया गया था, वह ऐसा नही था, जिसमें हाजिर जमानत नही हो सकती थी। उसने ५० पौडका मुचलका लेकर मुझे छोड दिया। मि० केलनबेकने मेरे लिए मोटर तैयार रखी थी। मै फौरन् अपने लोगोमे पहुच गया। हम पुन आगे बढे, पर मुझे आजाद छोडकर सरकार कैसे चैन पा सकती थी? इसलिए मै ८ तारीखको ही दुबारा स्टैण्डर्टनमे पकड लिया गया। अपेक्षाकृत यह स्थान कुछ बडा है। बडी अजीब रीतिसे यहा मेरी गिरफ्तारी हुई। मै लोगोको रोटी बाट रहा था। यहाके दूकानदारोने हमे मुरब्बोके कुछ डिब्बे भेटमे दिये थे। उसके बाटनेमे उस दिन ज्यादा समय लगा था। इसी बीच मैजिस्ट्रेट मेरे पास आकर खडा हो गया। बाटनेका काम पूरा होते ही उसने मुझे एक तरफ बुलाया। मै उसे जानता था, इसलिए शायद वह कोई बात कहना चाहता हो, परन्तु उसने तो हँसकर मुझसे कहा—

"आप मेरे कैदी है।"

मैने कहा—"तब तो मेरा दर्जा बढ गया। पुलिसके बदले आपको मेरी गिरफ्तारीके लिए आना पडा, पर मुझपर मुकदमा तो अभी चलाइयेगा न!"

"मेरे साथ ही चले चलिये। अदालत हो रही है।" वह बोले।

लोगोसे कूच जारी रखनेकी बात कहकर मै उनके साथ चल दिया। मै अदालतके कमरेमे पहुचा, तो अपने दूसरे कुछ साथियोको भी गिरफ्तार पाया।

फौरन् मुझे कोर्टके सामने खडा किया गया। मैने अपने छूटनेके लिए वे ही कारण पेश किये, जो मैने वोक्सरस्टमे पेश किये थे। यहा भी सरकारी वकीलने विरोध किया और ५० पौडकी जमानत पेश करनेपर मुझे २१ तारीखतकके लिए छोड दिया गया।

व्यापारी लोगोने मेरे लिए गाडी तैयार ही रखी थी। हमारा दल तीन मील नही चल पाया था कि मै फिर उसमे जा मिला। इस बार हम लोगोने सोचा कि शायद अब हम सब टॉल्स्टॉय-आश्रमतक जा पहुचेगे, पर

यह धारणा गलत निकली। लोग मेरी गिरफ्तारीके आदी हो गये, यह बात कुछ कम थी ? मेरे ५ साथी तो जेलमें ही रहे। अब हम जोहान्सबर्गके पास पहुचते जा रहे थे। पाठकोको याद होगा कि पूरा रास्ता आठ दिनमे तय करनेका निश्चय किया था। अबतक हम अपने निश्चयानुसार प्रतिदिन रास्ता तय करते आ रहे थे और अब पूरी चार मजिलें बच रही थी, लेकिन ज्यो-ज्यो हमारा उत्साह बढता जाता था, त्यो-त्यो सरकार ज्यादा-से-ज्यादा परेशान होती जाती थी कि इस भारतीय हमलेको कैसे रोके ? हमे अपनी मजिल तय करनेपर यदि वह पकडती तो उससे उसकी कमजोरी और कुशलता जाहिर न होती ? इसलिए उसने शायद सोचा कि यदि पकडना ही है, तो मजिलपर पहुचनेके पहले ही क्यो न पकड लिया जाय !

इसी समय गोखलेका एक तार मिला कि मि० हेनरी पोलक, जो हमारे साथ फिनिक्समे रहा करते थे, भारतवर्ष जाकर भारतीयो और ब्रिटिश गवर्नमेण्टके सामने वहाकी वस्तुस्थिति रखनेमे उनकी मदद करें। इसलिए हमने उनको भारत भेजनेकी तैयारी की। मैंने उन्हें लिखा कि वह जाय, लेकिन वह जानेसे पहले मुझसे मिलकर सारी सूचनाए ले लेना चाहते थे। इसलिए उन्होंने इस सफरमे ही मुझसे मिल लेनेकी इजाजत मागी। मैंने तारसे उन्हें उत्तर दिया—"गिरफ्तार हो जानेकी जोखिम उठाना चाहे, तो चले आयें।"

जोखिम उठाकर भी मुझसे सलाह लेनेकी इच्छासे मि० पोलक हमे स्टैण्डर्टन और ग्रेलिंगस्टेडके बीच टीकवर्थमें ९ तारीखको मिले। दोपहरके ३ बजे होगे। मि० पोलक और मै दोनो दलके आगे-आगे चल रहे थे। और साथी भी हमारी बातें सुन रहे थे। शामको मि० पोलकको डरबन जानेवाली गाडी पकडनी थी, लेकिन 'मोरे मन कछु और है, कर्ताके कछु और !' हमारी बातचीत हो ही रही थी कि एक घोडा-गाडी सामने आकर ठहर गयी। उसमें ट्रासवालके इमिग्रेशन-आफिसके उच्च अधिकारी मि० चमनी और एक-एक पुलिस-अफसर भी थे। दोनो नीचे उतरे। उन्होंने मुझे दूर ले जाकर कहा--"मै आपको गिरफ्तार करता हू।"

इस तरह चार दिनमें मै तीन बार पकडा गया। मैंने पूछा—"इस दलको ?"

"हम उसे देख लेंगे"—उन्होने उत्तर दिया। मै आगे कुछ न बोला। मैंने मि० पोलकसे कह दिया कि वह दलके साथ जाय। सिर्फ अपने गिरफ्तार होनेकी खबर दलको देनेका समय ही मुझे दिया गया। लोगोमे शान्ति रखनेके लिए मैंने कहना शुरू किया ही था कि अधिकारीने बीच हीमें रोककर कहा—"अब आप कैदी हैं, भाषण नहीं दे सकेंगे।"

मैं अपनी स्थितिको समझ गया। बोलना बन्द करके तुरन्त ही अफसरने गाडीवानको गाडी तेज चलानेकी आज्ञा दी और पलभरमे दल आखोसे ओझल हो गया।

पहले मुझे वे ग्रेलिंगस्टेड ले गये और वहासे वेलफोर होते हुए हीडलबर्ग। यहा मैंने रात बितायी।

उधर हमारा दल भी मि० पोलकके नेतृत्वमें बढता गया और रातभर ग्रेलिंगस्टेडमें ठहरा। १० तारीखको सवेरे ९ बजे दल भी वेलफोर पहुचा, जहा तीन स्पेशल रेलगाडिया उन्हें नेटाल ले जाकर छोडनेके लिए तैयार खडी थी। लोग कुछ हठ पकड गये, "गाधीजीको बुलाओ, वह कहेंगे तब हम गिरफ्तार होंगे और रेलमे बैठेंगे।" मि० पोलक और काछलिया सेठने समझा-बुझाकर और यह कहकर कि आखिर हमारी यात्राका उद्देश्य भी तो जेल जाना है, यात्रियोंको राजी किया और सब-के-सब शान्तिपूर्वक रेल-मे बैठ गये।

४४. सत्याग्रहकी विजय

इधर मुझे फिर अदालतमे खडा किया गया। इस बार मेरी गिरफ्तारी डण्डीसे जारी हुए वारटके मुताबिक हुई थी, इसलिए मुझे वे उसी दिन डण्डी ले गये।

उधर मि० पोलकको वेलफोरमे गिरफ्तार तो किया नही, बल्कि उनकी सहायताके लिए अधिकारियोने उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट की। पर जब वह रेलमे बैठनेवाले ही थे कि उन्हें चार्ल्सटाउनमे गिरफ्तार कर लिया गया। मि० केलनवेक भी नही बच सके और दोनोको वोक्सरस्ट जेलमे बन्द कर दिया गया।

११ तारीखको डडीमें मुझपर मुकदमा चला और नौ महीने सख्त कैदकी सजा मुझे सुना दी गयी। अभी तो ट्रासवालमे प्रवेश करनेके लिए लोगोको उकसाने और फुसलानेके आधारपर वोक्सरस्टमे मुझपर मुकदमा चलाना बाकी था। चुनाचे मुझे १३ तारीखको वोक्सरस्ट ले गये। वहा जेलमे मुझे केलनवेक और पोलक भी मिल गये। मुझे खुशी हुई।

१४ तारीखको हम तीनो वोक्सरस्टकी अदालतमे पेश हुए। हम तीनो-को ३-३ महीनेकी कैद हुई। वोक्सरस्ट जेलमे आये दिन नये-नये कैदी आते थे और हमे बाहर होनेवाली घटनाओकी खबरे मिल जाया करती थी, इसलिए कुछ दिन तो खुशी-खुशी कट गये। इन सत्याग्रही कैदियोमे हरबत-सिंह नामक एक बूढा भी था। अवस्था ७५ वर्षसे भी अधिक होगी। वह

खानोंमे नौकर नहीं था। उसने वरसो पहले अपना गिरमिट पूरा कर लिया था, इसलिए वह हड़ताली भी नही था। मेरे गिरफ्तार होते ही लोगोंमे जोश बढ़ आया और बहुत-से लोग नेटालसे ट्रासवालमे प्रवेश करके गिरफ्तार होने लगे। हरवतसिह भी इन्हीमेंसे एक था।

एक दिन मैंने जेलमे हरवतसिहसे पूछा, "आप जेलमें क्यो आये, आप-जैसे बूढ़ोंको तो मैंने जेल जानेके लिए नहीं कहा।"

हरवतसिहने उत्तर दिया, "जब आप, आपकी धर्मपत्नी और आपके बच्चेतक हमारी खातिर जेल गये तो मैं कैसे रह सकता था?"

"लेकिन आप जेलके कष्टोको नही सह सकेंगे। आप जेल छोडकर चले जाय, तो ठीक होगा। क्या मैं आपको छुडानेकी कोशिश करू?"

"मैं जेल हरगिज नहीं छोडूंगा। मुझे तो एक दिन—आजकलमे मरना है ही। ऐसे भाग्य कहा जो मैं जेलमें ही मर सकू?"

इस निश्चयको मैं कैसे डिगा सकता था? उस अशिक्षित साधुके आगे मेरा मस्तक श्रद्धासे झुक गया। हरवतसिहकी साध पूर्ण हुई। वह जेल हीमे ५ जनवरी, १९१४ को मर गया। सैकड़ो भारतीयोंके समक्ष हिन्दू-प्रथाके अनुसार सम्मानपूर्वक उसके शवका अग्नि-संस्कार किया गया। उन युद्धमे हरवतसिह जैसे एक नहीं अनेक लोग थे, लेकिन जेलमे मरनेका सौभाग्य पानेवाले हरवतसिह अकेले ही थे और इसलिए दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहके इतिहासमे हरवतसिहका नाम आदरके साथ लिया जायगा।

मगर अब कूच करनेवाले लोगोंकी ओर चलें। स्पेशल गाडिया उन्हे वापस नेटाल ले गयीं और वहां उन्हें जेलमे डाल दिया गया। सरकारने खानोंके आसपास घेरे बना दिये। उन्हें डंडी और न्यूकैसल जेलोंका हिस्सा करार दिया गया और मजदूरोंको उन्हींमे काम करनेकी मशक्कत दी गयी। इन जुल्मोंके खिलाफ हिन्दुस्तानमें तीव्र रोष फैला।

बीमार होते हुए भी खासतौरसे गोखलेने इस बातके लिए बहुत कोशिश की थी। इसी समय (दिसम्बर, १९१३) वाइसराय लॉर्ड हार्डिगने अपना वह प्रसिद्ध भाषण दिया था, जिसके कारण दक्षिण अफ्रीका और इग्लैंडमे भी जहा-तहा खलबली मच गयी। कायदा यह था कि वाइसराय साम्राज्यके दूसरे स्थानोंकी टीका-टिप्पणी नही करते थे, पर लॉर्ड हार्डिगने तो सख्त टीका कर डाली। इतना ही नहीं, उन्होंने तो सत्याग्रहियोंका पूरा-पूरा बचाव भी किया। यहांतक कि सविनय अवज्ञाका भी समर्थन कर डाला। उनके इस साहसका सब तरफ अच्छा असर पड़ा। एक जाच-कमीशन बैठा और यद्यपि कोई भी हिन्दुस्तानी इस कमीशनका मेम्बर नहीं था; तथापि जनरल स्मट्ससे पत्र-व्यवहार कर मुझे विश्वास हो गया कि हमारा

उद्देश्य सत्याग्रह-आन्दोलनको बन्द करनेसे भी पूरा हो सकेगा और निश्चय ही, कमीशनकी रिपोर्ट प्रकाशित होते ही गवर्नमेटने यूनियनके सरकारी गजटमे 'इण्डियन रिलीफ बिल' प्रकाशित किया, जिसके फलस्वरूप, देरसे ही सही, लेकिन कुछ समझौता हुआ। उस बिलके मुताबिक .

१ तीन पौंडका टैक्स उठा लिया गया।

२ तमाम ऐसी शादिया, जो हिन्दुस्तानमे विधि-विहित मानी जाती थी, अफ्रीकामे भी विधि-विहित मानी जाय।

३ व्यक्तिके अगूठेके निशानवाला परवाना उसको यूनियनकी सीमामे प्रवेश करनेके लिए इजाजतनामा कर दिया जाय।

इस प्रकार ८ सालके बाद यह महान् सत्याग्रह-आन्दोलन खत्म हुआ और ऐसा प्रतीत होने लगा कि दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोको अब कुछ राहत मिली। और मै १८ जुलाई, १९१४ को स्वदेश जाते हुए रास्तेमे इग्लैडमे गोखलेसे मिलनेके लिए रवाना हुआ। मेरे हृदयमे उल्लास और दु ख दोनो-की छाया थी। उल्लास इस बातका कि मै बरसोके बाद स्वदेश लौट रहा था और गोखलेके पथ-प्रदर्शनमे स्वदेश-सेवा करनेका इच्छुक था, और दु ख इस बातका कि जहा मैने जीवनके २१ साल बिताये, असख्य मीठे और कडवे अनुभव प्राप्त किये, अपने जीवन-कार्यकी नीव डाली, उस दक्षिण अफ्रीकासे मै विदा हो रहा था।

४५. गोखलेसे मिलने

ऊपर लिख चुका हू कि सत्याग्रह-युद्धके समाप्न होनेके बाद गोखलेकी इच्छासे इग्लैड होते हुए स्वदेशके लिए रवाना हुआ। साथमे कस्तूरबाई और केलनबेक थे। सत्याग्रह-सग्रामके दिनोमे मैने रेलमे तीसरे दर्जेके टिकट खरीदे, परन्तु इस तीसरे दर्जे और हमारे तीसरे दर्जेमे बहुत अन्तर है। हमारे यहा तो सोने-बैठनेकी जगह भी मुश्किलसे मिलती है और सफाईकी तो बात ही क्या पूछना! किन्तु इसके विपरीत यहाके जहाजोमे जगह काफी रहती थी और सफाईका भी अच्छा खयाल रखा जाता था। कम्पनीने हमारे लिए कुछ और भी सुविधाए कर दी थी। कोई हमको तग न करने पाये, इस खयालसे एक पाखानेमे ताला लगाकर ताली मेरे सुपुर्द कर दी थी, और हम फलाहारी थे, इसलिए हमको ताजे और सूखे फल देनेकी आज्ञा भी जहाजके खजाचीको दे दी गयी थी। मामूली तौरपर तीसरे दर्जेके यात्रियोको फल कम ही मिलते है और मेवा तो कतई नही मिलता। इस सुविधाके कारण हम लोग समुद्रपर बहुत शान्तिसे १७ दिन बिता सके।

इस यात्राके कितने ही सस्मरण जानने योग्य है। मि० केलनबेकको दूरबीनका बडा शौक था। एक-दो कीमती दूरबीनें उन्होंने अपने साथ रखी थी, पर इसके विषयमे रोज हमारी आपसमे बहस होती। मैं उन्हे यह जचानेकी कोशिश करता कि यह हमारे आदर्शके और जिस सादगीको हम पहुचना चाहते हैं, उसके अनुकूल नही है। एक रोज तो हम दोनोमे इस विषयपर गरमागरम बहस हो गयी। उस समय हम दोनो अपनी केबिनकी खिडकीके पास खडे थे।

मैंने कहा, "आपके और मेरे बीच ऐसे झगडे होनेसे तो क्या यह बेहतर नही है कि इस दूरबीनको समुद्रमे फेंक दें ?"

मि० केलनबेकने तुरन्त उत्तर दिया, "जरूर, इस झगडेकी जडको फेंक ही दीजिये।"

मैंने कहा, "देखो, मै फेंक देता हू।"

उन्होंने बे-रोक उत्तर दिया, "मैं सचमुच कहता हूँ, फेंक दीजिये।"

बस, मैंने दूरबीन फेंक दी। उसका दाम कोई सात पौंड था, परन्तु उसकी कीमत उसके रुपयेकी अपेक्षा मि० केलनबेकको जो मोह उसके साथ था, उसमे थी। फिर भी मि० केलनबेकने अपने मनमे कभी इस बातका दु ख न होने दिया। उनके और मेरे बीच तो ऐसी कितनी ही बातें हुआ करती थीं—यह तो उसका एक नमूना पाठकोंको दिखाया है।

हम दोनो सत्यको सामने रखकर ही चलनेका प्रयत्न करते थे। इसलिए मेरे-उनके इस सम्बन्धके फलस्वरूप हम रोज कुछ-न-कुछ नयी बात सीखते। सत्यका अनुसरण करते हुए हमारे क्रोध, स्वार्थ, द्वेष इत्यादि सहज ही दमन हो जाते थे और यदि न होते तो सत्यकी प्राप्ति न होती थी। राग-द्वेपादिसे भरा मनुष्य सरल हो सकता है, वाचिक सत्य भले ही पा ले, पर उसे शुद्ध सत्यकी प्राप्ति नही हो सकती। सत्यका शोध करनेके मानी हैं राग-द्वेपादि द्वन्द्वसे सर्वथा मुक्ति प्राप्त कर लेना।

जिन दिनो हमने यह यात्रा आरम्भ की, उससे पहले टॉलस्टॉय-आश्रमके व्यक्तियोंकी नैतिक कमजोरीके कारण मैंने सात और चौदह दिनके उपवास किये थे, यह मैं इससे पहले अध्यायमे बता चुका हू। इसके कारण अभी बदनमे पूरी ताकत नही आ पायी थी। जहाजमे डेकपर खूब घूमकर काफी खाने और उसे पचानेका यत्न करता, पर ज्यो-ज्यो मैं अधिक घूमने लगा, त्यो-त्यो पिण्डलियोमे ज्यादा दर्द होने लगा। विलायत पहुचनेके बाद तो यह दर्द और बढ गया। वहा डॉक्टर जीवराज मेहतासे मुलाकात हो गयी थी। उपवास और इस दर्दका इतिहास सुनकर उन्होंने कहा, "यदि आप थोडे समयतक आराम नही करेंगे तो आपके पैरोका सदाके लिए सुन्न

पड जानेका अन्देशा है।" तब जाकर मुझे पता चला कि बहुत दिनोंके उपवाससे गयी ताकत जल्दी लाने या बहुत खानेका लोभ नही रखना चाहिए। उपवास करनेकी अपेक्षा छोडते समय अधिक सावधान रहना पडता है और शायद इसमें अधिक सयम भी होता है।

मदीरामे हमे समाचार मिला कि लडाई अब छिडने ही वाली है। इग्लैंडकी खाडीमे पहुचते-पहुचते खबर मिली कि लडाई शुरू हो गयी और हम रोक लिये गये। पानीमे जगह-जगह गुप्त मार्ग बनाये गये थे, उनमेसे होकर हमे साउदैम्पटन पहुचते हुए एक-दो दिनकी देर हो गयी। युद्धकी घोषणा ४ अगस्तको हुई और हम लोग ६ अगस्तको इग्लैंड पहुचे।

४६. लड़ाईमें भाग

विलायत पहुचनेपर खबर मिली कि गोखले तो पेरिसमे रह गये हैं। पेरिसके साथ आवागमन-सम्बन्ध बन्द हो गया है, और यह नही कहा जा सकता कि वह कब आयेंगे। गोखले अपने स्वास्थ्य-सुधारके लिए फ्रास गये थे, किन्तु बीचमे युद्ध छिड जानेसे वही अटक गये। उनसे मिले बिना मुझे देश जाना नही था, और वह कब आयेंगे, यह कोई कह नही सकता था।

अब सवाल यह पैदा हुआ कि इस बीच करे क्या? इस लडाईके सम्बन्धमें मेरा क्या धर्म है? जेलके मेरे साथी और सत्याग्रही सोराबजी अडाजणिया विलायतमें बैरिस्टरीका अध्ययन कर रहे थे। सोराबजीको एक श्रेष्ठ सत्याग्रहीके तौरपर इग्लैंडमे बैरिस्टरीकी तालीमके लिए भेजा था, जिससे दक्षिण अफ्रीकामें आकर वह मेरा स्थान ले ले। उनका खर्च डॉक्टर जीवराज मेहता देते थे। उनके और उनके मार्फत डॉक्टर जीवराज मेहता इत्यादिके साथ, जो विलायतमें पढ रहे थे, इस विषयपर सलाह-मशविरा किया। विलायतमें उस समय जो हिन्दुस्तानी रहते थे, उनकी एक सभा की गयी और उनके सामने मैंने अपने विचार उपस्थित किये। मेरा मत यह हुआ कि विलायतमे रहनेवाले हिन्दुस्तानियोको इस लडाईमें अपना हिस्सा अदा करना चाहिए। अग्रेज विद्यार्थी लडाईमे सेवा करनेका अपना निश्चय प्रकट कर चुके हैं। हम हिन्दुस्तानियोंको भी इससे कम सहयोग न देना चाहिए। मेरी इस बातके विरोधमे इस सभामे बहुतेरी दलीलें पेश की गयी। कहा गया कि हमारी और अग्रेजोकी परिस्थितिमें अन्तर है—एक गुलाम है तो दूसरा मालिक। ऐसी स्थितिमे गुलाम अपने प्रभुकी विपत्तिमें स्वेच्छापूर्वक कैसे मदद कर सकता है? फिर जो गुलाम अपनी गुलामीसे छूटना चाहता है, उसका धर्म क्या यह नही है कि प्रभुकी विपत्तिसे लाभ उठाकर अपना छुटकारा कर लेनेकी

कोशिश कर ले ? पर वह दलील मुझे उस समय कैसे जच सकती थी ? यद्यपि मैं दोनोंकी स्थितिका महान् अन्तर समझ गया था, फिर भी मुझे अपनी स्थिति बिलकुल गुलामकी-सी नहीं मालूम होती थी। उस समय मैं यह समझे हुए था कि अंग्रेजी शासन-पद्धतिकी अपेक्षा कितने ही अंग्रेज अधिकारियोंका दोष अधिक था और उस दोषको हम प्रेमसे दूर कर सकते हैं। मेरा यह खयाल था कि यदि अंग्रेजोंके द्वारा और उनकी सहायतासे हम अपनी स्थितिका सुधार चाहते हों तो हमें उनकी विपत्तिके समय सहायता पहुचाकर अपनी स्थिति सुधारनी चाहिए। ब्रिटिश-शासन-पद्धतिको मैं दोषमय तो मानता था, परन्तु आजकी तरह वह उस समय असह्य नहीं मालूम होती थी। अतएव आज जिस प्रकार वर्तमान शासन-पद्धतिपरसे मेरा विश्वास उठ गया है और आज मैं अंग्रेजी राज्यकी सहायता नहीं कर सकता, इसी तरह उस समय जिन लोगोंका विश्वास इस पद्धतिपरसे ही नहीं, बल्कि अंग्रेज अधिकारियोंपरसे उठ चुका था, वे मदद करनेके लिए कैसे तैयार हो सकते थे ?

उन्होंने इस समयको प्रजाकी मागे जोरके साथ पेश करने और शासनमें सुधार करनेकी आवाज उठानेके लिए बहुत अनुकूल पाया। मैंने इसे अंग्रेजोंकी आपत्तिका समय समझकर मागें पेश करना उचित न समझा और जबतक लड़ाई चल रही है, तबतक हक मागना मुलतवी रखनेके सयममें सभ्यता और दूर-दृष्टि समझी। इसलिए मैं अपनी सलाहपर मजबूत बना रहा और कहा कि जिन्हें स्वयसेवकोंमें नाम लिखाना हो, वे लिखा दें। नाम अच्छी सख्यामें आये। उनमें लगभग सब प्रान्तो और सब धर्मोंके लोग थे।

फिर लॉर्ड क्रूके नाम एक पत्र भेजा गया। उसमें हम लोगोंने अपनी यह इच्छा और तैयारी प्रकट की कि हम हिन्दुस्तानियोंके लिए घायल सिपाहियोंकी सेवा-शुश्रूषा करनेकी तालीमकी यदि आवश्यकता दिखायी दे, तो उसके लिए हम तैयार है। कुछ सलाह-मशविरा करनेके बाद लॉर्ड क्रूने हम लोगोंका प्रस्ताव स्वीकार किया और इस बातके लिए हमारा अहसान माना कि हमने ऐसे मौकेपर साम्राज्यकी सहायता करनेकी तैयारी दिखायी।

जिन-जिन लोगोंने अपने नाम लिखाये थे, उन्होंने प्रसिद्ध डॉक्टर केण्टलीकी देख-रेखमें घायलोंकी शुश्रूषा करनेकी प्राथमिक तालीम शुरू की। छह सप्ताहका छोटा-सा शिक्षाक्रम रखा गया था और इतने समयमें घायलोंको प्राथमिक सहायता करनेकी सब विधिया सिखा दी जाती थी। हम कोई ८० स्वयसेवक इस शिक्षा-क्रममे सम्मिलित हुए। छह सप्ताहके बाद परीक्षा ली गयी तो उसमें सिर्फ एक शख्स फेल हुआ। जो लोग पास हो

गये, उनके लिए सरकारकी ओरसे कवायद वगैरह सिखानेका प्रबन्ध हुआ। कवायद सिखानेका भार कर्नल बकरको सौंपा गया और वह इस टुकडीके मुखिया बनाये गये।

इस समय विलायतका दृश्य देखने लायक था। युद्धसे लोग घबराते नही थे, बल्कि सब उसमें यथाशक्ति मदद करनेके लिए जुट पडे। जिनका शरीर हट्टा-कट्टा था, वे नवयुवक सैनिक-शिक्षा ग्रहण करने लगे, परन्तु अशक्त, बूढे और स्त्री आदि भी खाली हाथ न बैठे रहे। उनके लिए भी काम तो था ही। वे युद्धमें घायल सैनिकोके लिए कपडा इत्यादि सीने-काटनेका काम करने लगे। वहा स्त्रियोका 'लाइसियम' नामक एक क्लब है। उसके सदस्योने सैनिक-विभागके लिए आवश्यक कपडे यथाशक्ति बनानेका जिम्मा ले लिया। सरोजिनीदेवी (नायडू) भी इसकी सदस्या थी। उन्होंने इसमें खूब दिलचस्पी ली थी। उनके साथ मेरा वह प्रथम ही परिचय था। उन्होने कपडे ब्योतकर मेरे सामने उनका एक ढेर रख दिया और कहा कि जितने सिला सको, उतने सिलाकर मुझे दे देना। मैंने उनकी इच्छाका स्वागत करते हुए घायलोकी शुश्रूषा की। उस तालीमके दिनोमें जितने कपडे तैयार हो सके, उतने उनको दे दिये।

इस तरह अपना धर्म समझकर मैं युद्धमें पडा तो सही, पर मेरे नसीबमें यह नही बदा था कि उसमे मैं सीधा भाग लू, बल्कि ऐसे नाजुक मौकेपर सत्याग्रहतक करनेकी नौबत आ गयी।

४७. गोखलेकी उदारता

विलायतमें मुझे पसलीके दर्दकी शिकायत हो गयी थी। इस बीमारीके वक्त गोखले विलायत आ पहुचे थे। उनके पास केलनबेक और मैं हमेशा जाया करते। उनसे ज्यादातर युद्धकी ही बातें हुआ करती। जर्मनीका भूगोल केलनबेककी जबानपर था, और यूरोपकी यात्रा भी उन्होंने बहुत की थी, इसलिए वह नकशा फैलाकर गोखलेको लडाईकी छावनिया दिखाते।

जब मैं बीमार हुआ था, तब मेरी बीमारी भी हमारी चर्चाका एक विषय हो गयी थी। भोजनके प्रयोग तो उस समय भी मेरे चल ही रहे थे। उस समय मैं मूगफली, कच्चे और पक्के केले, नीबू, जैतूनका तेल, टमाटर, अगूर इत्यादि चीजें खाता था। दूध, अनाज, दाल वगैरह चीजें बिलकुल न लेता था। मेरी देख-भाल जीवराज मेहता करते थे। उन्होने मुझे दूध और अनाज लेनेपर बडा जोर दिया। इसकी शिकायत सीधे गोखलेतक पहुची। फलाहार-सम्बन्धी मेरी दलीलोके वह कायल न थे। तन्दुरस्तीकी हिफाजतके लिए डॉक्टर जो-जो बतायें, वह लेना चाहिए, यही उनका मत था।

गोखलेके आग्रहको न मानना मेरे लिए बहुत कठिन बात थी। जब उन्होंने बहुत ही जोर दिया, तब मैंने उनसे २४ घण्टेतक विचार करनेकी इजाजत मागी। केलनबेक और मैं घर आये। रास्तेमें मैंने उनके साथ चर्चा की कि इस समय मेरा क्या धर्म है। मेरे प्रयोगमें वह भी मेरे साथ थे। उन्हें यह प्रयोग पसन्द भी था, परन्तु उनका रुख इस बातकी तरफ था कि यदि स्वास्थ्यके लिए मैं इस प्रयोगको छोड दू तो ठीक होगा। इसलिए अब अपनी अन्तरात्माकी आवाजका फैसला लेना बाकी रह गया।

सारी रात मैं विचारमें डूबा रहा। अब यदि मैं अपना सारा प्रयोग छोड दू तो मेरे सारे विचार और मन्तव्य धूलमें मिल जाते थे। फिर उन विचारोमे मुझे भूल भी नही मालूम होती थी, इसलिए प्रश्न यह था कि किस अशतक गोखलेके प्रेमके अधीन होना मेरा धर्म है, अथवा शरीर-रक्षाके लिए ऐसे प्रयोग किस तरह छोड देने चाहिए। अन्तको मैंने यह निश्चय किया कि धार्मिक दृष्टिसे प्रयोगका जितना अश आवश्यक है, उतना रखा जाय और शेष बातोमें डॉक्टरकी आज्ञाका पालन किया जाय। मेरे दूध त्यागनेमें धर्म-भावनाकी प्रधानता थी। कलकत्तामें गाय-भैंसका दूध जिन घातक विधियो द्वारा निकाला जाता है, उनका दृश्य मेरी आखोंके सामने था। फिर यह विचार भी मेरे सामने था कि मासकी तरह पशुका दूध भी मनुष्यकी खुराक नहीं हो सकता। इसलिए दूध-त्यागपर दृढ निश्चय करके मैं सुबह उठा। इस निश्चयसे मेरा दिल बहुत हलका हो गया था, किन्तु फिर भी गोखलेका भय तो था ही; लेकिन साथ ही मुझे यह भी विश्वास था कि वह मेरे निश्चयको तोडनेका उद्योग न करेंगे।

शामको नेशनल लिबरल क्लबमें हम उनसे मिलने गये। उन्होंने तुरन्त पूछा, "क्यो, डॉक्टरकी सलाहके अनुसार ही चलनेका निश्चय किया न?"

मैंने धीरेसे जवाब दिया, "और सब बातें तो मैं मान लूंगा, परन्तु आप एक बातपर जोर न दीजियेगा। दूध और दूधकी बनी चीजें और मास—इतनी चीजें मैं न लूंगा, और इनके न लेनेसे यदि मौत भी आती हो तो मैं समझता हू, उसका स्वागत कर लेना मेरा धर्म है।"

"तुमने यह अन्तिम निर्णय कर लिया है?" गोखलेने पूछा।

"मैं समझता हू कि इसके सिवा मैं आपको दूसरा उत्तर नहीं दे सकता। मैं यह जानता हू कि इससे आपको दु ख होगा, परन्तु मुझे क्षमा कीजियेगा।" मैंने जवाब दिया।

गोखलेने कुछ दु खसे, परन्तु बडे ही प्रेमसे कहा, "तुम्हारा यह निश्चय मुझे पसन्द नहीं। मुझे इसमें धर्मकी कोई बात नही दिखायी देती, पर अब बातपर जोर नही दूगा।" यह कहते हुए जीवराज मेहताकी ओर

देखकर उन्होंने कहा, "अब गांधीको ज्यादा दिक न करो। उन्होंने जो मर्यादा बांध ली है, उसके अन्दर ये जो-जो चीजें ले सकते हैं, वे ही देनी चाहिए।"

डॉक्टरने अपनी अप्रसन्नता प्रकट की, पर वह लाचार थे। मुझे मूगकी दालका पानी लेनेकी सलाह दी, और कहा—"उसमें हींगका बघार दे देना।" मैंने इसे मंजूर कर लिया। एक-दो दिन मैंने वह पानी पिया भी, परन्तु इससे उलटा मेरा दर्द बढ गया। मुझे वह मुआफिक नही हुआ, इससे मै फिर फलाहारपर आ गया। ऊपरके इलाज, डॉक्टरने जो मुनासिब समझे, किये ही। इससे अलबत्ता आराम था, परन्तु मेरी इन मर्यादाओंपर वह बहुत बिगड़ते। इसी बीच गोखले भारतवर्षको रवाना हुए, क्योंकि वह लन्दनका अक्तूबर-नवम्बरका कोहरा सहन नही कर सके।

पसलीका दर्द भोजन-परिवर्तन करनेसे और कुछ बाह्य उपचारोंसे ही मिटा, परन्तु बीमारी बिलकुल निर्मूल न हुई। संभाल रखनेकी जरूरत तो अभी थी ही। अभी बिछौनेपर ही पडा रहना पडता था। डॉक्टर मेहता बीच-बीचमें आकर देख जाया करते थे, और जब आते, तभी कहा करते, "अगर मेरा इलाज कराओ तो देखते-देखते आराम हो जाय।"

यह सब हो रहा था कि एक रोज मि० राबर्ट्स मेरे घर आये और मुझसे जोर देकर कहा कि आप अपने देश चले जाइये। उन्होंने कहा, "ऐसी हालतमें आप नेटली* हरगिज नही जा सकते। कड़ाकेका जाड़ा तो अभी आगे आनेवाला है। मैं तो आग्रहके साथ कहता हूं कि अपने देश चले जायंगे, तो वहा जाकर चंगे हो जायंगे। तबतक यदि युद्ध जारी रहा तो उसमे मदद करनेके और भी बहुत अवसर मिल जायंगे और नहीं, तो जो कुछ आपने किया है, उसे भी मैं कम नही समझता।"

मुझे उनकी सलाह अच्छी मालूम हुई और मैंने देश जानेकी तैयारी की।

४८. विदा

मि० केलनबेक देश जानेके निश्चयसे हमारे साथ रवाना हुए थे। विलायतमें हम साथ ही रहते थे। युद्ध शुरू हो जानेके कारण जर्मन लोगोंपर बडी सख्त देख-रेख थी। इससे हम सबको इस बातकी आशंका ही थी कि केलनबेक हमारे साथ आ सकेंगे या नही। उनके लिए पासपोर्ट प्राप्त

---

* यह अस्पतालका नाम है, जहां घायलोंकी शुश्रूषा करनेके लिए गांधीजीको अपनी टुकड़ीके साथ जाना था।

करनेका वहुत प्रयत्न किया गया। मि० रावर्ट्स खुद उन्हें पास दिला देनेके लिए रजामन्द थे। उन्होने सारा हाल तारद्वारा वाइसरायको लिखा, पर लॉर्ड हार्डिगका तुरन्त सीधा और सूखा जवाव आया, "हमें अफसोस है, हम इस समय किसी तरह जोखिम उठानेको तैयार नही है।" हम सवने इस जवावके औचित्यको समझा। केलनवेकके वियोगका दुख तो मुझे हुआ ही, परन्तु मैंने देखा कि मेरी अपेक्षा उनको ज्यादा हुआ। यदि वह भारतवर्षमे आ सके होते तो आज एक वढिया किसान और वुनकरका सादा जीवन व्यतीत करते होते।

हमने तीसरे दर्जेका टिकट लेनेकी कोशिश की, परन्तु पी० एड ओ० के जहाजमे तीसरे दर्जेका टिकट नही मिलता था, अत दूसरे दर्जेका लेना पडा। दक्षिण अफ्रीकासे हम कितना ही ऐसा फलाहार साथ वाध लाये थे, जो जहाजोमे नही मिलता था। वह हमने साथ रख लिया। दूसरी चीजें तो जहाजमें मिलती ही थी।

डॉक्टर मेहताने मेरे शरीरको मीट्स प्लास्टरके पट्टेसे वाध दिया था और मुझे कहा था कि पट्टा वधा रहने देना। दो दिनके वाद वह मुझे सहन न हो सका और वडी मुश्किलके वाद मैंने उसे उतार डाला और नहाने-धोने भी लगा। फल और मेवेके सिवा और कुछ नही खाता था, इससे तवीयत दिन-दिन सुधरने लगी और स्वेजकी खाडीमें पहुचनेतक तो अच्छी हो गयी। यद्यपि इससे शरीर कमजोर हो गया था, फिर भी वीमारीका भय मिट गया था और मैं रोज धीरे-धीरे कसरत वढाता गया। स्वास्थ्यमे यह शुभ परिवर्तन तो मेरा खयाल है कि समशीतोष्ण हवाकी वदौलत ही हुआ।

पुराने अनुभवसे अथवा और किसी कारणसे अग्रेज यात्रियोके और हमारे अन्दर यहा जो अन्तर मैंने देखा, वह दक्षिण अफ्रीकासे आते हुए भी नही देखा था। वहा भी अन्तर तो था, परन्तु यहा और ही प्रकारका भेद दिखायी दिया। किसी-किसी अग्रेजके साथ वातचीत होती, परन्तु वह भी 'साहव-सलामत' से आगे नहीं। हार्दिक भेट नही होती थी, किन्तु दक्षिण अफ्रीकाके जहाजमें और दक्षिण अफ्रीकामें हार्दिक भेंट हो सकती थी। इस भेदका कारण तो मैं यही समझा कि इधरके जहाजोमें अग्रेजोके मनमें यह भाव कि 'हम शासक हैं' और हिन्दुस्तानियोके मनमे यह भाव कि 'हम गुलाम हैं', जानमें या अनजानमे काम कर रहा था।

ऐसे वातावरणसे जल्दी छूटकर देश पहुचनेके लिए मैं आतुर हो रहा था। अदन पहुचनेपर ऐसा भास हुआ, मानो थोडे-वहुत घर आ गये हैं। अदन-वालोंके साथ दक्षिण अफ्रीकामे ही हमारा अच्छा सम्वन्ध हो गया था, क्योंकि भाई कैकोवाद कावसजी दीनशा डरवन आ गये थे और उनके तथा

उनकी पत्नीके साथ हमारा अच्छा परिचय हो चुका था। थोडे-ही दिनोमे हम बम्बई आ पहुचे। जिस देशमें मैं १९०५ में लौटनेकी आशा करता था, वहा १० वर्ष वाद पहुचनेसे मेरे मनको बडा आनन्द हो रहा था। बम्बईमें गोखलेने स्वागत वगैरहका प्रबन्ध कर ही डाला था। उनकी तबीयत नाजुक थी। फिर भी वह बम्बई आ पहुचे थे। उनसे मिलकर तथा उनके जीवनमें मिलकर अपने सिरका बोझ उतार डालनेकी उमगसे मैं बम्बई पहुचा था, परन्तु विधाताने कुछ और ही रचना रखी थी—

'मोरे मन कछु और है कर्ताके कछु और।'

४९. गोखलेके साथ पूनामें

मेरे बम्बई पहुँचते ही गोखलेने मुझे खबर दी कि बम्बईके गवर्नर आपसे मिलना चाहते हैं और पूना आनेसे पहले आप उनसे मिलते आयें तो अच्छा होगा। इसलिए मैं उनसे मिलने गया। मामूली वातचीत होनेके बाद उन्होंने मुझसे कहा—

"आपसे मैं एक वचन लेना चाहता हू। मैं चाहता हू कि सरकारके सम्बन्धमें यदि आपको कही कुछ आन्दोलन करना हो तो उसके पहले आप मुझसे मिल लें और बातचीत कर लें।" मैंने उत्तर दिया, "यह वचन देना मेरे लिए बहुत सरल है, क्योकि सत्याग्रहीकी हैसियतसे मेरा यह नियम ही है कि किसीके खिलाफ कुछ करनेके पहले उसका दृष्टि-बिन्दु खुद उसीसे समझ लू और अपनेसे जहातक हो सके, उसके अनुकूल होनेका यत्न करू। हमेशा दक्षिण अफ्रीकामें इस नियमका पालन किया है और यहा भी ऐसा ही करनेका विचार करता हू।"

लॉर्ड विलिंगडनने इसपर मुझे धन्यवाद दिया और कहा—

"आप जब कभी मिलना चाहे, मुझसे तुरन्त मिल सकेंगे और आप देखेंगे कि सरकार जान-बूझकर कोई बुराई नही करना चाहती।"

मैंने जवाब दिया—"इसी विश्वासपर तो मैं जी रहा हू।"

इसके बाद मैं पूना पहुचा। वहाके सारे सस्मरण लिखना मेरी सामर्थ्यके बाहर है। गोखलेने और भारत-सेवक-समितिके सदस्योने मुझे अपने प्रेमसे नहला दिया। जहातक मुझे याद है, उन्होने तमाम सदस्योको पूना बुलाया था। सबके साथ दिल खोलकर मेरी बातें हुई। गोखलेकी तीव्र इच्छा थी कि मैं भी समितिका सदस्य बनू। मेरी इच्छा तो थी ही, परन्तु सदस्योकी यह धारणा हुई कि समितिके आदर्श और उनकी कार्य-प्रणाली मुझसे भिन्न थी। इसलिए वे दुविधामें थे कि मुझे सदस्य होना चाहिए

या नहीं। गोखलेकी यह मान्यता थी कि अपने आदर्शपर दृढ़ रहनेकी जितनी प्रवृत्ति मेरी थी, उतनी ही दूसरोंके आदर्शकी रक्षा करने और उनके साथ मिल जानेका स्वभाव भी था। उन्होंने कहा, 'परन्तु हमारे साथी अभी आपके दूसरोंको निभा लेनेके इस गुणको नहीं पहचान पाये है। वे अपने आदर्शपर दृढ़ रहनेवाले स्वतन्त्र और निश्चित विचारके लोग हैं। मैं आशा तो यही रखता हूं कि वे आपको सदस्य बनाना मंजूर कर लेंगे, परन्तु यदि न भी करें तो आप इससे यह हरगिज न समझें कि आपके प्रति उनका प्रेम या आदर कम है। अपने इस प्रेमको अखण्डित रहने देनेके लिए ही वे किसी तरहकी जोखिम उठानेसे डरते हैं, परन्तु आप समितिके बाकायदा सदस्य हों या न हों, मैं तो आपको सदस्य मानकर ही चलूंगा।"

मैं समितिका सदस्य बनूं या न बनूं, पर एक आश्रमकी स्थापना करके और फिनिक्सके साथियोंको उसमें रखकर मैं कहीं बैठना चाहता था। मैंने अपना यह संकल्प उनपर प्रकट किया था। गुजराती होनेके कारण गुजरातके द्वारा सेवा करनेकी पूंजी मेरे पास अधिक होनी चाहिए, इस विचारसे गुजरातमें ही कहीं स्थिर होनेकी इच्छा भी थी। गोखलेको यह विचार पसन्द आया और उन्होंने कहा—

"जरूर आश्रम स्थापित करो। सदस्योंके साथ जो बातचीत हुई है, उसका फल कुछ भी निकलता रहे, परन्तु तुम्हारे आश्रमके लिए धनका प्रबन्ध मैं कर दूंगा। उसे मैं अपना ही आश्रम समझूंगा।"

यह सुनकर मेरा हृदय फूल उठा। चन्दा मांगनेके झंझटसे बचा, यह समझकर बड़ी खुशी हुई और इस विश्वाससे कि अब मुझे अकेले अपनी जिम्मेदारीपर कुछ न करना पड़ेगा, बल्कि हरएक उलझनके समय मेरे लिए एक पथप्रदर्शक यहां है, मेरे सिरका बोझ उतर गया।

गोखलेने डॉक्टर देवको बुलाकर कह दिया—"गांधीका खाता अपनी समितिमें खोल लो और उनको अपने आश्रमके लिए तथा सार्वजनिक कामोंके लिए जो कुछ रुपया चाहिए वह देते जाना।"

अब मैं पूना छोड़कर शान्ति-निकेतन जानेकी तैयारी कर रहा था। अन्तिम रातको गोखलेने खास मित्रोंकी एक पार्टी इस विधिसे की, जो मुझे रुचिकर होती। उसमें वे ही चीजें अर्थात् फल और मेवे मंगाये थे, जो मैं खाया करता था। पार्टी उनके कमरेसे कुछ ही दूरीपर थी। उनकी हालत ऐसी न थी कि वह वहांतक भी आ सकते, लेकिन उनका प्रेम उन्हें कैसे रुकने देता? वह जिद करके आये, परन्तु उन्हें गश आ गया और वापस लौट जाना पड़ा। ऐसा गश उन्हें बार-बार आ जाया करता था, इसलिए उन्होंने कहलवाया कि पार्टीमें किसी प्रकारकी गड़बड़ न होनी चाहिए।

पार्टी क्या थी, समितिके आश्रममे अतिथि-घरके पासके मैदानमे जाजम बिछाकर हम लोग बैठ गये थे और मूगफली, खजूर वगैरा खाते हुए प्रेम-वार्ता करते थे एव एक-दूसरेके हृदयको अधिक जाननेका प्रयास करते थे।

उनकी यह मूर्च्छा मेरे जीवनके लिए कोई मामूली अनुभव नही था।

५०. धमकी ?

बम्बईसे मुझे अपनी विधवा भौजाई और दूसरे कुटुम्बियोसे मिलनेके लिए राजकोट और पोरबन्दर जाना था। इसलिए मै राजकोट गया। दक्षिण अफ्रीकामे सत्याग्रह-आन्दोलनके सिलसिलेमें मैंने अपना पहनावा जितना हो सकता था, गिरमिटिया मजदूरकी तरह कर डाला था। मेरे ऐसे कपडे पहननेवाला आमतौरपर गरीब आदमियोमे ही गिना जाता है। इस समय वीरमगाम और वढवाणमें, प्लेगके कारण, तीसरे दर्जेके मुसाफिरोकी जाच-पडताल होती थी। मुझे उस समय हल्का-सा बुखार था। जाच करनेवाले अफसरने मेरा हाथ देखा, तो उसे वह गरम मालूम हुआ, इसलिए उसने हुक्म दिया कि राजकोट जाकर डॉक्टरसे मिलो और मेरा नाम लिख दिया।

बम्बईसे शायद किसीने तार या चिट्ठी भेज दी होगी, इस कारण वढवाण स्टेशनपर दर्जी मोतीलाल, जो वहाके एक प्रसिद्ध प्रजा-सेवक माने जाते थे, मुझसे मिलने आये थे। उन्होने मुझसे वीरमगामकी जकातकी जाचका तथा उसके सम्बन्धमे होनेवाली तकलीफोका जिक्र किया। मुझे बुखार चढ रहा था, इसलिए बात करनेकी इच्छा कम ही थी। मैंने उन्हे थोडेमे ही पूछा, "आप जेल जानेके लिए तैयार है ?"

इस समय मैंने मोतीलालको वैसा ही युवक समझा, जो बिना विचारे उत्साहमे हा कर लेते है, परन्तु उन्होने बडी दृढताके साथ उत्तर दिया, "हा, जरूर जेल चले जायेंगे, पर आपको हमारा अगुआ बनना पडेगा। काठियावाडीकी हैसियतसे आपपर हमारा पहला हक है। अभी तो हम आपको नही रोक सकते, परन्तु वापस लौटते समय आपको वढवाण जरूर उतरना पडेगा। वहाके युवकोका काम और उत्साह देखकर आप खुश होगे। आप जब चाहें तब अपनी सेनामें हमे भरती कर सकेंगे।"

राजकोट पहुचते ही मै दूसरे दिन सुबह पूर्वोक्त हुक्मके अनुसार अस्पताल गया। वहा तो मै किसीके लिए अजनबी नही था। डॉक्टर मुझे देखकर शर्माये और उस जाच-कारकुनपर गुस्सा होने लगे। मुझे इसमें गुस्सेकी कोई वजह नही मालूम होती थी। उसने तो अपना फर्ज अदा किया था।

एक तो वह मुझे पहचानता नहीं था और दूसरे पहचाननेपर भी तो उसका फर्ज यही था कि जो हुक्म मिला, उसकी तामील करे, परन्तु मैं था मशहूर आदमी, इसलिए राजकोटमें मुझे जाच करनेके लिए जानेके एवजमें लोग घर आकर मेरी पूछ-ताछ करने लगे।

काठियावाड़में मै जहा-जहा गया, वहा-वहा वीरमगामकी जकातकी जाचसे होनेवाली तकलीफोंकी शिकायतें मैंने सुनी।

इसलिए लॉर्ड विलिंगडनने जो निमन्त्रण मुझे दे रखा था, उसका मैंने तुरन्त उपयोग किया। इस सबधमें जितने कागज-पत्र मिल सकते थे, सब मैंने पढे। मैंने देखा कि इन शिकायतोंमें बहुत तथ्य था। उसको दूर करनेके लिए बम्बई-सरकारसे लिखा-पढी की। उसके सेक्रेटरीसे मिला। लॉर्ड विलिंगडनसे भी मिला। उन्होंने सहानुभूति दिखायी, परन्तु कहा कि दिल्लीकी तरफसे ढील हो रही है। यदि यह बात हमारे हाथमें होती, तो हम कभीके इस जकातको उठा देते। आप भारत-सरकारके पास अपनी शिकायत ले जाइये।

मैंने भारत-सरकारके साथ लिखा-पढी शुरू की, परन्तु वहासे पहुंचके अलावा कुछ भी जवाब न मिला। जब मुझे लॉर्ड चेम्सफोर्डसे मिलनेका अवसर आया, तब—अर्थात् दो-तीन वर्षकी लिखा-पढीके बाद—सुनवाई हुई। लॉर्ड चेम्सफोर्डसे मैंने इसका जिक्र किया, तो उन्होंने इसपर आश्चर्य प्रकट किया। वीरमगामके मामलेका उन्हें कुछ पता न था। उन्होंने मेरी बातें गौरके साथ सुनीं और उसी समय टेलीफोन करके वीरमगामके कागज-पत्र मगाये और वचन दिया कि यदि इसके खिलाफ कर्मचारियोंको कुछ कहना न होगा, तो जकात रद्द कर दी जायगी। इस मुलाकातके थोड़े ही दिन बाद मैंने अखबारमें पढा कि जकात रद्द हो गयी।

इस जीतको मैंने सत्याग्रहकी बुनियाद माना, क्योंकि वीरमगामके सम्बन्धमें जब बातें हुईं, तब बम्बई-सरकारके सेक्रेटरीने मुझसे कहा था कि बगसरामें इस सम्बन्धमें आपका जो भाषण हुआ था, उसकी नकल मेरे पास है और मैंने जो सत्याग्रहका उल्लेख किया था, उसपर उन्होंने अपनी नाराजगी भी बतलायी। उन्होंने मुझसे पूछा—"आप इसे धमकी नहीं कहते? इस प्रकार बलवान् सरकार कहीं धमकीकी परवाह कर सकती है?"

मैंने जवाब दिया—"यह धमकी नहीं है। यह तो लोकमतको शिक्षित करनेका उपाय है। लोगोंको अपने कष्ट दूर करनेके लिए तमाम उचित उपाय बताना मुझ-जैसोंका धर्म है। जो प्रजा स्वतन्त्रता चाहती है, उसके पास अपनी रक्षाका अन्तिम इलाज अवश्य होना चाहिए। आमतौरपर ऐसे इलाज हिंसात्मक होते हैं, परन्तु सत्याग्रह शुद्ध अहिंसात्मक शस्त्र है।

उसका उपयोग और उसकी मर्यादा बताना मै अपना धर्म समझता हू । अग्रेज-सरकार बलवान् है, इस बातपर मुझे सन्देह नही, परन्तु सत्याग्रह सर्वोपरि शस्त्र है, इस विषयमें भी मुझे कोई सन्देह नही ।"

इसपर उस समझदार सेक्रेटरीने सिर हिलाया और कहा—"देखेंगे ।"

५१. शान्तिनिकेतनमें

राजकोटसे मै शान्तिनिकेतन गया । वहाके अध्यापको और विद्यार्थियोने मुझपर बडी प्रेम-वृष्टि की । स्वागतकी विधिमें सादगी, कला और प्रेमका सुन्दर मिश्रण था । वहा काकासाहब कालेलकरसे मेरी पहली बार मुलाकात हुई ।

शान्तिनिकेतनमें मेरे मण्डलको अलग स्थानमें ठहराया गया था । वहा मगनलाल गाधी उस मडलकी देख-माल कर रहे थे और फिनिक्स-आश्रमके तमाम नियमोंका बारीकीसे पालन कराते थे । मैंने देखा कि उन्होंने शान्तिनिकेतनमें अपने प्रेम, लगन और उद्योगशीलताके कारण अपनी सुगन्ध फैला रखी थी । एण्ड्रूज तो वहा थे ही, पियर्सन भी थे ।

अपने स्वभावके अनुसार मैं विद्यार्थियो और शिक्षकोंमें मिल-जुल गया और शारीरिक श्रम तथा कामके बारेमें चर्चा करने लगा । स्वय भोजन बनाने तथा बर्तन माजनेका प्रयोग भी वहा भोजनशालामें शुरू किया । बगाली भोजनमें कुछ सुधार करानेके इरादेसे एक छोटी-सी पाक-शाला भी अलग कर ली गयी थी ।

मेरा इरादा शान्तिनिकेतनमें कुछ दिन रहनेका था, पर विधाता मुझे जबरदस्ती वहासे घसीट ले गया । मैं मुश्किलसे वहा एक सप्ताह रहा होऊगा कि पूनासे गोखलेके अवसानका तार मिला । सारा शान्तिनिकेतन शोकमें डूब गया । सब लोग मातम-पुरसी करने मेरे पास आये । मैं उसी दिन पूना रवाना हुआ । साथमें पत्नी और मगनलालको लिया । बाकी सब शान्तिनिकेतनमें ही रहे ।

एण्ड्रूज बर्दवानतक मेरे साथ आये थे । उन्होंने मुझसे पूछा—"क्या आपको प्रतीत होता है कि हिन्दुस्तानमें सत्याग्रह करनेका समय आयेगा ? यदि हा, तो कब ?"

मैंने उत्तर दिया—"यह कहना कठिन है । अभी तो एक सालतक मैं कुछ करना नही चाहता । गोखलेने मुझसे वचन लिया है कि मैं एक सालतक भ्रमण करू । कभी भी सार्वजनिक प्रश्नपर विचार प्रकट न करू । मैं अक्षरश इस वचनका पालन करना चाहता हू । इसके बाद भी मैं तबतक कोई

बात न कहूंगा, जबतक किसी प्रश्नपर कुछ कहनेकी आवश्यकता न हो। इसलिए मैं नहीं समझता कि अगले ५ वर्षतक सत्याग्रह करनेका कोई सर आयेगा।"

यहां इतना कहना आवश्यक है कि 'हिन्द-स्वराज्य' में मैंने जो विचार प्रदर्शित किये हैं, गोखले उनपर हँसा करते और कहते थे—"एक वर्ष तुम हिन्दुस्तानमें रहकर देखोगे, तो तुम्हारे ये विचार अपने-आप ठण्डे पड़ जायगे।"

५२. तीसरे दर्जेकी मुसीबत

वर्दवान पहुंचकर हम तीसरे दर्जेका टिकट कटाना चाहते थे, पर टिकट लेनेमें बड़ी मुसीबत हुई। टिकट लेने पहुंचा, तो जवाब मिला—"तीसरे दर्जेके मुसाफिरके लिए पहलेसे टिकट नही दिया जाता।" तब मैं स्टेशन-मास्टरके पास गया। मुझे भला वहां कौन जाने देता? किसीने दया करके बताया कि स्टेशन-मास्टर वहां है। मैं पहुचा। उनके पाससे भी यही उत्तर मिला। जब खिडकी खुली, तब टिकट लेने गया, परन्तु टिकट मिलना आसान नही था। हट्टे-कट्टे मुसाफिर मुझ-जैसेको पीछे धकेलकर आगे घुस जाते। आखिर टिकट किसी तरह मिल ही गया।

गाडी आयी। उसमें भी जो जबरदस्त थे, वे घुस गये। उतरनेवाले और चढनेवालोंके सिर टकराने लगे और धक्का-मुक्की होने लगी इसमें भला मैं कैसे शरीक हो सकता था? इसलिए हम तीनों एक जगहसे दूसरी जगह जाते। सब जगहसे यही जवाब मिलता—"यहां जगह नही है।" तब मैं गार्डके पास गया। उसने जवाब दिया—"जगह मिले, तो बैठ जाओ नही तो दूसरी गाडीसे जाना।" मैंने नरमीसे उत्तर दिया—"पर मुझे जरूरी काम है।" गार्डको यह सुननेका वक्त नहीं था। अब मैं सब तरहसे हार गया। मगनलालसे कहा—"जहां जगह मिल जाय, बैठ जाओ।" और मैं पत्नीको लेकर तीसरे दर्जेके टिकटसे ही ड्योढे दर्जेमे घुसा। गार्डने मुझे उसमे जाते हुए देख लिया।

आसनसोल स्टेशनपर गार्ड ड्योढे दर्जेका किराया लेने आया। मैंने कहा—"आपका फर्ज था कि आप मुझे जगह बताते। वहां जगह न मिलनेसे मैं यहां बैठ गया। मुझे तीसरे दर्जेमे जगह दिलाइये, तो मैं वहां जानेको तैयार हूं।"

गार्डसाहब बोले—"मुझसे दलील न करो। मेरे पास जगह नहीं है किराया न दोगे, तो तुमको गाडीसे उतर जाना होगा।"

मुझे तो किसी तरह जल्दी पूना पहुचना था। गार्डसे लडनेके लिए मेरे पास समय नही था, न सुविधा ही थी। लाचार होकर मैंने किराया चुका दिया। उसने ठेठ पूनातकका ड्योढे दर्जेका किराया वसूल किया। मुझे यह अन्याय बहुत अखरा।

सुबह हम मुगलसराय पहुचे। मगनलालको तीसरे दर्जेमे जगह मिल गयी थी। वहाँ मैंने टिकट कलेक्टरको सब हाल सुनाया और इस घटनाका प्रमाण-पत्र मैंने उससे मागा। उसने इनकार कर दिया। मैंने रेलवेके बडे अफसरको अधिक भाडा वापस करनेकी दरख्वास्त दी। उसका उत्तर इस आशयका मिला—"प्रमाण-पत्रके बिना अधिक भाडेका रुपया लौटानेका नियम हमारे यहाँ नही है, परन्तु यह आपका मामला है, इसलिए आपको लौटा देते हैं। बर्दवानसे मुगलसरायतकका अधिक किराया वापस नही दिया जा सकता।"

इसके बाद तीसरे दर्जेके सफरके इतने अनुभव हुए कि उनकी एक पुस्तक बन सकती है, परन्तु प्रसगोपात्त उनका जिक्र करनेके अलावा इन अध्यायोमे उनका समावेश नही हो सकता। शरीर-प्रकृतिकी प्रतिकूलताके कारण मेरी तीसरे दर्जेकी यात्रा बन्द हो गयी।* यह बात मुझ सदा खटकती रहती है और खटकती रहेगी। तीसरे दर्जेके सफरमे कर्मचारियोकी 'जी-हुक्मी' की जिल्लत तो उठानी ही पडती है, परन्तु तीसरे दर्जेके यात्रियोकी जहालत, गदगी, स्वार्थ-भाव और अज्ञानका भी कम अनुभव नही होता। खेदकी बात तो यह है कि बहुत बार तो मुसाफिर जानते ही नही कि वे उद्दण्डता करते है या गन्दगी बढाते है या स्वार्थ साधते है। वे जो कुछ करते है, वह उन्हे स्वाभाविक मालूम होता है और इधर हम, जो सुधारक कहे जाते है, इनकी बिलकुल परवाह नही करते।

कल्याण जक्शनपर हम किसी तरह थके-मादे पहुचे। नहानेकी तैयारी की। मगनलाल और मैंने स्टेशनके नलसे पानी लेकर नहाया। पत्नीके लिए मै कुछ तजवीज कर रहा था कि इतनेमे भारत-सेवक-समितिके भाई कौलने हमको पहचाना। वह भी पूना जा रहे थे। उन्होंने मेरी पत्नीकी ओर इशारा करके कहा—"इनको तो नहानेके लिए दूसरे दर्जेके कमरेमे ले जाना चाहिए।"

उनके इस सौजन्यसे लाभ उठाते हुए मुझे सकोच हुआ। मै जानता था कि पत्नीको दूसरे दर्जेके कमरेका लाभ उठानेका अधिकार न था, परन्तु

---

* बादमें फिर गाधीजीने तीसरे दर्जेमें सफर शुरू कर दिया था, जो अन्त समयतक जारी रहा।

मैंने इस अनौचित्यकी ओरसे आखें मूद ली। सत्यके पुजारीको सत्यका इतना उल्लघन भी शोभा नही देता। पत्नीका आग्रह नही था कि वह उसमे जाकर नहाये, परन्तु पतिके मोहरूपी स्वर्ण-पात्रने सत्यको ढाप लिया था।

५३. मेरा प्रयत्न

पूना पहुचकर गोखलेकी उत्तर-क्रिया इत्यादिसे निवृत्त हो हम सब लोग इस बातपर विचार करने लगे कि समितिका काम कैसे चलाया जाय और मै उसका सदस्य बनू या नही। इस समय मुझपर बडा बोझ आ पडा था। गोखलेके जीते-जी मुझे समितिमे प्रवेश करनेकी आवश्यकता ही नही थी। मै तो सिर्फ गोखलेकी आज्ञा और इच्छाके अधीन रहना चाहता था। यह स्थिति मुझे पसन्द भी थी, क्योंकि भारतवर्ष-जैसे तूफानी समुद्रमे कूदते हुए मुझे एक दक्ष कर्णधारकी आवश्यकता थी और गोखले-जैसे कर्णधारके आश्रयमें मैं अपनेको सुरक्षित समझता था।

अब मेरा मन कहने लगा कि मुझे समितिमे प्रविष्ट होनेके लिए जरूर प्रयत्न करना चाहिए। मैंने सोचा कि गोखलेकी आत्मा यही चाहती होगी। मैंने बिना सकोचके दृढताके साथ प्रयत्न शुरू किया। इस समय समितिके सब सदस्य वहा मौजूद थे। मैंने उनको समझाने और मेरे सम्बन्धमे जो भय उन्हे था, उसको दूर करनेकी भरसक कोशिश की, पर मैंने देखा कि सदस्योंमे इस विषयपर मतभेद था। कुछ सदस्योंकी राय थी कि मुझे समितिमे ले लेना चाहिए और कुछ दृढतापूर्वक इसका विरोध करते थे, परन्तु दोनोंके मनमे मेरे प्रति प्रेम-भावकी कमी न थी। किन्तु हा, मेरे प्रति प्रेमकी अपेक्षा समितिके प्रति उनकी वफादारी शायद अधिक थी—मेरे प्रति प्रेमसे तो कम किसी हालतमे न थी।

इससे हमारी यह सारी बहस मीठी थी और केवल सिद्धान्तपर ही थी। जो मित्र मेरा विरोध कर रहे थे, उनका यह खयाल हुआ कि कई बातोंमे मेरे और उनके विचारोंमे जमीन-आसमानका अन्तर है। इससे भी आगे चलकर उनका यह खयाल हुआ कि जिन ध्येयोंको सामने रखकर गोखलेने समितिकी रचना की थी, मेरे समितिमे आ जानेसे उन्हीके जोखिममे पड जानेकी सम्भावना थी और यह बात उन्हें स्वाभाविक तौरपर ही असह्य मालूम हुई। बहुत-कुछ चर्चा हो जानेके बाद हम अपने-अपने घर गये। सदस्योंने अन्तिम निर्णय सभाकी दूसरी बैठकतक स्थगित रखा।

घर जाते हुए मैं बडे विचारके भवरमे पड गया। बहुमतके बलपर मेरा समितिमे दाखिल होना क्या उचित है? क्या गोखलेके प्रति यह

मेरी वफादारी होगी ? यदि बहुमत मेरे खिलाफ हो जाय, तो क्या इससे मै समितिकी स्थितिको विषम बनानेका निमित्त न बनूगा ? मुझे यह साफ दिखायी पडा कि जबतक समितिके सदस्योमे मुझे सदस्य बनानेके विषयमे मतभेद रहेगा, तबतक मुझे खुद ही उसमे दाखिल होनेका आग्रह छोड देना चाहिए और इस तरह विरोधी पक्षको नाजुक स्थितिमे पडनेसे बचा लेना चाहिए। इसीमे मुझे समिति और गोखलेके प्रति अपनी वफादारी दिखायी दी। अन्तरात्मामे यह निर्णय होते ही तुरन्त मैने शास्त्रीको पत्र लिखा कि आप मुझे सदस्य बनानेके लिए सभा न बुलायें। विरोधी पक्षको मेरा यह निश्चय बहुत पसन्द आया। वे धर्म-सकटसे बच गये। उनकी मेरे साथ स्नेह-गाठ अधिक मजबूत हो गयी, और इस तरह समितिमे दाखिल होनेकी अपनी दरख्वास्त वापस लेकर मै समितिका सच्चा सदस्य बना।

अब मै अनुभवसे देखता हू कि मेरा बाकायदा समितिका सदस्य न होना ठीक ही हुआ और सब सदस्योने मेरे सदस्य बननेका जो विरोध किया था, वह वास्तविक था। अनुभवने दिखला दिया है कि उनके और मेरे सिद्धान्तोमे भेद था, परन्तु मतभेद जान लेनेके बाद भी हम लोगोकी आत्मामे कभी अन्तर न पडा, न कभी मन-मुटाव ही हुआ। मतभेद रहते हुए भी हम बन्धु और मित्र बने हुए है। समितिका स्थान मेरे लिए यात्रा-स्थल हो गया। लौकिक दृष्टिसे भले ही मै उसका सदस्य न बना हू, पर आध्यात्मिक दृष्टिसे तो हू ही। लौकिक सम्बन्धकी अपेक्षा आध्यात्मिक सम्बन्ध अधिक कीमती है। आध्यात्मिक सम्बन्धसे हीन लौकिक सम्बन्ध प्राणहीन शरीरके समान है।

५४. आश्रमकी स्थापना

सत्याग्रह-आश्रमकी स्थापना २५ मई, सन् १९१५ ई० को हुई। स्वामी श्रद्धानन्दजीकी राय थी कि मै हरिद्वारमे बसू। कलकत्तेके कुछ मित्रोकी सलाह थी कि वैद्यनाथधाममे डेरा डालू और कुछ मित्र इस बातपर जोर दे रहे थे कि राजकोटमे रहू।

पर जब मै अहमदाबादसे गुजरा, तो बहुतेरे मित्रोने कहा कि आप अहमदाबादको चुनिये और आश्रमके खर्चका भार भी उन्होने अपने जिम्मे लिया। मकान खोजनेका भी आश्वासन दिया। इसलिए अहमदाबाद-पर मेरी नजर ठहर गयी। मै मानता था कि गुजराती होनेके कारण मै गुजराती भाषाके द्वारा देशकी अधिक-से-अधिक सेवा कर सकूगा। अहमदाबाद पहले हाथ-बुनाईका बडा भारी केन्द्र था, इससे चरखेका काम

यहां अच्छी तरह हो सकेगा और गुजरातका प्रधान नगर होनेके कारण यहांके धनाढ्य लोग धन द्वारा अधिक सहायता दे सकेंगे, यह भी खयाल था।

अहमदाबादके मित्रोंके साथ जब आश्रमके विषयमें बातचीत हुई, तो अस्पृश्योंके प्रश्नकी चर्चा भी उनसे हुई थी। मैंने साफ तौरपर कहा था—"यदि कोई योग्य अन्त्यज भाई आश्रममें प्रविष्ट होना चाहेंगे, तो मैं उन्हें अवश्य आश्रममें रखूंगा।"

"आपकी शर्तोंका पालन कर सकनेवाले अन्त्यज ऐसे कहां रास्तेमें पड़े हुए हैं?"—एक वैष्णव मित्रने ऐसा कहकर अपने मनको सन्तोष दे लिया और अन्तमें अहमदाबादमें बसनेका निश्चय हुआ।

अब हम मकानकी तलाश करने लगे। श्री जीवनलाल बैरिस्टरका मकान, जो कोचरबमें था, किरायेपर लेना तय हुआ। वही मुझे अहमदाबादमें बसानेवालोंमें अग्रणी थे।

इसके बाद आश्रमका नाम रखनेका प्रश्न खड़ा हुआ। मित्रोंसे मैंने मशविरा किया। सेवाश्रम, तपोवन इत्यादि नाम सुझाये गये। सेवाश्रम नाम हम लोगोंको पसंद आता था, परन्तु उससे सेवाकी पद्धतिका परिचय न होता था। तपोवन नाम तो भला कैसे स्वीकृत हो सकता था, क्योंकि यद्यपि तपश्चर्या हम लोगोंको प्रिय थी, फिर भी वह नाम हम लोगोंको अपने लिए भारी मालूम हुआ। हम लोगोंका उद्देश्य तो था सत्यकी पूजा, सत्यका शोध करना, उसीका आग्रह रखना और दक्षिण अफ्रीकामें जिस पद्धतिका उपयोग हम लोगोंने किया था, उसीका परिचय भारतवासियोंको कराना। हमें यह भी देखना था कि उसकी शक्ति और प्रभाव कहांतक व्यापक हो सकता है। इसलिए मैंने और साथियोंने 'सत्याग्रह-आश्रम' नाम पसन्द किया। उसमें सेवा और सेवा-पद्धति दोनोंका भाव अपने-आप आ जाता था।

आश्रमके संचालनके लिए नियमावलीकी आवश्यकता थी। इसलिए नियमावली बनाकर उसपर जगह-जगहसे राय मंगवायी गयी। बहुतेरी सम्मतियोंमें सर गुरुदास बनर्जीकी राय मुझे याद रह गयी है। उन्हें नियमावली पसन्द आयी, परन्तु उन्होंने सुझाया कि इन व्रतोंमें नम्रताके व्रतको भी स्थान मिलना चाहिए। उनके पत्रकी ध्वनि यह थी कि हमारे युवक-वर्गमें नम्रताकी कमी है। मैं भी जगह-जगह नम्रताके अभावको अनुभव कर रहा था, मगर व्रतमें स्थान देनेसे नम्रताके न रह जानेका आभास होता था। नम्रताका अर्थ तो है शून्यता। शून्यता प्राप्त करनेके लिए दूसरे व्रत हैं ही। शून्यता मोक्षकी स्थिति है। मुमुक्षु या सेवकके प्रत्येक कार्यमें यदि नम्रता—निरभिमानता न हो, तो वह मुमुक्षु नहीं, सेवक नहीं, वह स्वार्थी है, अहंकारी है।

आश्रममे इस समय लगभग तेरह तमिल लोग थे। मेरे साथ दक्षिण अफ्रीकासे पाच तमिल बालक आये थे तथा यहाके लगभग २५ पुरुष मिलकर आश्रमका आरभ हुआ था। सब एक भोजनालयमे भोजन करते थे और इस तरह रहनेका प्रयत्न करते थे, मानो सब एक ही कुटुम्बके हो।

५५. कसौटीपर

आश्रमकी स्थापनाको अभी कुछ ही महीने हुए थे कि इतनेमे हमारी एक ऐसी कसौटी हो गयी, जिसकी हमने आशा नही की थी। एक दिन मुझे भाई अमृतलाल ठक्करका पत्र मिला—"एक गरीब और ईमानदार अन्त्यज कुटुम्बकी इच्छा आपके आश्रममे आकर रहनेकी है। क्या आप उसे अपने यहा रख सकेंगे?"

चिट्ठी पढकर मैं चौका तो, क्योकि मैंने यह आशा न की थी कि ठक्कर बापा-जैसोकी सिफारिश लेकर कोई अन्त्यज कुटुम्ब इतनी जल्दी आ जायगा। मैंने साथियोको वह चिट्ठी दिखायी। उन लोगोने उसका स्वागत किया। हमने अमृतलाल भाईको चिट्ठी लिखी कि यदि यह कुटुम्ब आश्रमके नियमो-का पालन करनेके लिए तैयार हो, तो हम उसे लेनेके लिए तैयार है।

बस, दूधाभाई, उनकी पत्नी दानीबहन और दुधमुही लक्ष्मी आश्रममे आ गयी। दूधाभाई बम्बईमे शिक्षक थे। वह आश्रमके नियमोका पालन करनेके लिए तैयार थे। इसलिए वह आश्रममे ले लिये गये।

पर इससे सहायक मित्र-मण्डलमे बडी खलबली मची। जिस कुएमे बगलेके मालिकका भाग था, उसमेसे पानी भरनेमे दिक्कत होने लगी। चरस हाकनेवालेको भी यदि हमारे पानीके छीटे लग जाते, तो उसे छूत लगती। उसने हमे गालियां देनी शुरू की, दूधाभाईको भी वह सताने लगा। मैंने सबसे कह रखा था कि गालिया सह लेनी चाहिए और दृढतापूर्वक पानी भरते रहना चाहिए। हमको चुपचाप गालिया सुनता देखकर चरसवाला शर्मिन्दा हुआ और उसने हमारा पिण्ड छोड दिया, परन्तु इससे आर्थिक सहायता मिलनी बन्द हो गयी। जिन भाइयोमे पहलेसे ही अछूतोके प्रवेशपर भी, जो आश्रमके नियमोका पालन करते हो, शका खडी की थी, उन्हें तो यह आशा ही नही थी कि आश्रममे कोई अन्त्यज आ जायगा। इधर आर्थिक सहायता बन्द हुई, उधर हम लोगोके बहिष्कारकी अफवाह मेरे कानमे आने लगी। मैंने अपने साथियोके साथ यह विचार कर रखा था कि यदि हमारा बहि-ष्कार हो जाय और हमे कहीसे सहायता न मिले, तो भी हमे अहमदाबाद न छोडना चाहिए। हम अछूतोके मुहल्लोमे जाकर बस जायेंगे और जो कुछ मिल जायगा, उसपर अथवा मजदूरी करके गुजर कर लेंगे।

अन्तमें एक दिन मगनलालने मुझे एक नोटिस दी कि अगले महीने आश्रम-खर्चके लिए हमारे पास रुपये न रहेंगे। मैंने धीरजके साथ जवाब दिया—"तो हम लोग अछूतोंके मुहल्लोंमें रहने लगेंगे।"

मुझपर यह संकट पहली ही बार नहीं आया था, परन्तु हर बार आखिरमें जाकर भगवान्ने कहीं-न-कहींसे मदद भेज ही दी है।

मगनलालके इस नोटिसके थोड़े ही दिन बाद एक दिन सुबह किसी बालकने आकर खबर दी कि बाहर एक मोटर खड़ी है और एक सेठ आपको बुला रहे हैं। मैं मोटरके पास गया। सेठने मुझसे कहा—"मैं आश्रमको कुछ मदद देना चाहता हूं। आप लेंगे?" मैंने उत्तर दिया—"हां, आप दें, तो मैं जरूर ले लूंगा, और इस समय तो मुझे जरूरत भी है।"

"मैं कल इसी समय यहां आऊंगा, तो आप आश्रममें ही मिलेंगे न?" मैंने कहा—"हां!" और सेठ अपने घर चले गये। दूसरे दिन नियत समयपर मोटरका भोंपू बजा। बालकोंने मुझे खबर दी। वह सेठ अन्दर नहीं आये। मैं ही उनसे मिलनेके लिए गया। मेरे हाथमें तेरह हजार रुपयेके नोट रखकर वह विदा हो गये। इस मददकी मैंने बिलकुल आशा न की थी। मदद देनेका यह तरीका भी नया देखा। उन्होंने आश्रममें इससे पहले कभी पैर न रखा था। मुझे ऐसा याद पड़ता है कि मैं उनसे एक बार पहले भी मिला था। न तो वह आश्रमके अन्दर आये, न कुछ पूछा-ताछा। बाहरसे ही देकर चलते बने। इस तरहका यह पहला अनुभव मुझे था। इस मददसे अछूतोंके मुहल्लेमें जानेका विचार स्थगित रहा, क्योंकि लगभग एक वर्षके खर्चका रुपया मुझे मिल गया था।

परन्तु बाहरकी तरह आश्रमके अन्दर भी खलबली मची। यद्यपि दक्षिण अफ्रीकामें अछूत वगैरह मेरे यहां आते रहते और खाते थे, परन्तु यहां अछूत-कुटुम्बका आना और आकर रहना मेरी पत्नीको तथा दूसरी स्त्रियोंको पसन्द न हुआ। दानीबहनके प्रति उनका तिरस्कार तो नहीं, पर उदासीनता मेरी सूक्ष्म आंखें और तीक्ष्ण कान, जो ऐसे विषयमें खास तौरपर सतर्क रहते हैं, देखते और सुनते थे। आर्थिक सहायताके अभावसे न तो मैं भयभीत हुआ, न चिन्ताग्रस्त ही, परन्तु यह भीतरी क्षोभ कठिन था। दानीबहन मामूली स्त्री थीं। दूधाभाईकी पढ़ाई भी मामूली थी, पर वह ज्यादा समझदार थे। उनका धीरज मुझे पसन्द आया। कभी-कभी उन्हें गुस्सा आ जाता, परन्तु आमतौरपर उनकी सहनशीलताकी अच्छी ही छाप मुझपर पड़ी है। मैं दूधाभाईको समझाता कि छोटे-छोटे अपमानोंको हमें पी जाना चाहिए। वह समझ जाते और दानीबहनको भी सहन करनेकी प्रेरणा करते।

इस कुटम्बको आश्रममे रखकर आश्रमने बहुत सबक सीखे और आरम्भ कालमे ही यह बात साफ तौरसे स्पष्ट हो जानेसे कि आश्रममे अस्पृश्यताके लिए जगह नही है, आश्रमकी मर्यादा बध गयी तथा इस दिशामे उसका काम बहुत सरल हो गया। इतना होते हुए भी, आश्रमका खर्च बढते जाते हुए भी, ज्यादातर सहायता उन्ही हिन्दुओंकी तरफसे मिलती आ रही है, यह बात स्पष्ट रूपसे शायद इसी बातको सूचित करती है कि अस्पृश्यताकी जड अच्छी तरह हिल गयी है।

५६. गिरमिट-प्रथा

अब इस नये बसे हुए आश्रमको छोडकर, जो कि अब भीतरी और बाहरी तूफानोसे निकल चुका था गिरमिटकी प्रथा या कुली-प्रथापर थोडा-सा विचार कर लेनेका समय आ गया है। गिरमिटिया उसी कुली या मजदूर-को कहते है, जो पाच या उससे कम वर्षके लिए मजूरी करनेका लिखित इकरार करके भारतके बाहर चला गया है। नेटालके ऐसे गिरमिटियोपरसे तीन पौंडका वार्षिक कर १९१४ ई० मे उठा लिया गया था, परन्तु यह प्रथा अभी बद नही हुई थी। सन् १९१६ मे भारतभूषण पण्डित मालवीयजीने इस सवालको धारा-सभामे उठाया था और लॉर्ड हार्डिगने उनके प्रस्तावको स्वीकार करके यह घोषणा की थी कि यह प्रथा 'समय आते ही' उठा देनेका वचन मुझे सम्राट्की ओरसे मिला है, परन्तु मेरा तो यह स्पष्ट मत हुआ था कि इस प्रथाको तत्काल बन्द कर देनेका निर्णय हो जाना चाहिए। हिन्दुस्तान अपनी लापरवाहीसे इस प्रथाको बहुत वर्षोतक दर-गुजर करता रहा, पर अब मैने यह देखा कि लोगोमे इतनी जागृति आ गयी है कि अब यह बन्द की जा सकती है इसलिए मैं कितने ही नेताओसे इस विषयमे मिला, कुछ अखबारोमे इस सम्बन्धमे लिखा और मैने देखा कि लोकमत इस प्रथाका उच्छेद कर देनेके पक्षमे था। मेरे मनमे प्रश्न उठा कि क्या इसमे सत्याग्रहका कुछ उपयोग हो सकता है? मुझे उपयोगके विषयमे तो कुछ सन्देह नही था, परन्तु यह बात मुझे दिखायी नही पडती थी कि उप-योग किया कैसे जाय।

इस बीच वाइसरायने 'समय आनेपर' इन शब्दोका अर्थ भी स्पष्ट कर दिया। उन्होने प्रकट किया कि दूसरी व्यवस्था करनेमे जितना समय लगेगा, उतने समयमे यह प्रथा निर्मूल कर दी जायगी। इसपरसे फरवरी, १९१७ मे भारत-भूषण मालवीयजीने गिरमिट-प्रथाको कतई उठा देनेका कानून पेश करनेकी इजाजत बड़ी धारा-सभामे मागी, तो वाइसरायने उसे

नामजूर कर दिया। तब इस मामलेको लेकर मैंने हिन्दुस्तानमें भ्रमण शुरू किया।

भ्रमणका आरम्भ मैंने बम्बईसे किया। 'इम्पीरियल सिटिजनशिप एसोसिएशन' के नामपर सभा हुई। उसमें जो प्रस्ताव उपस्थित किये जानेवाले थे, उनका मसविदा बनानेके लिए एक समिति बनायी गयी। प्रस्तावमें यह प्रार्थना की गयी थी कि गिरमिट-प्रथा बन्द कर दी जाय। पर यह सवाल था कि कब बन्द की जाय ? इसके सम्बन्धमें तीन सूचनाएँ पेश हुईं–(१) 'जितनी जल्दी हो सके' (२) '३१ जुलाई' और (३) 'तुरन्त'। '३१ जुलाई' वाली सूचना मेरी थी। मुझे तो निश्चित तारीखकी जरूरत थी कि जिससे उस मीयादतक यदि कुछ न हो तो इस बातकी सूझ पड सके कि आगे क्या किया जाय और क्या किया जा सकता है। सर लल्लूभाईकी राय थी कि 'तुरन्त' शब्द रखा जाय। उन्होंने कहा कि '३१ जुलाई' से तो 'तुरन्त' शब्दमें अधिक जल्दीका भाव आता है। इसपर मैंने यह समझानेकी कोशिश की कि लोग 'तुरन्त' शब्दका तात्पर्य न समझ सकेंगे। लोगोसे यदि कुछ काम लेना हो तो उनके सामने निश्चयात्मक शब्द रखना चाहिए। 'तुरन्त' का अर्थ सब अपनी मर्जीके अनुसार कर सकते हैं। सरकार एक कर सकती है, लोग दूसरा कर सकते हैं, परन्तु '३१ जुलाई' का अर्थ सब एक ही करेंगे और उस तारीखतक यदि कोई और फैसला न हो तो हम यह विचार कर सकते हैं कि अब हमे क्या कार्रवाई करनी चाहिए। यह दलील डॉ० रीडको तुरन्त जच गयी। अन्तमें सर लल्लूभाईको भी '३१ जुलाई' रुची और प्रस्तावमें वही तारीख रखी गयी। सभामें यह प्रस्ताव रखा गया और सब जगह '३१ जुलाई' की मर्यादा घोषित हुई।

इस समय मैं अकेला ही सफर करता, इससे सफरमें अनोखे अनुभव प्राप्त होते थे। खुफिया पुलिस तो पीछे लगी ही रहती थी, पर इनके साथ झगडनेकी मुझे जरूरत नही थी। मेरे पास कुछ भी छिपी बात नही थी। इसलिए न वे मुझे सताते और न मैं उन्हें सताता था। सौभाग्यसे उस समय मुझपर 'महात्मा' की छाप नही लगी थी, हालाकि लोग जहाँ मुझे पहचान लेते, वहा इस नामका घोष होने लगता था। एक दफा रेलमें जाते हुए बहुत-से स्टेशनोपर खुफिया मेरा टिकट देखने आते और नम्बर वगैरह लेते। मैं तो, वे जो सवाल पूछते, उनका जवाब तुरन्त दे देता। इससे साथी मुसाफिरोंने समझा कि मैं सीधा-सादा साधु या फकीर हू। जब दो-चार स्टेशनोपर खुफिया आये तो वे मुसाफिर बिगडे और उस खुफियाको गाली देकर डाटने लगे, "इस बेचारे साधुको नाहक क्यों सताते हो ?" और मेरी तरफ देखकर कहने लगे, "इन बदमाशोको टिकट मत दिखाओ।"

मैंने शान्तिसे इन यात्रियोसे कहा, "उनको टिकट दिखानेसे मुझे कोई कष्ट नही होता। वे अपना फर्ज अदा करते है, इससे मुझे किसी तरहका दुख नही है।"

उन मुसाफिरोको यह बात जची नही। वे मुझपर अधिक तरस खाने लगे और आपसमे बातें करने लगे कि देखो, निरपराध लोगोको भी ये लोग कैसे हैरान करते है!

लाहौरसे लेकर दिल्लीतक मुझे रेलकी भीड और तकलीफका बहुत ही कटु अनुभव हुआ। कराचीसे लाहौर होकर मुझे कलकत्ता जाना था। लाहौरमे गाडी बदलनी पडती थी। यहा गाडीपर चढनेमे मेरी कही दाल नही गलती थी। मुसाफिर जबरदस्ती घुस पडते थे। दरवाजा बन्द होता तो खिडकीमेसे अन्दर घुस जाते थे। इधर मुझे नियत तिथिको कलकत्ता पहुचना जरूरी था। यदि यह ट्रेन छूट जाती तो मै कलकत्ता समयपर नही पहुच सकता था। मै जगह मिलनेकी आशा मनमे छोड रहा था। कोई मुझे अपने डिब्बेमे नही लेता था। आखिर मुझे जगह खोजता हुआ देखकर एक मजदूरने कहा, "मुझे बारह आने दो तो मै जगह दिला दू।" मैंने कहा, "जगह दिला दो तो मै जरूर बारह आने दूंगा।" बेचारा मजदूर मुसाफिरोके हाथ-पाव जोडने लगा, पर कोई मुझे जगह देनेको तैयार नही होता था। गाडी छूटनेको तैयार थी। इतनेमे एक डिब्बेके मुसाफिर बोले, "यहा जगह नही है। लेकिन इसके भीतर घुसा सकते हो तो घुसा दो। खडा रहना होगा।" मजदूरने मुझसे पूछा, "क्यो जी ?" मैंने कहा "हा, घुसा दो।" तब उसने मुझे उठाकर खिडकीमेसे अन्दर कर दिया। मै अन्दर घुसा और मजदूरने बारह आने कमाये।

मेरी यह रात बडी मुश्किलोसे बीती। दूसरे मुसाफिर तो किसी तरह ज्यो-त्यो करके बैठ गये, परन्तु मै ऊपरकी बैठककी जजीर पकडकर खडा ही रहा। बीच-बीचमे यात्री लोग मुझे डाटते जाते, "अरे, खडा क्यो है ? बैठ क्यो नही जाता ?" मैंने उन्हें बहुतेरा समझाया कि बैठनेकी जगह नही है, परन्तु उन्हें मेरा खडा रहना भी बरदाश्त नही होता था। हालाकि वे खुद ऊपरकी बैठकमे आरामसे पैर ताने पडे हुए थे, पर मुझे बार-बार दिक करते थे। ज्यो-ज्यो वे मुझे दिक करते, त्यो-त्यो मै उन्हे शान्तिसे जवाब देता। इससे वे कुछ शान्त हुए। मेरा नाम-ठाम पूछने लगे। जब मैंने अपना नाम बताया, तब वे बडे ही शर्मिन्दा हुए। मुझसे माफी मागने लगे और तुरन्त अपने पास जगह कर दी। 'सबरका फल मीठा होता है'—यह कहावत मुझे याद आयी। इस समय मै बहुत थक गया था। मेरा सिर घूम रहा था। जब बैठनेकी जगहकी सचमुच जरूरत थी, तब ईश्वरने उसकी सुविधा कर दी।

इस तरह धक्के खाता हुआ आखिर समयपर कलकत्ता पहुच गया। कासिम बाजारके महाराजाने अपने यहा ठहरनेका मुझे निमन्त्रण दे रखा था। कलकत्ताकी सभाके सभापति भी वही थे। कराचीकी तरह कलकत्ता-मे भी लोगोका उत्साह उमड रहा था, कुछ अग्रेज लोग भी आये थे।

अन्तमे ३१ जुलाईके पहले कुली-प्रथा बन्द होनेकी घोषणा सरकार द्वारा प्रकाशित हुई। १८९४ ई० मे इस प्रथाका विरोध करनेके लिए पहली दरख्वास्त मैंने बनायी थी और यह आशा रखी थी कि किसी दिन यह 'अर्द्ध-गुलामी' जरूर रद्द हो जायगी। १८९४ मे शुरू हुए इस कार्यमे यद्यपि बहुतेरे लोगोकी सहायता थी, परन्तु यह कहे बिना नही रहा जाता कि इस बार प्रयत्नके साथ 'शुद्ध सत्याग्रह' भी सम्मिलित था।

५७. नीलका दाग

चम्पारन राजा जनककी भूमि है। चम्पारनमे जैसे आमके वन है, उसी तरह, १९१७ मे, नीलके खेत थे। चम्पारनके किसान अपनी जमीनके $\frac{3}{20}$ हिस्सेमे जमीनके असली मालिकके लिए नीलकी खेती करनेपर कानूनन् बाध्य थे। इसे वहा 'तीनकठिया' कहते थे। २० कट्ठेका वहा एक एकड था और उसमेसे तीन कट्ठे नील बोना पडता था। इसलिए उस प्रथाका नाम था 'तीनकठिया';

मै यह कह देना चाहता हू कि चम्पारन जानेके पहले मै उसका नाम-निशानतक नही जानता था। यह खयाल भी प्राय नहीके बराबर था कि वहा नीलकी खेती होती है। नीलकी गोटिया देखी थी, परन्तु मुझे यह बिलकुल पता न था कि वे चम्पारनमे बनती थी और उनके लिए हजारो किसानोको दुःख उठाना पडता था।

राजकुमार शुक्ल नामके एक किसान चम्पारनमे रहते थे। उनपर नीलकी खेतीके सिलसिलेमे बडी बुरी बीती थी। वह दुःख उन्हें खल रहा था और उसीके फलस्वरूप सबके लिए इसमे नीलके दागको धो डालनेका उत्साह पैदा हुआ।

जब मै लखनऊ-कांग्रेसमे गया, तब इस किसानने मेरा पल्ला पकडा। "वकीलबाबू आपको सब हाल बतायेंगे",—यह कहते हुए चम्पारन चलनेका निमन्त्रण मुझे देते जाते थे।

वह वकीलबाबू और कोई नहीं, मेरे चम्पारनके प्रिय साथी, बिहारके सेवा-जीवनके प्राण, ब्रजकिशोरबाबू ही थे। उन्हें राजकुमार शुक्ल मेरे डेरेपर लाये। वह काले अल्पाकेका अचकन और पतलून वगैरह पहने हुए

थे। मेरे दिलपर उनकी कोई अच्छी छाप नही पडी। मैंने समझा कि इस भोले किसानको लूटनेवाले यह कोई वकीलसाहब ही होगे।

मैंने उनसे चम्पारनकी थोडी-सी कथा सुन ली और अपने रिवाजके मुताबिक जवाब दिया, 'जबतक मैं खुद जाकर सब हाल देख न लू, तबतक मैं कोई राय नही दे सकता। आप काग्रेसमे इस विषयपर बोलें, किन्तु मुझे तो अभी छोड ही दीजिये।" राजकुमार शुक्ल तो चाहते थे ही कि काग्रेसकी मदद मिले। चम्पारनके विषयमे काग्रेसमे ब्रजकिशोरबाबू बोले और सहानुभूतिका एक प्रस्ताव पास हुआ।

राजकुमार शुक्लको इससे खुशी हुई, परन्तु इतने हीसे उन्हें सन्तोष न हुआ। वह तो खुद चम्पारनके किसानोके दुख दिखाना चाहते थे। मैंने कहा, "मैं अपने भ्रमणमे चम्पारनको भी ले लूगा और एक-दो दिन वहाके लिए दे दूगा।" उन्होने कहा, "एक दिन काफी होगा, पर अपनी नजरोसे देखिये तो सही।"

लखनऊसे मैं कानपुर गया। वहा भी देखा तो राजकुमार शुक्ल मौजूद।

"यहासे चम्पारन बहुत नजदीक है। एक दिन दीजियेगा?"

"अभी तो मुझे माफ कीजिये, पर मैं यह वचन देता हू कि मैं आऊंगा जरूर", यह कहकर वहा जानेके लिए मैं और भी बध गया।

आश्रम पहुचा तो वहा भी राजकुमार शुक्ल मेरे पीछे-पीछे मौजूद।

मैंने कहा, "अच्छा, अमुक तारीखको मुझे कलकत्ता जाना है, वहा आकर मुझे ले जाना।"

कहा जाना, क्या करना, क्या देखना, मुझे इसका कुछ पता न था। कलकत्तामे भूपेनबाबूके यहा पहुचनेके पहले ही राजकुमार शुक्लका पडाव पड चुका था। अब तो इस अपढ, अनगढ परन्तु दृढ-निश्चयी किसानने मुझे जीत लिया।

१९१७ के आरम्भमे कलकत्तासे हम दोनो रवाना हुए। हम दोनोकी एक-सी जोडी, दोनो किसानसे दीखते थे। राजकुमार शुक्ल और मैं, हम दोनो एक ही गाडीमे बैठे। सुबह पटना उतरे।

पटनाकी मेरी यह पहली यात्रा थी। वहा मेरी किसीसे इतनी पहचान नही थी कि मैं कही ठहर सकू।

मैंने मनमे सोचा कि राजकुमार शुक्ल है तो अपढ किसान, परन्तु यहा उनका कुछ-न-कुछ जरिया जरूर होगा। ट्रेनमे उनका मुझे अधिक हाल मालूम हुआ। पटनेमे जाकर उनकी कलई खुल गयी। राजकुमार शुक्लका भाव तो निर्दोष था, परन्तु जिन वकीलोको उन्होने मित्र माना था, वे मित्र

न थे, बल्कि राजकुमार शुक्ल उनके आश्रित रहते थे। इस किसान मवक्किल और उन वकीलोंके बीच उतना ही अन्तर था, जितना कि बरसातमें गंगाजीका चौड़ा पाट हो जाता है।

वह मुझे राजेन्द्रबाबूके यहां ले गये। राजेन्द्रबाबू पुरी या कहीं और गये थे। बंगलेपर एक-दो नौकर थे। खानेके लिए कुछ तो मेरे साथ था, परन्तु मुझे खजूरकी जरूरत थी, सो बेचारे राजकुमार शुक्लने बाजारसे ला दी।

परन्तु बिहारमें छुआछूतका बड़ा सख्त रिवाज था। मेरे डोलके पानीके छींटेसे नौकरको छूत लगती थी। नौकर बेचारा क्या जानता कि मैं किस जातिका था! अन्दरके पाखानेका उपयोग करनेके लिए राजकुमारने कहा तो नौकरने बाहरके पाखानेकी तरफ अंगुली उठायी। मेरे लिए इसमें अचरजकी या रोषकी कोई बात न थी, क्योंकि ऐसे अनुभवोंसे मैं पक्का हो गया था। नौकर तो बेचारा अपने धर्मका पालन कर रहा था, और राजेन्द्रबाबूके प्रति अपना फर्ज अदा करता था। इन मजेदार अनुभवोंसे राजकुमार शुक्लके प्रति जहां एक ओर मेरा मान बढ़ा, वहां उनके सम्बन्धमें मेरा ज्ञान भी बढ़ा। अब पटनासे लगाम मैंने अपने हाथमें ले ली।

५८. बिहारकी सरलता

मौलाना मजरलहक और मैं एक साथ लन्दनमें पढ़ते थे। उसके बाद हम बम्बईमें १९१५ की कांग्रेसमें मिले थे, उस साल वह मुस्लिम-लीगके सभापति थे। उन्होंने पुरानी पहचान निकालकर जब कभी पटना जाऊं तो अपने यहां ठहरनेका निमन्त्रण दिया था। इस निमन्त्रणके आधारपर मैंने उन्हें चिट्ठी लिखी और अपने कामका भी परिचय दिया। वह तुरन्त अपनी मोटर लेकर आये और मुझे अपने यहां चलनेका इसरार करने लगे। इसके लिए मैंने उनको धन्यवाद दिया और कहा, "मुझे अपने गन्तव्य स्थानपर पहली ट्रेनसे रवाना कर दीजिये। रेलवे गाइडसे मुकामका मुझे कुछ पता नहीं लग सकता।" उन्होंने राजकुमार शुक्लके साथ बात की और कहा कि पहले मुजफ्फरपुर जाना चाहिए। उसी दिन शामको मुजफ्फरपुर गाड़ी जाती थी। उसमें उन्होंने मुझे रवाना कर दिया। मुजफ्फरपुरमें उस समय आचार्य कृपालानी रहते थे। उन्हें मैं पहचानता था। जब मैं हैदराबाद गया था, तब उनके महात्यागको, उनके जीवनको और उनके द्रव्यसे चलनेवाले आश्रमकी बात डॉक्टर चोइथरामसे सुनी थी। वह मुजफ्फरपुर-कॉलेजमें प्रोफेसर थे, पर उस समय वहांसे मुक्त हो गये थे। मैंने उन्हें तार

दिया। ट्रेन आधी रात मुजफ्फरपुर पहुची थी। वह अपने शिष्यमण्डल-को लेकर स्टेशनपर आ पहुचे। परन्तु उनके घर-बार कुछ नही था। वह अध्यापक मलकानीके यहाँ रहते थे। मुझे उनके यहा ले गये। मलकानी भी वहाके कॉलेजमे प्रोफेसर थे और उस जमानेमे सरकारी कॉलेजके प्रोफेसरका मुझे अपने यहा ठहराना एक असाधारण बात थी।

कृपालानीजीने बिहारकी, खासकर तिरहुत-विभागकी, दीन दशाका वर्णन किया और मुझे अपने कामकी कठिनाईका अन्दाज बताया। कृपा-लानीजीने बिहारियोंके साथ गाढा सम्बन्ध कर लिया था। उन्होंने मेरे कामकी बात वहाके लोगोसे कर रखी थी। सुबह होते ही कुछ वकील मेरे पास आये।

ब्रजकिशोरबाबू दरभगासे और राजेन्द्रबाबू पुरीसे आये। यहा जो मैंने देखा, तो यह लखनऊवाले ब्रजकिशोरप्रसाद नही थे। उनके अन्दर एक बिहारीकी नम्रता, सादगी, भलमनसी और असाधारण श्रद्धा देखकर मेरा हृदय हर्षसे फूल उठा। उनके प्रति बिहारी वकील-मण्डलका आदर-भाव देखकर आनन्द और आश्चर्य दोनो हुए।

तबसे इस वकील-मण्डलके और मेरे बीच जन्मभरके लिए स्नेह-गाठ बध गयी। ब्रजकिशोरबाबूने मुझे सब बातोसे वाकिफ कर दिया। वह गरीब किसानोकी तरफसे मुकदमे लडते थे। ऐसे मुकदमे उस समय भी चल रहे थे। ऐसा करके वह कुछ व्यक्तियोंको राहत दिलाते थे, पर कभी-कभी इसमे भी असफल हो जाते थे। इन भोले-भाले किसानोसे वह फीस लिया करते थे। त्यागी होते हुए भी ब्रजकिशोरबाबू या राजेन्द्रबाबू फीस लेनेमे सकोच न करते थे। "पेशेके काममे अगर फीस न ले तो हमारा घर-खर्च नहीं चल सकता और हम लोगोंकी मदद भी नही कर सकते।" यह उनकी दलील थी। उनकी तथा बगाल-बिहारके बैरिस्टरोकी फीसके कल्पनातीत अक सुनकर मैं चकित रह गया। " को हमने 'ओपीनियन' के लिए दस हजार रुपये दिये।" हजारोंके सिवा तो मैंने बात नही सुनी।

इस मित्र-मण्डलने इस विषयमे मेरा भी उलहना प्रेमके साथ सुना। उन्होंने उसका उलटा अर्थ नही लगाया।

मैंने कहा, "इन मुकदमोकी मिसले देखनेके बाद मेरी तो यह राय होती है कि हम यह मुकदमेबाजी अब छोड दें। ऐसे मुकदमोसे बहुत कम लाभ होता है। जहा प्रजा इतनी कुचली जाती है, जहा सब लोग इतने भय-भीत रहते हैं, वहा अदालतोंके द्वारा बहुत कम राहत मिल सकती है। इसका सच्चा इलाज तो है लोगोंके दिलसे डरको निकाल देना। इसलिए अब जबतक यह 'तीनकठिया' प्रथा मिट नहीं जाती, तबतक हम आरामसे

नही बैठ सकते । मैं तो अभी दो दिनमे जितना देख सकू, देखनेके लिए आया हू, परन्तु मैं देखता हू कि इस काममे दो वर्ष भी लग सकते है । परन्तु इतने समयकी भी जरूरत हो, तो मैं देनेके लिए तैयार हू । मुझे यह तो सूझ रहा है कि मुझे क्या करना चाहिए, परन्तु आपकी मददकी जरूरत है ।"

मैंने देखा कि व्रजकिशोरबाबू निश्चित विचारके आदमी है । उन्होंने शान्तिके साथ उत्तर दिया, "हमसे जो कुछ बन पडेगी वह मदद हम जरूर करेंगे ।"

"हम इतने लोग तो, आप जो काम सौंपेंगे, करनेके लिए तैयार रहेंगे । इनमेसे जितनोंको आप जिस समय चाहेंगे, आपके पास हाजिर रहेंगे । जेल जानेकी बात अलबत्ता हमारे लिए नयी है, पर उसकी भी हिम्मत करनेको हम कोशिश करेंगे ।"

५९. अहिंसा-देवीका साक्षात्कार

मुझे तो किसानोंकी जाच करनी थी । यह देखना था कि नीलके मालिकोंकी जो शिकायत किसानोंकी थी, उसमे कितनी सचाई है । इसमे हजारो किसानोंसे मिलनेकी जरूरत थी, परन्तु इस तरह आमतौरपर उनसे मिलने-जुलनेके पहले, निलहे मालिकोंकी बात सुन लेने और कमिश्नरसे मिलनेकी आवश्यकता मुझे दिखायी दी । मैंने दोनोंको चिट्ठी लिखी ।

मालिकोंके मण्डलके मन्त्रीसे मिला तो उन्होंने मुझसे साफ कह दिया, "आप तो बाहरी आदमी है । आपको हमारे और किसानोंके झगडोंमें न पडना चाहिए । फिर भी यदि आपको कुछ कहना हो, तो लिखकर भेज दीजियेगा ।" मैंने मन्त्रीसे सौजन्यके साथ कहा, "मैं अपनेको बाहरी आदमी नही समझता और किसान यदि चाहते हो तो उनकी स्थितिकी जाच करनेका मुझे पूरा अधिकार है ।" कमिश्नरसाहबसे मिला, तो उन्होंने मुझे धमकानेसे शुरुआत की और आगे कोई कार्रवाई न कर मुझे तिरहुत छोडनेकी सलाह दी ।

मैंने साथियोंसे सब बातें करके कहा कि सम्भव है, सरकार जाच करनेसे मुझे रोके और जेल-यात्राका समय शायद मेरे अन्दाजसे पहले ही आ जाय । यदि पकडे जानेका ही मौका आये, तो मुझे मोतीहारी, और हो सके तो बेतियामे गिरफ्तार होना चाहिए । इसलिए जितनी जल्दी हो सके, मुझे वहा पहुच जाना चाहिए ।

हम आधे रास्ते ही पहुचे होंगे कि पुलिस-सुपरिण्टेण्डेण्टका सिपाही आ पहुचा और उसने मुझसे कहा, "सुपरिण्टेण्डेण्टसाहबने आपको सलाम भेजा है ।" मैं उसका मतलब समझ गया । धरणीधर बाबूसे मैंने कहा,

"आप आगे चलिये" और मै उस जासूसके साथ गाडीमे बैठा, जो वह किराये-पर लाया था। उसने मुझे चम्पारन छोड देनेकी नोटिस दी। घर ले जाकर उसने उसपर मेरे दस्तखत मागे। मैने जवाब लिख दिया—"चम्पारन छोडना नही चाहता। आज मुफस्सिलमे जाकर जाच करनी है।" इस हुक्मका अनादर करनेके अपराधमे दूसरे दिन मुझे अदालतमे हाजिर होनेका सम्मन मिला।

सारी रात जागकर मैने जगह-जगह चिट्ठिया लिखी और जो-जो आवश्यक बाते थी, उन्हें ब्रजकिशोरबाबूको समझा दिया।

साथियोके साथ कुछ सलाह करके मैने यह निश्चय किया था कि काग्रेसके नामपर कुछ भी काम यहा न किया जाय। नामसे नही, बल्कि हमको कामसे मतलब है। कथनीकी नही, करनीकी जरूरत है। काग्रेसका नाम यहा लोगोको खलता है। इसलिए काग्रेसकी तरफसे किसी छिपे या प्रकट दूतोद्वारा कोई जमीन तैयार नही करायी गयी थी, कोई पेशबन्दी नही की गयी थी। राजकुमार शुक्लमे हजारोके बीच प्रवेश करनेका सामर्थ्य न था। वहा लोगोंके अन्दर किसीने भी आजतक कोई राजनैनिक काम नही किया था। चम्पारनके सिवा बाहरकी दुनियाको वे जानते ही न थे। फिर भी उनका और मेरा मिलाप किसी पुराने मित्रके मिलाप-सा था। अतएव यह कहनेमे मुझे कोई अत्युक्ति नही मालूम होती, बल्कि यह अक्षरश सत्य है कि मैने वहा ईश्वरका, अहिंसाका और सत्यका साक्षात्कार किया। जब साक्षात्कार-विषयक अपने इस अधिकारपर विचार करता हू तो मुझे उसमे प्रेमके सिवा और कोई बात नही दिखायी पडती और यह प्रेम अथवा अहिंसाके प्रति मेरी अचल श्रद्धाके सिवा और कुछ नही है।

चम्पारनका यह दिन मेरे जीवनमे ऐसा था, जिसे मै कभी नही भूल सकता। यह मेरे नया किसानोके लिए उत्सवका दिन था। मुझपर सरकारी कानूनके मुताबिक मुकदमा चलाया जानेवाला था, परन्तु सच पूछा जाय तो मुकदमा सरकारपर चल रहा था। कमिश्नरने जो जाल मेरे लिए फैलाया था, उसमे उसने सरकारको ही फसा लिया था।

मुकदमा चला। सरकारी वकील, मैजिस्ट्रेट वगैरह चिन्तित हो रहे थे। उन्हें सूझ नही पडता था कि क्या करें। सरकारी वकील तारीख बढानेकी कोशिश कर रहा था। मैं बीचमे पडा और मैने अर्ज की, "तारीख बढानेकी कोई जरूरत नही है, क्योंकि मैं अपना यह अपराध कबूल करना चाहता हू कि मैंने चम्पारन छोडनेकी नोटिसका अनादर किया है।" यह कहकर मैंने जो अपना छोटा-सा वक्तव्य तैयार किया था, वह पढ सुनाया। वह इस प्रकार था :

"अदालतकी आज्ञा लेकर मैं सक्षेपमे यह बतलाना चाहता हू कि नोटिस द्वारा मुझे जो 'आज्ञा' दी गयी है, उसकी अवज्ञा मैंने क्यो की। मेरी समझमे यह स्थानीय अधिकारियो और मेरे बीच मतभेदका प्रश्न है। मैं इस प्रदेश-मे राष्ट्रीय तथा मानव-सेवा करनेके विचारसे आया हू। यहा आकर उन रैयतोकी सहायता करनेके लिए मुझसे बहुत आग्रह किया गया था, जिनके साथ, कहा जाता है कि निलहेसाहब अच्छा व्यवहार नही करते, पर जबतक मैं सब बाते अच्छी तरह जान न लेता, तबतक उन लोगोको कोई सहायता नही कर सकता था। इसलिए यदि हो सके तो अधिकारियो और निलहे-साहबोकी सहायतासे मैं सब बातें जाननेके लिए आया हू। मैं किसी दूसरे उद्देश्यसे यहा नही आया हूँ। मुझे यह विश्वास नही होता कि मेरे यहा आनेसे किसी प्रकार शान्ति-भग या प्राणहानि हो सकती है। मैं कह सकता हू कि मुझे ऐसी बातोका बहुत अनुभव है। अधिकारियोको जो कठिनाइया होती हैं, उनको मैं समझता हू, और मैं यह भी मानता हू कि उन्हें जो सूचना मिलती है, वे केवल उसीके अनुसार काम कर सकते है। कानून माननेवाले व्यक्तिकी तरह मेरी प्रवृत्ति यही होनी चाहिए थी और ऐसी प्रवृत्ति हुई भी कि मैं इस आज्ञाका पालन करू, पर मैं उन लोगोके प्रति, जिनके लिए मैं यहा आया हू, अपने कर्तव्यका उल्लघन नही कर सकता था। मैं समझता हू कि मैं उन लोगोके बीच रहकर ही उनकी भलाई कर सकता हू। इस कारण मैं स्वेच्छासे इस स्थानसे नही जा सकता था। दो कर्तव्योके परस्पर विरोधकी दशामे मैं केवल यही कर सकता था कि अपनेको हटानेकी सारी जिम्मेदारी शासकोपर छोड दू। मैं भलीभाति जानता हू कि भारतके सार्वजनिक जीवनमे मेरी-जैसी स्थितिवाले लोगोको आदर्श उपस्थित करनेमे बहुत ही सचेत रहना पडता है। मेरा दृढ विश्वास है कि जिस स्थितिमे मैं हू, उस स्थितिमे प्रत्येक प्रतिष्ठित व्यक्तिको वही काम करना सबसे अच्छा है, जो इस समय मैंने करना निश्चित किया है और वह यह है कि बिना किसी प्रकारका विरोध किये सरकारी आज्ञा न माननेका दण्ड सहनेके लिए तैयार हो जाऊ। मैंने जो बयान दिया है, वह इसलिए नही कि जो दण्ड मुझे मिलनेवाला है, वह कम किया जाय, बल्कि इस बातको दिखलानेके लिए कि मैंने सरकारी आज्ञाकी अवज्ञा इस कारण नही की कि मुझे सरकारके प्रति विश्वास नही है, बल्कि इस कारणसे कि मैंने उससे भी उच्चतर आज्ञा—अपनी विवेक-बुद्धिकी आज्ञा—का पालन करना उचित समझा है।"

अब मुकदमेकी सुनवाई मुल्तवी रखनेका तो कुछ कारण ही नही रह गया था, परन्तु मैजिस्ट्रेट या सरकारी वकील इस परिणामकी आशा नही रखते थे। अतएव सजाके लिए अदालतने फैसला मुल्तवी रखा। मैंने

वाइसरायको तार द्वारा सारी हालतकी सूचना दे दी थी, पटना भी तार दे दिया था। भारतभूषण पण्डित मालवीयजी वगैरहको भी तार द्वारा समाचार भेज दिया था। अब सजा सुननेके लिए अदालतमे जानेका समय आनेके पहले ही मुझे मैजिस्ट्रेटका हुक्म मिला कि लाटसाहबके हुक्मसे मुकदमा उठा लिया गया है और कलक्टरकी चिट्ठी मिली कि आप जो कुछ जाच करना चाहे, शौकसे करें और उसमे जो कुछ मदद सरकारी कर्मचारियोकी लेना चाहें, लें। ऐसे तत्काल और शुभ परिणामकी आशा हममेसे किसीको नही थी।

६०. कार्य-पद्धति

चम्पारनकी जाचका विवरण देना मानो चम्पारनमें किसानोका इतिहास देना है। यह सारा इतिहास इन अध्यायोमे नही दिया जा सकता।* फिर चम्पारनकी जाच क्या थी, अहिंसा और सत्यका बडा प्रयोग ही था।

सार्वजनिक कामके लिए लोगोसे रुपया मागनेकी प्रथा आजतक न थी। ब्रजकिशोरबाबूका यह मण्डल मुख्यत वकील-मण्डल था। इसलिए जब कभी आवश्यकता होती तो या तो वह अपनी जेबसे रुपया देते या कुछ मित्रोसे माग लेते। उनका खयाल यह था कि जो लोग खुद रुपये-पैसेसे सुखी है, वे सर्वसाधारणसे धनकी भिक्षा कैसे माग सकते है? और मेरा यह दृढ निश्चय था कि चम्पारनकी रैयतसे एक कौडी न लेनी चाहिए। यदि ऐसा करते तो उसका उलटा अर्थ होता। यह भी निश्चय था कि इस जाचके लिए भारतवर्षमे भी आम लोगोंसे चन्दा न करना चाहिए। ऐसा करनेसे इस जाचको राष्ट्रीय और राजनैतिक स्वरूप प्राप्त हो जाता। बम्बईके मित्रोंने १५०००) सहायता भेजनेका तार दिया, मगर गरीबीके साथ भरसक कम खर्च करके यह आन्दोलन चलाना था। इसलिए बहुत रुपयेकी तो आवश्यकता भी नही थी और दरहकीकत जरूरत पडी भी नही। मेरा खयाल है कि सब मिलाकर दो-तीन हजारसे ज्यादा खर्च न हुआ होगा। और मुझे याद है, जितना रुपया इकट्ठा किया था, उसमेंसे भी पाच सौ या हजार बच गया था।

शुरूमे वहा हमारी रहन-सहन बडी विचित्र थी। मेरे लिए तो वह रोज हंसी-मजाकका विषय हो गया था। इस वकील-मण्डलमे हरएकके

---

* अधिक विवरण जाननेके लिए डॉ० राजेन्द्रप्रसाद-लिखित 'चम्पारनमें महात्मा गांधी' नामक पुस्तक देखिये। —सम्पादक

पास एक नौकर रसोइया होता, हरएककी अलग रसोई बनती। रातके बारह बजेतक भी वे लोग खाना खाते। वे लोग खर्च वगैरह तो सब अपना ही करते थे, फिर भी मेरे लिए यह रहन-सहन एक आफत थी। अपने इन साथियोंके साथ मेरी स्नेह-गांठ ऐसी मजबूत हो गयी थी कि हमारे दरमियान कभी गलतफहमी न होने पाती थी। मेरे शब्द-बाणोंको वे प्रेमसे झेलते। अन्तमें यह तय पाया कि नौकरोंको छुट्टी दे दी जाय, सब एक साथ खाना खायें और भोजनके नियमोंका पालन करें। उसमें सभी निरामिषाहारी न थे। और तरह-तरहकी अलग-अलग रसोई बनानेका इन्तजाम करनेसे खर्च बढ़ता था। इससे यही निश्चय किया गया कि निरामिष भोजन ही पकाया जाय और एक ही जगह सबकी रसोई बनायी जाय। भोजन भी सादा ही रखनेपर जोर दिया जाता था। इनसे खर्च बहुत कम पड़ा, हम लोगोंके काम करनेकी सामर्थ्य बढ़ी और समय बच गया।

हमें अधिक शक्तिकी आवश्यकता भी थी, क्योंकि किसानोंके झुण्ड-के-झुण्ड अपनी कहानी लिखानेके लिए आने लगे थे। कहानी-लेखक हमेशा पांच-सात रहते थे। फिर भी शामतक सबके बयान पूरे न हो पाते थे। कहानी-लेखकोंको कुछ नियम पालन करने पड़ते थे। वे ये थे—"प्रत्येक किसानसे जिरह करनी चाहिए। जिरहमें जो गिर जाय, उसका बयान न लिखा जाय। जो बात शुरूसे ही कमजोर पायी जाय, वह न लिखी जाय।" इन नियमोंके पालनसे यद्यपि कुछ समय अधिक जाता था, फिर भी उनसे सच्चे और साबित होने लायक बयान ही लिखे जाते थे।

जब ये बयान लिखे जाते तो खुफिया पुलिसके कोई-न-कोई कर्मचारी वहां मौजूद रहते। इन कर्मचारियोंको हम रोक सकते थे; परन्तु हमने शुरूमें यह निश्चय किया था कि उन्हें न रोका जाय। यही नहीं, बल्कि उनके प्रति सौजन्य रखा जाय और जो खबरें उन्हें दी जा सकती हों, दी जाय जो बयान लिखे जाते, उनको वे देखते और सुनते थे। इससे लाभ यह हुआ कि लोगोंमें अधिक निर्भयता आ गयी। और बयान उनके सामने लिखे जानेमें अत्युक्तिका भय कम रहता था। इस डरसे कि झूठ बोलेंगे तो पुलिस वाले फंसा देंगे, उन्हें सोच-समझकर बोलना पड़ता था।

मैं निलहे मालिकोंको चिढ़ाना नहीं चाहता था; बल्कि अपने सौजन्यसे उन्हें जीतनेका प्रयत्न करता था। इसलिए जिनके बारेमें विशेष शिकायतें होतीं, उन्हें मैं चिट्ठी लिखता और मिलनेकी कोशिश भी करता। उनके मण्डलसे भी मैं मिलता और रैयतकी शिकायतें उनके सामने पेश की थीं और उनका कहना भी सुन लिया था। उनमेंसे कितने ही तो मेरा तिरस्कार करते थे, कितने ही उदासीन थे और कोई-कोई सौजन्य भी दिखाते थे।

एक तरफ तो समाज-सेवाके काम चल रहे थे और दूसरी ओर लोगोंके दु खकी कथाए लिखते रहनका काम दिन-दिन वढ रहा था। जव हजारो लोगोकी कहानिया लिखी गयी तो भला इसका असर हुए विना कैसे रह सकता था ? मेरे मुकामपर लोगोकी ज्यो-ज्यो आमदरफ्त वढती गयी, त्यो-त्यो निलहेसाहवोका क्रोध भी वढता गया। मेरी जाच वन्द करानेकी उनकी कोशिशें उनकी ओरसे दिन-दिन अधिकाधिक होने लगी। एक दिन मुझे विहार-सरकारका पत्र मिला, जिसका भावार्थ यह था—"आपकी जाचमें काफी दिन लग गये हैं। आपको अव अपना काम खतम करके विहार छोड देना चाहिए।" पत्र यद्यपि सौजन्यसे युक्त था, परन्तु उसका अर्थ स्पष्ट था। मैंने लिखा, "जाचमें तो अभी और दिन लगेंगे और जाचके वाद भी जवतक लोगोका दु ख दूर न होगा, इरादा विहार छोडनेका नही है।"

मेरी जाच वन्द करनेका एक ही अच्छा इलाज सरकारके पास था। लोगोकी शिकायतोको सच मानकर उन्हें दूर करना अथवा उनकी शिकायतो-पर ध्यान देकर अपनी तरफसे एक जाच-समिति नियुक्त कर देना। गवर्नर सर एडवर्ड गेटने मुझे वुलाया और कहा कि मैं जाच-समिति नियुक्त करनेके लिए तैयार हू, और उसका सदस्य वननेके लिए मुझे निमन्त्रण दिया। दूसरे सदस्योके नाम देखकर और अपने साथियोसे सलाह करके इस शर्तपर मैंने सदस्य होना स्वीकार किया कि मुझे अपने साथियोके साथ सलाह-मशविरा करनेकी छुट्टी रहनी चाहिए और सरकारको समझ लेना चाहिए कि सदस्य वन जानेसे किसानोका हिमायती रहनेका मेरा अधिकार नही जाता रहेगा एव जाच होनेके वाद यदि मुझे सन्तोष न हो तो किसानोकी रह-नुमाई करनेकी मेरी स्वतन्त्रता जाती न रहेगी।

सर एडवर्ड गेटने इन शर्तोको वाछित समझकर मजूर किया। स्वर्गीय सर फ्रैंक स्लाई उसके अध्यक्ष वनाये गये। जाच-समितिने किसानोकी तमाम शिकायतोको सच्चा वताया और यह सिफारिश की कि निलहे लोग अनुचित रीतिसे प्राप्त किये रुपयोका कुछ भाग वापस कर दे और 'तीनकठिया' का कायदा रद्द कर दिया जाय।

इस रिपोर्टके सागोपाग होनेमें सर एडवर्ड गेटका वडा हाथ था। वह यदि मजवूत न रहे होते और पूरी-पूरी कुशलतासे काम न लिया होता, तो जो रिपोर्ट एकमतसे लिखी गयी, वह नही लिखी जा सकती और अन्तमें जो कानून वना, वह न वन पाता। निलहोकी सत्ता वहुत प्रवल थी। रिपोर्ट पास हो जानेके वाद भी कितनो ही ने विलका घोर विरोध किया था, परन्तु सर एडवर्ड गेट अन्ततक दृढ रहे और समितिकी तमाम सिफारिशोका पूरा-पूरा पालन उन्होने कराया।

इस तरह सौ वर्ष पुराना यह तीनकठिया कानून रद्द हुआ और उसके साथ-ही-साथ निलहोंका राज्य भी अस्त हो गया। रैयतने, जो दवी हुई थी, अपने वलको कुछ पहचाना और उसका यह वहम दूर हो गया कि नीलका दाग तो धोये नही धुलता।

६१. मजदूरोंसे सम्बन्ध

चम्पारन जाच-समितिके कामसे जरा फुरसत मिली ही थी कि अहमदावादसे श्रीमती अनसूयावहनकी चिट्ठी उनके 'मजदूर-सघ' के सम्बन्धमें मिली। मजदूरोंका वेतन कम था। वहुत दिनोसे उनकी माग थी कि वेतन वढाया जाय। इस सम्वन्धमें उनका पथ-प्रदर्शन करनेका उत्साह मुझे था। यह काम यो तो छोटा-सा था, परन्तु मैं उसे दूर वैठकर नही कर सकता था। इससे मैं तुरन्त अहमदावाद पहुचा।

इसमे मेरी स्थिति वडी नाजुक थी। मजदूरोंका पक्ष मुझे मजवूत मालूम हुआ। श्रीमती अनसूयावहनको अपने सगे भाईके साथ लडनेका प्रसग आ गया था। मजदूरो और मालिकोंके इस दारुण युद्धमें श्री अम्वालाल साराभाईने मुख्य भाग लिया था। मिल-मालिकोंके साथ मेरा मधुर सम्वन्ध था। उनके साथ लडना मेरे लिए विपम काम था। मैंने उनसे आपसमें वातचीत करके अनुरोध किया कि पच वनाकर मजदूरोकी मागका फैसला कर लीजिये, परन्तु मालिकोने अपने और मजदूरोंके वीचमें पचकी मध्यस्थताको पसन्द न किया।

तव मजदूरोको मैंने हडताल कर देनेकी सलाह दी। यह सलाह देनेके पहले मैंने मजदूरो और उनके नेताओंसे काफी पहचान और वातचीत कर ली थी। उन्हें मैंने हडतालकी नीचे लिखी शर्तें समझायी

१ किसी हालतमें शान्ति भग न करना।
२ जो कामपर जाना चाहें, उनके साथ किसी किस्मकी ज्यादती या जवरदस्ती न करना।
३ मजदूर भिक्षान्न न खायें।
४ हडताल चाहे जवतक करनी पडे, वे दृढ रहें और जव रुपया न रहे, तो दूसरी मजदूरी करके पेट पालें।

अगुआ लोग इन शर्तोंको समझ गये और उन्हें ये पसन्द भी आयी। अव मजदूरोंने एक आमसभा की और उसमें प्रस्ताव पास किया कि जवतक हमारी माग स्वीकार न की जाय अथवा उसपर विचार करनेके लिए पच मुकर्रर न हो, तवतक हम कामपर न जायगे।

इस हडतालमे मेरा परिचय श्री वल्लभभाई और श्री शकरलाल बैंकरसे बहुत अच्छी तरह हो गया। श्रीमती अनसूयावहनसे तो मेरा परिचय पहले ही खूब हो चुका था।

हडतालियोकी सभा रोज साबरमतीके किनारे एक पेडके नीचे होने लगी। वे सैकडोकी सख्यामें आते। मैं रोज उन्हे अपनी प्रतिज्ञाका स्मरण कराता, शान्ति रखने और स्व-मानकी रक्षा करनेकी आवश्यकता उन्हे समझाता था। वे अपना 'एक टेक' का झण्डा लेकर रोज शहरमें जुलूस निकालते और सभामे आते।

यह हडताल इक्कीस दिनोतक चली। इस बीच मैं समय-समयपर मालिकोसे बातचीत करता और उन्हें इन्साफ करनेके लिए समझाता। "हमे भी तो अपनी टेक रखनी है। हमारा और मजदूरोका बाप-बेटोका सम्बन्ध है—उसके बीचमें यदि कोई पडना चाहे, तो इसे हम कैसे सहन कर सकते हैं? बाप-बेटोमें पचकी क्या जरूरत है?" यह जवाब मुझे मिलता।

मजदूरोने पहले दो हफ्ते बडी हिम्मत दिखलायी। शान्ति भी खूब रखी। रोजकी सभाओमें भी वे बडी सख्यामें आते थे। मै उन्हें रोज ही प्रतिज्ञाका स्मरण कराता। वे रोज पुकार-पुकारकर कहते—"हम मर जायगे, पर अपनी टेक कभी न छोडेंगे।"

किन्तु अन्तमें वे ढीले पडने लगे। और जैसे कि निर्बल आदमी हिंसक होता है, वैसे ही, निर्बल पडते ही मिलमें जानेवाले मजदूरोसे द्वेष करने लगे और मुझे डर लगा कि शायद कही उनपर ये बलात्कार न कर बैठें। रोजकी सभामें आदमियोकी हाजिरी कम होने लगी। जो आते भी, उनके चेहरोपर उदासी छायी रहती थी। मुझे खबर मिली कि मजदूर बिग-डन लगे हैं। मैं तरद्दुदमे पडा। सोचने लगा, ऐसे समयमें मेरा क्या कर्तव्य हो सकता है। दक्षिण अफ्रीकाके मजदूरोकी हडतालका अनुभव मुझे था, मगर यह अनुभव मेरे लिए नया था। जिस प्रतिज्ञाके करानेमे मेरी प्रेरणा थी, जिसका साक्षी मैं रोज ही बनता था, वह प्रतिज्ञा कैसे टूटे? यह विचार अभिमान कहा जायगा या मजदूरोके और सत्यके प्रति प्रेम समझा जायगा?

सवेरेका समय था। मैं सभामें था। मुझे कुछ पता नही था कि क्या करना है, मगर सभामें ही मेरे मुहसे निकल गया—"अगर मजदूर फिरसे तैयार न हो जाय और जबतक कोई फैसला न हो जाय, जबतक हडताल न निभा सकें, तो मैं तबतक उपवास करूगा।" वहापर जो मजदूर थे, वे हैरतमें आ गये। अनसूयाबहनकी आखोसे आसू निकल पडे। मजदूर बोल उठे—"आप नही, हम उपवास करेंगे। आपको उपवास नही करने देंगे। हमें माफ कीजिये। हम अपनी प्रतिज्ञा पालेंगे।"

मैंने कहा—"तुम्हारे उपवास करनेकी कोई जरूरत नहीं है। तुम अपनी प्रतिज्ञाका ही पालन करो, तो बस है। हमारे पास द्रव्य नहीं है। मजदूरोंको भिक्षान्न खिलाकर हमें हड़ताल नहीं करनी है। तुम कहीं कुछ मजदूरी करके अपना पेट भरने लायक कमा लो, तो चाहे हड़ताल कितनी ही लम्बी क्यों न हो, तुम निश्चिन्त रह सकते हो। और मेरा उपवास तो कुछ-न-कुछ फैसला करनेके पहले टूटनेवाला नहीं है।"

वल्लभभाई मजदूरोंके लिए म्युनिसिपैलिटीमें कार्य ढूंढते थे, मगर वहांपर कुछ मिलने लायक नहीं था। आश्रमके बुनाई-घरमें बालू भरनी थी। मगनलालने सूचना दी कि उसमें बहुत-से मजदूरोंको काम दिया जा सकता है। मजदूर काम करनेको तैयार हुए। अनसूयाबहनने पहली टोकरी उठायी और नदीमेंसे बालूकी टोकरियां उठाकर लानेवाले मजदूरोंका ठठ लग गया। वह दृश्य देखने लायक था। मजदूरोंमें नया जोश आया। उन्हें पैसा चुकानेवाले चुकाते-चुकाते थक जाते।

इस उपवासमें एक दोष था। मैं यह लिख चुका हूं कि मिल-मालिकोंके साथ मेरा मधुर सम्बन्ध था। इसलिए यह उपवास उन्हें स्पर्श किये बिना रह नहीं सकता था। मैं जानता था कि बतौर सत्याग्रहीके उनके विरुद्ध मैं उपवास नहीं कर सकता। उनके ऊपर जो कुछ असर पड़े, वह मजदूरोंकी हड़तालका ही पड़ना चाहिए। मेरा प्रायश्चित्त उनके दोषके लिए न था, किन्तु मजदूरोंके दोषके लिए था। मैं मजदूरोंका प्रतिनिधि था, इसलिए इनके दोषसे दूषित होता था। मालिकोंसे तो मैं सिर्फ विनय ही कर सकता था। उनके विरुद्ध उपवास करना तो बलात्कार गिना जायगा। यह भी तो मैं जानता था कि मेरे उपवासका असर उनपर पड़े बिना नहीं रह सकता। पड़ा भी सही, किन्तु मैं अपनेको रोक नहीं सकता था। मैंने ऐसा दोषमय उपवास करनेका अपना धर्म प्रत्यक्ष देखा।

मालिकोंको मैंने समझाया—"मेरे उपवाससे आपको अपना मार्ग जरा भी छोड़नेकी जरूरत नहीं।" उन्होंने मुझपर कड़ुए-मीठे ताने भी मारे। उन्हें इसका अधिकार था, परन्तु वे केवल दयाकी ही खातिर समझौता करके रास्ते ढूंढने लगे। अनसूयाबहनके यहां उनकी सभाएं होने लगीं। आनंदशंकर ध्रुव भी बीचमें पड़े। अन्तमें वह पंच चुने गये और हड़ताल टूटी। मुझे तीन ही दिन उपवास करना पड़ा। मालिकोंने मजदूरोंको मिठाई बांटी। इक्कीसवें दिन समझौता हुआ और समझौतेका सम्मेलन हुआ। उसमें मिल-मालिक और कमिश्नर हाजिर थे। कमिश्नरने मजदूरोंको सलाह दी थी कि "तुम्हें हमेशा मि० गांधीकी बात माननी चाहिए।" इन्हीं कमिश्नरसाहबसे इस घटनाके कुछ दिनों बाद, तुरन्त ही

मुझे एक लडाई लडनी पडी थी। समय बदला, इसलिए वह भी बदले और खेड़ाके पाटीदारोको मेरी सलाह न माननेको कहने लगे।

६२. रौलट-एक्ट और मेरा धर्म-संकट

खेडा जिलेके किसानोके सत्याग्रहकी बात यहा छोड दी जाती है। जिस सरकारने इच्छा या अनिच्छासे भी किसानोकी माग कबूल कर ली, उसी सरकारकी अब मदद करनेका मौका आ गया। यूरोपमें महायुद्ध चल रहा था। दिल्लीमें होनेवाली युद्ध-परिषद्में मुझे बुलाया गया। मेरे सामने धर्म-सकट था। इग्लैण्डके दूसरे राज्योके साथ की हुई गुप्त सधिया बडी चर्चाका विषय हो रही थी। मैंने अपना एतराज पेश किया। वाइसराय चेम्सफोर्डसाहबने मुझे चर्चाके लिए बुलाया। चर्चाके बाद मैंने शरीक होना मजूर किया और पत्र लिखकर अपना मन्तव्य प्रकट किया। लोकमान्य तिलक और अलीभाई आदि नेताओकी गैरहाजिरीके बारेमें अपना खेद प्रकट किया और लोगोकी राजनैतिक मागो और लडाईसे उत्पन्न होनेवाली मुसलमानोकी मागोका उल्लेख किया।

इसके बाद रगरूट भरती करनेका काम था। खेडाके किसानोने यह बात पसन्द नही की। फिर भी हमको काफी नाम मिलने लगे। मेरे इस कार्यकी काफी टीका हुई है, परन्तु उसको शान्तिसे सुनना मैंने अपना धर्म माना। जिस सल्तनतमें हम भविष्यमें सम्पूर्ण हिस्सेदार बननेकी आशा करते थे, उसके आपत्तिकालमें मदद करना हमारा धर्म ही था। मेरे लिए यह वफादारीका भी प्रश्न था। मैं तो अग्रेजोकी जैसी वफादारी प्रत्येक भारतवासीमें प्रकट करना चाहता था।

परन्तु मेरी लम्बी बीमारीने और थोडे दिनोमें समाप्त होनेवाले युद्धने मेरे मनोरथको अधूरा ही रहने दिया। मैं स्वास्थ्य-लाभके लिए माथेरान गया।

मित्रोसे ऐसी सलाह पाकर कि माथेरान जानेसे शरीर जल्द ही स्वस्थ हो जायगा, मैं माथेरान गया, परन्तु वहाका पानी भारी था, इसलिए मेरे-जैसे बीमारका वहा रहना मुश्किल हो गया। पेचिशके कारण गुदा-द्वार बहुत ही नाजुक पड गया था और वहा घाव हो जानेसे मल-त्यागके समय बडा दर्द होता था। इसलिए कुछ भी खानेमें डर लगता था। एक सप्ताहमें माथेरानसे लौटा। मेरे स्वास्थ्यकी रखवाली करनेका काम श्री शकरलालने अपने हाथमें ले लिया। उन्होने डॉ० दलालसे सलाह लेनेका मुझे बहुत आग्रह किया। डॉ० दलाल आये। उनकी तत्काल निर्णय करनेकी शक्तिने मुझे

मोह लिया। उन्होंने कहा—"जबतक आप दूध न लेंगे, तबतक आपका शरीर नहीं सुधरेगा। शरीर सुधारनेके लिए तो आपको दूध लेना चाहिए और लोहे व संखियाके इंजेक्शन लेने चाहिए। आप इतना करें, तो मैं आपका शरीर फिरसे पुष्ट करनेकी गारण्टी देता हूं।"

"आप इंजेक्शन दें, लेकिन मैं दूध नहीं लूंगा।"—मैंने जवाब दिया।

"आपकी दूधवाली प्रतिज्ञा क्या है?"—डॉक्टरने पूछा।

"गाय-भैंसके फूका लगाकर दूध निकालनेकी क्रिया की जाती है। यह जाननेपर मुझे दूधके प्रति तिरस्कार हो आया और यह तो सदा मानता ही था कि वह मनुष्यकी खुराक नहीं है, इसलिए मैंने दूध छोड़ दिया है।"—मैंने कहा।

"तब तो बकरीका दूध लिया जा सकता है", कस्तूरबाई, जो मेरी खाटके पास ही खड़ी थी, बोल उठी।

"बकरीका दूध लो, तो मेरा काम चल जायगा।"—डॉक्टर दलाल बीच हीमें बोल उठे।

मैं झुका। सत्याग्रहकी लड़ाईके मोहने मुझमें जीवनका लोभ पैदा किया और मैंने प्रतिज्ञाके अक्षरोंके पालनसे सन्तोष मानकर उसकी आत्माका हनन किया। दूध-घीकी प्रतिज्ञा लेते समय यद्यपि मेरी दृष्टिके सामने गाय-भैंसका ही विचार था, फिर भी मेरी प्रतिज्ञा दूध-मात्रके लिए समझी जानी चाहिए और जबतक मैं पशुके दूध-मात्रको मनुष्यकी खुराकके लिए निषिद्ध मानता हूं, तबतक मुझे खानेमें उसके उपयोग करनेका अधिकार नहीं है। यह जानते हुए भी बकरीका दूध लेनेको मैं तैयार हो गया। सत्यके पुजारीने सत्याग्रहकी लड़ाईके लिए जीवित रहनेकी इच्छा रखकर अपने सत्यको कलंक लगाया।

मेरे इस कार्यका डंक अबतक नहीं मिटा है और बकरीका दूध छोड़नेके लिए सदा विचार करता रहा हूं। बकरीका दूध पीते वक्त रोज मैं कष्ट अनुभव करता हूं, परन्तु सेवा करनेका महासूक्ष्म मोह, जो मेरे पीछे लगा है, छोड़ता ही नहीं। अहिंसाकी दृष्टिसे खुराकके अपने प्रयोग मुझे बड़े प्रिय हैं। उनमें आनन्द आता है और यही मेरा विनोद भी है, परन्तु बकरीका दूध मुझे इस दृष्टिकोणके कारण नहीं अखरता, वह मुझे सत्यकी दृष्टिके कारण अखरता है। अहिंसाको जितना मैं पहचान सका हूं, उसकी बनिस्बत मैं सत्यको अधिक पहचानता हूं, ऐसा मेरा खयाल है और यदि मैं सत्यको छोड़ दूं, तो अहिंसाकी बड़ी उलझन मैं कभी न सुलझा सकूंगा, ऐसा मेरा अनुभव है। सत्यका पालन है—लिये गये व्रतोंके शरीर और आत्माकी रक्षा—शब्दार्थ और भावार्थका पालन। यहांपर मैंने आत्माका—

भावार्थका नाश सदा किया है । यह मुझे सदा ही अखरता है । यह जानने-पर भी व्रतके सम्बन्धमें मेरा क्या धर्म है, यह मैं नही जान सका हू, अथवा यो कहू कि मुझमे उसका पालन करनेकी हिम्मत नही है । दोनो एक ही बात है, क्योकि शकाके मूलमें श्रद्धाका अभाव होता है । ईश्वर मुझे श्रद्धा दे ।

'बकरीका दूध शुरू करनेके थोडे दिन बाद डॉ० दलालने गुदा-द्वारमे नश्तर लगाया, जिसमे उन्हें बडी कामयाबी हुई ।

अभी यो मैं बीमारीसे उठनेकी आशा बाध ही रहा था और अखबार पढना शुरू किया ही था कि इतनेमे रौलट-कमेटीकी रिपोर्ट मेरे हाथ लगी। उसमे जो सिफारिशे की गयी थी, उन्हे देखकर मैं चौक उठा । भाई उमर और शकरलालने कहा कि इसके लिए कुछ करना चाहिए । एकाध महीनेमे अहमदाबाद गया । श्री वल्लभभाई मेरे स्वास्थ्यका हाल-चाल पूछनेके लिए करीब-करीब रोज आते थे । मैंने इस बारेमे उनसे बातचीत की और यह भी सूचित किया कि कुछ करना चाहिए। उन्होंने पूछा—"क्या किया जा सकता है ?" जवाबमें मैंने कहा—"अगर कमेटीकी सिफारिशोके अनुसार कानून बनाया जाय, तो इसके लिए प्रतिज्ञा लेनेवाले थोडे-से मनुष्योके मिल जानेपर हमें सत्याग्रह करना चाहिए। अगर मैं बीमार न होता, तो मैं अकेला ही लडता और यह आशा रखता कि पीछेसे और लोग भी इसमे आ मिलेंगे । अपनी इस लाचारीकी हालतमे अकेले लडनेकी मुझमे बिलकुल शक्ति नही है ।"

इस बातचीतके फलस्वरूप ऐसे लोगोकी एक छोटी-सी सभा करनेका निश्चय हुआ, जो मेरे सम्पर्कमें ठीक-ठीक आये थे।

रौलट कमेटीको मिली गवाहीसे मुझे यह तो स्पष्ट लगता था कि उसने जैसी सिफारिशें की है, वैसे कानूनकी जरूरत नही है और मेरे नजदीक यह बात भी इतनी स्पष्ट थी कि ऐसे कानूनोको कोई भी स्वाभिमानी राष्ट्र या जनता स्वीकार नही कर सकती है ।

सभा हुई । उसमें कोई लगभग बीस मनुष्योको निमन्त्रण दिया गया होगा । मुझे जहातक स्मरण है, उसमें वल्लभभाईके अलावा श्रीमती सरोजिनी नायडू, मि० हार्निमैन, श्री उमरसुभानी, श्री शकरलाल बैंकर, श्रीमती अनसूयाबहन इत्यादि थी ।

प्रतिज्ञा-पत्र तैयार किया गया और मुझे ऐसा स्मरण है कि जितने लोग वहा मौजूद थे, सभीने उसपर दस्तखत किये । इस समय मैं कोई अखबार नही चलाता था, परन्तु समय-समयपर अखबारोंमे लिखता रहता था । इस समय भी मैंने अखबारोंमें लिखना शुरू किया और शकरलाल बैंकरने

अच्छी हलचल शुरू कर दी। उनकी काम करनेकी और संगठन करनेकी शक्तिका उस समय मुझे अच्छा अनुभव हुआ।

मुझे यह असम्भव प्रतीत हुआ कि उस समय कोई भी मौजूदा संस्था सत्याग्रह-जैसे शस्त्रको उठा सके, इसलिए सत्याग्रह-सभाकी स्थापना की गयी। उसमें मुख्यतः बम्बईसे नाम मिले और उसका केन्द्र भी बम्बईमें ही रखा गया। प्रतिज्ञा-पत्रपर दस्तखत होने लगे और जैसा कि खेडाकी लडाईमें हुआ था, इसमें भी पत्रिकाएं निकली और जगह-जगह सभाएं हुई।

इस सभाका अध्यक्ष मैं बना था। मैंने देखा कि शिक्षित वर्ग और मेरे बीच अधिक मेल न हो सकेगा। सभामें गुजराती भाषाका ही उपयोग करनेका मेरा आग्रह और मेरी दूसरी कार्य-पद्धतिको देखकर वे विस्मित हुए, मगर मुझे यह स्वीकार करना चाहिए कि बहुतेरोंने मेरी कार्य-पद्धतिको निभा लेनेकी उदारता दिखायी, परन्तु आरम्भ होमें मैंने यह देख लिया कि यह सभा दीर्घकालतक नही चलेगी। फिर सत्य और अहिंसापर जो मैं जोर देता था, वह भी कुछ लोगोंको अप्रिय लगता था। फिर भी शुरूमें तो यह काम बड़े जोरोंसे चल निकला।

६३. एक अद्भुत दृश्य

रौलट-कमेटीकी रिपोर्टके विरुद्ध एक ओर आन्दोलन बढ़ता गया और दूसरी ओर सरकार उसकी सिफारिशोंको अमलमें लानेके लिए कमर कसती गयी। रौलट-बिल प्रकाशित हुआ। मैं धारासभाकी बैठकमें एक ही बार गया हू। रौलट-बिलकी चर्चा सुनने गया था। शास्त्रीजीने अपना बहुत ही जोरदार भाषण दिया और सरकारको चेतावनी दी। जब शास्त्रीजीकी वाग्धारा चल रही थी, उस समय वाइसराय शास्त्रीजीकी ओर ताक रहे थे। मुझे तो ऐसा लगा कि शास्त्रीजीके भाषणका असर उनके मनपर पडा होगा। शास्त्रीजीमें जोश उमडा पडता था।

किन्तु सोये हुएको जगाया जा सकता है, जागता हुआ सोनेका ढोंग करे, तो उसके कानमें ढोल बजानेसे भी क्या होगा? धारासभामें बिलोंकी चर्चा करनेका प्रहसन करना ही चाहिए, इसलिए सरकारने वह प्रहसन खेला, किन्तु उसे जो काम करना था, उसका निश्चय तो हो ही चुका था इसलिए शास्त्रीजीकी चेतावनी बेकार साबित हुई।

मेरी तूतीकी आवाज तो सुनता ही कौन! मैंने वाइसरायसे मिलकर खूब विनय की, खानगी पत्र लिखे, खुली चिट्ठियां लिखी। उनमें यह स्पष्ट

बतलाया कि सत्याग्रहके सिवा मेरे पास दूसरा रास्ता नही है, किन्तु सब बेकार गया।

अभी बिल गजटमें प्रकाशित नही हुआ था। मेरा शरीर निर्बल था, किन्तु मैंने लम्बे सफरकी जोखिम उठायी। मुझमें ऊची आवाजसे बोलनेकी शक्ति अभी नही थी। खडे होकर बोलनेकी शक्ति जो गयी, सो अबतक नही आयी है। खडे होकर बोलते ही थोडी देरमें सारा शरीर कापने लगता और छातीमे और पेटमे दर्द होने लगता था, किन्तु मुझे ऐसा लगा कि मद्राससे आये हुए निमन्त्रणको स्वीकार करना ही चाहिए, दक्षिण अफ्रीकाके सम्बन्धके कारण मै मानता आया हू कि तमिल, तेलगू आदि दक्षिण प्रान्तके लोगोपर मेरा कुछ हक है और अबतक ऐसा नही लगा है कि मैंने इस मान्यतामें जरा भी भूल की है। आमन्त्रण स्वर्गीय श्री कस्तूरीरगा एयगारकी ओरसे आया था। मद्रास-जाते ही मुझे जान पडा कि इस आमन्त्रणके पीछे श्री राजगोपालाचार्य थे। श्री राजगोपालाचार्यके साथ मेरा यह पहला परिचय माना जा सकता है । इस बार सिर्फ इतना परिचय हुआ कि मै उन्हे देखते ही पहचान सकू।

सार्वजनिक कामोमें ज्यादा भाग लेनेके इरादे और श्री कस्तूरीरगा एयगार आदि मित्रोकी इच्छासे वह सेलम छोडकर मद्रासमें वकालत करनेवाले थे। मुझे उन्हीके यहा ठहरानेकी व्यवस्था की गयी थी। मुझे तो दो दिन बाद मालूम हुआ कि मै उन्हीके घर ठहरा हू। वह बगला श्री कस्तूरीरगा एयगारका होनेके कारण मैंने यही मान लिया था कि मैं उन्हीका अतिथि हू। महादेव देसाईने मेरी भूल सुधारी। राजगोपालाचार्य दूर-ही-दूर रहते थे, किन्तु महादेवने उनसे भलीभाति परिचय कर लिया था। महादेवने मुझे चेताया—"आपको श्री राजगोपालाचार्यसे परिचय कर लेना चाहिए।"

मैंने परिचय किया। उनके साथ रोज ही लडाईकी व्यवस्था करनेकी सलाह किया करता था। सभाओके सिवा मुझे और कुछ सूझता ही नही था। रौलट-बिल अगर कानून बन जाय, तो उसका सविनय भग कैसे हो? उसका सविनय भग करनेका अवसर तो तभी मिल सकता था, जब सरकार देती। दूसरे किन कानूनोका सविनय भग हो सकता है, उसकी मर्यादा कहा निश्चित हो? ऐसी ही चर्चाए होती थी।

श्री कस्तूरीरगा एयगारने नेताओकी एक छोटी-सी सभा भी की। उसमें भी खूब चर्चा हुई। उसमें श्री राघवाचार्य खूब हाथ बटाते थे। उन्होने यह सूचना दी कि बारीक-से-बारीक सूचनाए लिखकर मुझे सत्याग्रहका शास्त्र प्रकाशित करना चाहिए। मैंने कहा कि यह काम मेरी शक्तिके बाहर है।

यों सलाह-मशविरा हो रहा था। इस बीच खबर आयी कि बिल कानूनों-के रूपमें गजटमें प्रकाशित हुआ है। जिस दिन यह खबर मिली, उस रातको मैं विचार करता हुआ सो गया। दूसरे दिन सुबह मैं बहुत सवेरे उठ खड़ा हुआ। अर्द्धनिद्रा होगी और मुझे स्वप्नमें विचार सूझा। सवेरे ही मैंने श्री राजगोपालाचार्यको बुलाया और बात की।

मुझे रातको स्वप्नमें विचार आया कि इस कानूनके जवाबमें हमें सारे देशने हड़ताल करनेके लिए कहना चाहिए। सत्याग्रह आत्म-शुद्धिकी लड़ाई है, धार्मिक लड़ाई है। धर्म-कार्य शुद्धिसे शुरू करना ठीक लगता है। एक दिन सभी कोई उपवास कर और काम-धन्धा बन्द रखें। मुसलमान भाई रोजेके अलावा और उपवास नहीं रखते, इसलिए चौबीस घण्टेका उपवास रखनेकी सलाह देनी चाहिए। यह तो नहीं कहा जा सकता कि इसमें सभी प्रान्त शामिल होंगे या नहीं। बम्बई, मद्रास, बिहार और सिन्ध-की आशा तो मुझे है ही। इतनी जगहोंमें अगर ठीक हड़ताल हो तो हमें सन्तोष मानना चाहिए।

यह सूचना श्री राजगोपालाचार्यको पसन्द आयी। फिर तुरन्त दूसरे मित्रोंसे कहा। सबने इसे खुशीसे स्वीकार कर लिया। मैंने एक छोटी-सी नोटिस तैयार करके प्रकाशित की। पहले सन् १९१९ मार्चकी ३० तारीख रखी गयी थी। किन्तु बादमें ६ अप्रैल की गयी। लोगोंको बहुत थोड़े दिनोंकी नोटिस मिली। कार्य तुरन्त करनेकी आवश्यकता थी, इसलिए लम्बी मुद्दत देनेका समय न था।

पर कौन जाने कैसे सारा संगठन हो गया! सारे हिन्दुस्तानमें—शहरोंमें और गांवोंमें—हड़ताल हुई। यह दृश्य भव्य था।

६४. वह सप्ताह!—१

दक्षिणमें थोड़ा भ्रमण करते हुए बहुत करके मैं चौथी अप्रैलको बम्बई पहुंचा। श्री शंकरलाल बैंकरका ऐसा तार था कि छठी तारीखका कार्य-क्रम पूरा करनेके लिए मुझे बम्बईमें रहना चाहिए।

किन्तु उससे पहले दिल्लीमें तो ३० तारीखको ही हड़ताल मनायी जा चुकी थी। उन दिनों दिल्लीमें स्व० स्वामी श्रद्धानन्दजी तथा स्वर्गीय हकीम अजमलखां साहबकी हुकूमत चलती थी। हड़ताल छठी तारीखके लिए स्थगित कर दी जानेकी खबर दिल्लीमें देरसे पहुंची थी। दिल्लीमें उस दिन जैसी हड़ताल हुई, वैसी पहले कभी न हुई थी। हिन्दू और मुसल-मान दोनों एकदिल हुए-से जान पड़े। श्रद्धानन्दजीको जुमा मस्जिदमें निमन्त्रण दिया गया था और वहां उन्हें भाषण करने दिया गया था।

ये सब बातें सरकारी अफसर सहन नहीं कर सकते थे। जुलूस स्टेशनकी ओर चला जा रहा था। उसे पुलिसने रोका। पुलिसने गोली चलायी। कितने ही आदमी जख्मी हुए और कई खून हुए। दिल्लीमें दमन-नीति शुरू हुई। श्रद्धानन्दजीने मुझे दिल्ली बुलाया। मैंने तार दिया—बम्बईमें छठी तारीख बिताकर मैं तुरन्त दिल्ली रवाना होऊंगा।

जैसा दिल्लीमें हुआ, वैसा ही लाहौर और अमृतसरमें भी हुआ था। अमृतसरसे डॉ० सत्यपाल और डॉ० किचलूके तार मुझे तुरन्त ही बुला रहे थे। उस समय मैं इन दो भाइयोको जरा भी नहीं पहचानता था। दिल्लीसे होकर अमृतसर जानेका निश्चय मैंने उन्हें बतलाया था।

छठीको सवेरे बम्बईमें हजारो आदमी चौपाटीमें स्नान करने गये और वहासे ठाकुरद्वारा जानेके लिए जुलूस निकाला। उसमें स्त्रिया और बच्चे भी थे। जुलूसमें मुसलमान भी अच्छी तादादमें शामिल हुए थे। इस जुलूसमेंसे हमें मुसलमान भाई एक मस्जिदमें ले गये। वहा श्रीमती सरोजिनीदेवीसे तथा मुझसे भाषण कराये। यहा श्री विट्ठलदास जेराजाणीने स्वदेशीकी तथा हिन्दू-मुसलमान-ऐक्यकी प्रतिज्ञा लिवानेकी सूचना दी। मैंने ऐसी उतावलीमें प्रतिज्ञा लिवानेसे इनकार किया। जितना हो रहा था, उतनेसे ही सन्तोष माननेकी सलाह दी। प्रतिज्ञा लेनेके बाद वह टूट नहीं सकती। हमें स्वदेशीका अर्थ समझना चाहिए। हिन्दू-मुसलमान-ऐक्यकी जिम्मेदारी वगैरहपर भी कहा और सुझाया कि जिन्हें प्रतिज्ञा लेनेका विचार हो, वे कल सवेरे भले ही चौपाटीके मैदानमें जाय।

बम्बईकी हड़ताल पूरी-पूरी रही।

कानूनके सविनय-भगकी तैयारी कर डाली गयी थी। भग हो सकने लायक दो-तीन वस्तुए थी। ये कानून ऐसे थे, जो रद्द होने लायक थे और इनको कोई सहज ही भग कर सकते थे। इनमेंसे एकका ही उपयोग करनेका निश्चय हुआ था। नमकपर लगनेवाला कर बहुत ही अखरता था। उस करको उठवानेके लिए बहुत आदमी प्रयत्न कर रहे थे, इसलिए एक सुझाव मैंने यह रखा कि सब कोई अपने घरमें बिना परवानेके नमक बनायें। दूसरा कानून सरकारकी जब्त की हुई पुस्तकें बेचनेके सम्बन्धमें था। ऐसी दो पुस्तकें मेरी ही थी। वे थी 'हिन्दस्वराज्य' और 'सर्वोदय'। इन पुस्तकोको छापना और बेचना सबसे सहज सविनय-भग जान पड़ा। इसलिए उन्हें छपाया और साझका उपवास टूटने और चौपाटीकी विराट् सभा विर्सजित होनेके बाद इन्हें बेचनेका प्रबन्ध हुआ।

साझको बहुत-से स्वयसेवक ये पुस्तकें बेचनेको निकल पड़े। एक मोटरमें मैं निकला और एकमें श्रीमती सरोजिनी नायडू निकली। जितनी

प्रतिया छपवायी थी, सव विक गयी। इनकी जो कीमत वसूल हो वह लडाईके खर्चमें ही डाली जानेवाली थी। एक प्रतिकी कीमत चार आने रखी गयी थी, किन्तु मेरे या सरोजिनीदेवीके हाथमे शायद ही किसीने चार आने रखे हो। अपनी जेवमेंसे जो कुछ निकल जाय, सभी देकर पुस्तक लेनेवाले वहुत आदमी निकल पडे। कोई दस रुपयेका तो कोई पाच रुपयेका नोट भी देते थे। मुझे याद है कि एक प्रतिके लिए तो ५०) रुपयेका भी एक नोट मिला था। लोगोको समझाया गया था कि लेनेवालोको भी जेलकी जोखिम है, किन्तु घडीभरके लिए लोगोंने जेलका भय छोड दिया।

सातवी तारीखको मालूम हुआ कि जो किताबें वेचनेकी मनाही सरकारने की थी, सरकारी दृष्टिसे वे विकी हुई नही मानी जा सकती। जो विकी, वे तो उसकी दूसरी आवृत्ति गिनी जायगी—जब्त की गयी कितावोंमेंसे नही। इसलिए यह नयी आवृत्ति छापने और खरीदनेमें कोई गुनाह नही माना जायगा। लोग यह खवर सुनकर निराश हुए।

इस दिन सवेरे चौपाटीपर लोगोंको स्वदेशी-व्रत तथा हिन्दू-मुसलिम-ऐक्यके व्रतके लिए इकट्ठा होना था। विट्ठलदास जेराजाणीको यह पहला अनुभव हुआ कि उजला रग होनेसे ही सव कुछ दूध नही हो जाता। लोग वहुत कम इकट्ठे हुए थे। इनमें दो-चार वहनोका नाम मुझे याद आता है। पुरुष भी थोडे थे। मैंने व्रत वना रखे थे। उनका अर्थ उपस्थित लोगोको खूब समझाकर उनसे प्रतिज्ञा करवायी। थोडी हाजिरीसे मुझे आश्चर्य न हुआ, दुख भी न हुआ, किन्तु धाधलीके काम और धीमे रचनात्मक कामके वीचका भेद और लोगोंमें पहलेका पक्षपात तथा दूसरेकी अरुचिका अनुभव मै तवसे वरावर करता आया हू।

सातवी तारीखकी रातको मै दिल्ली-अमृतसर जानेको निकला। आठवीको मथुरा पहुचते ही कुछ भनक मिली कि शायद मुझे पकडेगे। मथुराके वाद एक स्टेशनपर गाडी खडी थी। वहापर मुझे आचार्य गिडवानी मिले। उन्होंने विश्वस्त खवर दी कि "आपको जरूर पकडेंगे और मेरी सेवाकी जरूरत हो, तो मै हाजिर हू।" मैंने उनका उपकार माना और कहा कि जरूरत पडनेपर सेवा लेना नही भूलूगा।

पलवल स्टेशन आनेके पहले ही पुलिस-अफसरने मेरे हाथमें यह हुक्म रखा—"तुम्हारे पजावमें प्रवेश करनेसे अशान्ति वढनेका भय है, इसलिए तुम्हें हुक्म दिया जाता है कि पजावकी सीमामें दाखिल मत होओ।" पुलिसने हुक्म देकर मुझे उतर जानेको कहा। मैंने उतरनेसे इनकार किया और कहा—"मै अशान्ति वढाने नही, किन्तु आमन्त्रण मिलनेसे अशान्ति

घटानेके लिए जाना चाहता हू । इसलिए मुझे खेद है कि मैं इस हुक्मको नही मान सकता ।"

महादेव देसाई मेरे साथ थे। उन्हे दिल्ली जाकर श्रद्धानन्दजीको खबर देने और लोगोको शान्त रहनेको कहनेके लिए कहा । हुक्मका अनादर करनेसे जो सजा हो, उसे सहनेका मैंने निश्चय किया है तथा सजा होनेपर भी शान्त रहनेमें ही हमारी जीत है, यह समझानेको भी कहा ।

पलवल आया, स्टेशनपर मुझे उतारकर पुलिसके हवाले किया गया। दिल्लीसे आनेवाली किसी ट्रेनके तीसरे दर्जेके डिब्बेमें मुझे बैठाया । साथ पुलिसकी पार्टी बैठी । मथुरा पहुचनेपर मुझे पुलिस-बेरकमें ले गये । कोई अफसर यह न बता सका कि मेरा क्या होगा और मुझे कहा ले जाना है। सवेरे ४ बजे मुझे उठाया और एक बैलगाडीमें ले गये। दोपहरको सवाई माधोपुरमें उतार दिया । वहा बम्बई मेल ट्रेनमें लाहौरसे इन्स्पेक्टर बोरिंग आये। उन्होने मेरा कब्जा लिया और बम्बईमें ले जाकर छोड दिया।

मेरे घर पहुचते ही उमर सुभानी और अनसूयाबहन मोटरसे आये और मुझे पायधुनी चलनेको कहा—"लोग अधीर हो गये है और उत्तेजित हो रहे है। हममेसे किसीके किये वे शान्त नही रह सकते। आपको ही देखने-पर शान्त होगे ।"

मै मोटरमें बैठ गया । पायधुनी पहुचते ही रास्तेमें बहुत बडी भीड दिखी। मुझे देखकर लोग हर्षोन्मत्त हो गये। अब जुलूस बना। 'वन्दे मातरम्', 'अल्लाहो अकबर' की आवाजोसे आसमान फटने लगा । पायधुनीपर घुड-सवारोको देखा । ऊपरसे ईंटोकी वर्षा होती थी । मै लोगोको शान्त होनेके लिए हाथ जोडकर प्रार्थना करता था। ऐसा जान पडा कि हम भी ईंटोकी इस वर्षासे न बच सकेंगे ।

अब्दुलरहमान गलीमेंसे क्रॉफर्ड मार्केटकी ओर जाते हुए जुलूसको रोकनेके लिए घुडसवारोकी एक टुकडी सामने आ खडी हुई। जुलूसको फोर्टकी ओर जानेसे रोकनेके लिए वे महाप्रयत्न कर रहे थे। लोग समाते न थे। लोगोने पुलिसकी लाइनको चीरकर आगे बढना शुरू किया। हालत ऐसी न थी कि मेरी आवाज सुनायी पडे। इसपर घुडसवारोकी टुकडीके अफसरने भीडको तितर-बितर करनेका हुक्म दिया और इस टुकडीने भाले तानकर घोडोको एकदम छोड दिया। मुझे भय हुआ कि उनमेंसे कोई भाला हममें-से भी किसीका काम तमाम कर दे तो कोई आश्चर्य नही, किन्तु इस भयके लिए कोई आधार नही था। बगलसे होकर सभी भाले रेलगाडीकी चालसे चले जाते थे। लोगोके झुण्ड टूट गये। भगदड मच गयी, कई दब गये, कई घायल हुए। घुडसवारोके निकलनेके लिए रास्ता न था। लोगो-

के आसपास हटनेकी जगह न थी। वे अगर पीछे भी फिरें, तो उधर भी हजारोकी जबरदस्त भीड थी। सारा दृश्य भयकर लगा। घुडसवार और लोग दोनो ही उन्मत्त-जैसे लगे। घुडसवार न कुछ देखते और न कुछ देख ही सकते थे। वे तो आखे मूदकर घोडोको सरपट दौडा रहे थे। जितने क्षण इस हजारोके झुण्डको चीरनेमें लगे, उतने क्षणतक मैंने देखा कि वे कुछ देख ही नही सकते थे।

लोगोको यो बिखेरा और रोका। हमारी मोटरको आगे जाने दिया। मैंने कमिश्नरके दफ्तरके आगे मोटर रुकवायी और उनके पास पुलिसके व्यवहारके लिए फ़रियाद करने उतरा।

६५. वह सप्ताह !—२

मै कमिश्नर ग्रिफिथके दफ्तरमें गया। उनकी सीढ़ीके पास जाते ही देखा कि हथियारबन्द सैनिक तैयार बैठे थे, मानो किसी लडाईके लिए ही तैयार हो रहे हो! बरामदेमें भी हलचल मच रही थी। मै खबर भेजकर दफ्तरमें घुसा, तो कमिश्नरके पास मि० बोरिंगको बैठे हुए देखा।

मैंने जो कुछ देखा था, उसका वर्णन कमिश्नरसे किया। उसने सक्षेप-मे जवाब दिया—"जुलूसको हम फोर्टकी ओर जाने देना नही चाहते थे। वह जुलूस जाता, तो हुल्लड हुए बिना नही रह सकता था। मैंने देखा कि लोग केवल कहनेसे लौटनेवाले नही थ, इसलिए हमला करनेके सिवा और उपाय नही था।"

मैं बोला—"मगर उसका परिणाम तो आप जानते थे न? लोग घोड़ोके नीचे जरूर ही कुचलते। मझे तो ऐसा जान पडता है कि घुड-सवारोकी टुकडीको भेजनेकी जरूरत न थी।"

साहबने जवाब दिया—"इसका पता आपको नही चल सकता। लोगोपर आपके शिक्षणका कैसे असर पडता है, इसका आपके बजाय हम पुलिसवालोको अधिक पता रहता है। हम अगर पहलेसे ही सख्त कारंवाई न करें, तो अधिक नुकसान हो सकता है। मै आपसे कहता हू कि लोग तो आपके कहनेमें रहनेवाले नही है। कानून-भगकी बात वे समझेंगे, मगर शान्तिकी बात समझना उनके बूतेके बाहर है। आपका हेतु अच्छा है, मगर लोग आपका हेतु नही समझते। वे तो अपने ही स्वभावके अनुसार काम करेंगे।"

म बोला—"यही तो आपके और मेरे बीच मतभेद है। लोग स्वभाव-से लडाके नही हैं, किन्तु शान्तिप्रिय है।"

हम दलीलमें उतरे।

अन्तमें साहब बोले—"खैर, अगर आपको विश्वास हो जाय कि लोगोंने आपको नही समझा तो आप क्या करेंगे ?"

मैंने जवाब दिया—"अगर मुझे ऐसा विश्वास हो जाय, तो यह लडाई मुल्तवी रखूगा।"

"मुल्तवी रखनेके क्या मानी ? आपने तो मि० बोरिंगसे कहा है कि छूटते ही तुरन्त पजाब लौटना चाहता हू।"

"हा, मेरा इरादा तो दूसरी ही ट्रेनसे लौटनेका था, किन्तु यह आज तो नही हो सकता।"

"आप धीरज रखेंगे तो आपको अधिक बातें मालूम होगी। क्या आपको खुद पता है कि अभी अहमदाबादमें क्या चल रहा है ? अमृतसरमें क्या हुआ है ? लोग तो सभी जगह पागल-से हो गये है। मुझे भी पूरी खबर नही है। कितनी जगह तो तार भी टूटे है। मैं तो आपसे कहता हू कि इन सब दगोंकी जिम्मेदारी आपके सिर है।"

मैं बोला—"मेरी जिम्मेदारी जहा होगी, वहा उसे मैं अपने सिर ओढे बिना न रहूगा। अहमदाबादमें लोग अगर कुछ करें, तो मुझे आश्चर्य और दुःख होगा। अमृतसरके बारेमें मैं कुछ नहीं जानता। वहा तो कभी नहीं गया हू, मुझे कोई जानता भी नही है, किन्तु मैं इतना जानता हू कि यदि पजाबकी सरकारने मुझे वहा जानेसे रोका न होता, तो मैं शान्ति बनाये रखनेमें बहुत हिस्सा ले सकता था। मुझे रोककर सरकारने लोगोंको उत्तेजित कर दिया है।"

इस तरह हमारी बातें चली। हमारे मतमें मेल मिलनेकी सम्भावना नही थी।

चौपाटीपर सभा करने और लोगोंको शान्ति-पालन करनेके लिए समझानेका अपना इरादा जाहिर करके मैंने उनसे छुट्टी ली।

चौपाटीपर सभा हुई। मैंने लोगोंको शान्ति और सत्याग्रहकी मर्यादाके बारेमें समझाया और कहा—"सत्याग्रह सच्चेका खेल है। लोग अगर शान्ति-पालन न करें, तो मुझसे सत्याग्रहकी लड़ाई न लडी जायगी।"

अहमदाबादसे श्रीमती अनसूयाबहनको भी खबर मिल चुकी थी कि वहा हुल्लड हुआ है। किसीने अफवाह उडा दी थी कि वह भी पकडी गयी हैं। इससे मजदूर पागल-से बन गये। उन्होंने हड़ताल की और हुल्लड भी किया। एक सिपाहीका खून भी हुआ।

मैं अहमदाबाद गया। नडियादके पास रेलकी पटरी उखाड़ डालनेका भी प्रयत्न हुआ था। वीरमगाममें खून हुआ था। जब मैं अहमदाबाद

पहुंचा, तब तो वहा मार्शल-लॉ जारी था। लोग भयभीत हो रहे थे। लोगोंने जैसा किया, वैसा भोगा और सो भी व्याज-सहित।

कमिश्नर मि० प्रेटके पास मुझे ले जानेके लिए स्टेशनपर आदमी खडा था। मैं उनके पास गया। वह खूब गुस्सेमें थे। मैंने उन्हें शान्तिसे उत्तर दिया। जो खून हुआ था, उसके लिए अपना खेद प्रकट किया। मार्शल-लॉकी अनावश्यकता भी वतलायी और जिन उपायोंसे फिरसे शान्ति स्थापित हो, उन्हें करनेकी अपनी तैयारी वतलायी। मैंने सार्वजनिक सभा करनेकी इजाजत मागी और यह सभा आश्रमकी जमीनपर करनेकी अपनी इच्छा वतलायी। यह वात उन्हें पसन्द आयी। मुझे याद है कि इसके अनुसार तेरहवीं मईको रविवारके दिन सभा हुई थी। मार्शल-लॉ भी उसी दिन या उसके दूसरे दिन रद्द हुआ था। इस सभामें मैंने लोगोंको उनके दोप वतानेका प्रयत्न किया। मैंने प्रायश्चित्तके रूपमें तीन दिनका उपवास भी किया और लोगोंको एक दिनका उपवास करनेकी सलाह दी। जो खून वगैरहमें शामिल हुए हों, उन्हें अपना गुनाह कबूल कर लेनेकी भी सलाह दी।

अपना धर्म मैंने स्पष्ट देखा। जिन मजदूरो वगैरहके वीच मैंने इतना समय विताया था, जिनकी मैंने सेवा की थी और जिनसे मैं भलेकी ही आशा रखता था, उनका हुल्लडमें शामिल होना मुझे असह्य लगा और मैंने अपने-आपको उनके दोपमें हिस्सेदार माना। सत्याग्रह तुरन्त ही मुल्तवी रखनेका निश्चय मैंने प्रकट किया।

६६. 'हिमालय-जैसी भूल'

अहमदावादकी सभाके वाद मैं नड़ियाद गया। 'हिमालय-जैसी भूल' के नामका जो शब्द-प्रयोग प्रचलित हुआ, उसका प्रयोग मैंने पहले-पहल नडियादमें किया था। अहमदावादमें ही मुझे अपनी भूल जान पड़ने लगी थी, किन्तु नडियादमें वहाकी स्थितिका विचार करते हुए, खेडा जिलेके वहुत-से आदमियोंके गिरफ्तार होनेकी वात सुनते हुए, जिस सभामें मैं इन घटनाओंपर भाषण कर रहा था, वहींपर मुझे एकाएक खयाल हुआ कि खेडा जिलेके तथा ऐसे ही दूसरे लोगोंको सविनय-भग करनेके लिए निमन्त्रण देनेमें उतावली करनेकी मैंने भूल की थी और वह भूल मुझे हिमालय-जैसी जान पडी।

मैंने इसे स्वीकार किया। इसलिए मेरी खूब ही हसी उडी थी। तो भी मुझे यह स्वीकार करनेके लिए पश्चात्ताप नही हुआ है। मैंने यह हमेशा माना है कि जब हम दूसरेके गज-बरावर दोपको रज-समान देखेंगे और

अपने राई-जैसे जान पडनेवाले दोषको पर्वत-जैसा देखना सीखेंगे, तभी हमें अपने और दूसरेके दोषोका ठीक-ठीक दर्शन हो सकेगा। मैंने यह भी माना है कि सत्याग्रही बननेके इच्छुकको तो इस सामान्य नियमका पालन बहुत ही सूक्ष्मतासे करना चाहिए।

अब यह देखें कि यह हिमालय-जैसी दिखायी पडनेवाली भूल थी क्या? कानूनका सविनय-भग उन्ही लोगोसे हो सकता है, जिन्होने कानूनको विनयपूर्वक स्वेच्छासे मान लिया हो, उसका पालन किया हो। बहुताशमे हम कानूनके भगसे होनेवाली सजाके डरसे उसका पालन करते हैं। इसके अलावा यह बात विशेषकर उन कानूनोपर लागू होती है, जिनमे नीति-अनीतिका सवाल नही होता। कानून हो या न हो, सज्जन माने जानेवाले लोग एकाएक चोरी नही करेंगे, मगर तो भी रातमे बाइसिकिलकी बत्ती जलानेके नियमोसे भटक जानेमे भले आदमीको भी क्षोभ नही होता और ऐसे नियम पालनेकी कोई सलाह भी दे, तो भलेमानस उसका पालन करनेको झट तैयार नही होते, किन्तु जब यह कानून बन जाता है, उसका भग करनेमे जुर्मानेका डर लगता है, तब जुर्माना देनेसे बचनेके लिए ही वह बत्ती जलायेगा, यह नियमका पालन नही गिना जायगा।

किन्तु सत्याग्रही तो समाजके कानूनोका पालन समझ-बूझकर स्वेच्छासे और धर्म समझकर करेगा। इस प्रकार जिसने समाजके नियमोका जान-बूझकर पालन किया है, उसीमे समाजके नियमोकी नीति-अनीतिको भग करनेकी शक्ति आती है और उसे मर्यादित परिस्थितिमे अमुक नियमोके भग करनेका अधिकार प्राप्त होता है। ऐसा अधिकार प्राप्त करनेके पहले ही सविनय-भगके लिए न्योता देनेकी भूल मुझको हिमालय-जैसी लगी और खेडा जिलेमे प्रवेश करते ही मुझे वहाकी लडाई याद हो आयी। मुझे जान पडा कि मैंने सामनेकी दीवारको देखे बिना ही, आख मूदकर, सरपट दौड लगायी। मुझे ऐसा लगा कि उसके पहले कि लोग सविनय-भग करनेके लायक बनें, उन्हें उसके गभीर रहस्यका भान होना चाहिए। जिन्होने रोज ही इच्छासे कानूनको तोडा हो, जो छिपकर अनेक बार कानूनका भग करते हो, वे भला एकाएक कैसे सविनय-भगको पहचान सकते हैं। उसकी मर्यादाका पालन कैसे कर सकते हैं।

यह बात सहज ही समझमे आ सकती है कि इस आदर्शका पालन हजारो-लाखो आदमी नही कर सकते, किन्तु बात अगर ऐसी ही हो, तो सविनय-भग करानेके पहले लोगोको समझानेवाले और प्रतिक्षण उन्हें रास्ता बतलानेवाले शुद्ध स्वयसेवकोका दल खडा होना चाहिए और ऐसे दलको सविनय-भग और उसकी मर्यादाकी पूरी-पूरी समझ होनी चाहिए।

ऐसे विचारोंसे भरा हुआ मैं बम्बई पहुंचा और सत्याग्रह-सभाके द्वारा मैंने सत्याग्रही स्वयसेवकोंका दल खडा किया। उनके जरिये लोगोंको सविनय कानून-भगकी तालीम देनी शुरू की और सत्याग्रहका रहस्य बतलाने-वाली पत्रिकाए निकाली।

यह काम चला तो सही, मगर मैंने देखा कि मैं इसमें लोगोंको बहुत दिलचस्पी पैदा न कर सका। स्वयसेवक काफी नहीं मिले। यह नही कहा जा सकता कि जो भर्ती हुए, उन सभीने तालीम भी पूरी ली। भर्तीमें नाम लिखानेवाले भी, जैसे-जैसे दिन बीतने लगे वैसे-वैसे, दृढ़ होनेके बदले खिसकने लगे। मैंने समझा कि सविनय-भगकी गाडीके जिस चालसे चलनेकी मैं आशा रखता था, वह उससे कहीं धीमी चलेगी।

६७. पंजाबमें

पंजाबमें जो कुछ हुआ, उसके लिए सर माइकेल ओड्वायरने मुझे गुनहगार ठहराया था। उधर वहाके कई नौजवान फौजी कानूनके लिए भी मुझे गुनहगार ठहरानेमें हिचकते न थे। क्रोधके आवेशमें वे यह दलील देते थे कि यदि मैंने सविनय-कानून-भग मुल्तवी न किया होता, तो जलियां-वाला बागमें यह कत्ल न हुआ होता और न फौजी कानून ही जारी हो पाता। कुछ लोगोंने तो धमकिया भी दी थी कि अब आपने पंजाबमें पैर रखा, तो आपका खून कर डाला जायगा।

पर मैं तो मान रहा था कि मैंने जो कुछ किया है, वह इतना उचित और ठीक था कि उसमें समझदार आदमियोंको गलतफहमी होनेकी सम्भा-वना ही न थी। मैं पंजाब जानेके लिए अधीर हो रहा था। इससे पहले मैंने पंजाब नही देखा था, पर अपनी आखोंसे जो कुछ देख सकू, देखनेकी तीव्र इच्छा थी और मुझे बुलानेवाले डॉ० सत्यपाल, डॉ० किचलू, प० रामभजदत्त चौधरी आदिसे मिलनेकी अभिलाषा हो रही थी। वे थे तो जेलमें, पर मुझे पूरा विश्वास था कि उन्हें सरकार अधिक दिनोंतक जेलमें नहीं रख सकेगी। जब-जब मैं बम्बई जाता, तब-तब कितने ही पंजाबी मिलने आ जाते थे। उन्हें मैं प्रोत्साहन देता और वे प्रसन्न होकर जाते। उस समय मेरा आत्म-विश्वास बहुत था।

पर मेरे पंजाब जानेका दिन दूर-ही-दूर होता जाता था। वाइसराय भी यह कहकर कि अभी समय नहीं है, उसे दूर ढकेलते जाते थे।

इस बीच हण्टर-कमेटी आयी। वह फौजी कानूनकी जाच करनेके लिए नियुक्त हुई थी। दीनबन्धु एण्ड्रूज वहा पहुंच गये थे। उनकी चिट्ठियों-

मे वहाका हृदयद्रावक वर्णन होता था। उनके पत्रोसे यह ध्वनि निकलती थी कि अखवारोमे जो कुछ वातें प्रकाशित हो चुकी है, उनसे भी अधिक जुल्म फौजी कानूनका था। वह भी पजाव आनेका आग्रह कर रहे थे। दूसरी ओर मालवीयजी आदिके तार आ रहे थे कि आपको पजाब अवश्य पहुच जाना चाहिए। तव मैंने फिर वाइसरायको तार दिया। उनका जवाब आया कि फला तारीखको आप जा सकते है। अब तारीख ठीक-ठीक याद नही पड़ती, पर बहुत करके वह १७ अक्तूबर थी।

लाहौर पहुचनेपर मैंने जो दृश्य देखा, वह भुलाया नही जा सकता। स्टेशनपर मुझे लिवानेके लिए ऐसी भीड इकट्ठी हुई थी, मानो किसी बहुत दिनके विछडे प्रिय-जनसे मिलनेके लिए उसके सगे-सम्बन्धी आये हो। लोग हर्षसे पागल हो रहे थे। पण्डित रामभजदत्त चौधरीके यहा मै ठहराया गया। श्रीमती सरलादेवी चौधरीसे मेरा पहलेका परिचय था। मेरे आतिथ्यका भार उनपर आ पडा था। 'आतिथ्यका भार' शब्दका प्रयोग मैं जान-बूझकर कर रहा हू, क्योकि आजकी तरह तब भी मैं जहा ठहरता, वह घर एक धर्मशाला ही हो जाता था।

पजाबमे मैंने देखा कि वहाके पंजाबी नेताओके जेलमे होनेके कारण पण्डित मालवीयजी, पण्डित मोतीलाल और स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्दजीने उनका स्थान ग्रहण कर लिया था। मालवीयजी और श्रद्धानन्दजीके सम्पर्क-मे तो मै अच्छी तरह आ चुका था, पर पण्डित मोतीलालजीके निकट सम्पर्क-मे तो मैं लाहौर हीमे आया। इन तथा दूसरे स्थानीय नेताओने, जिन्हे जेलमे जानेका गौरव प्राप्त नही हुआ था, तुरन्त मुझे अपना बना लिया। कही भी मुझे यह न मालूम हुआ कि मैं कोई अजनबी हू।

हम सब लोगोने एकमत होकर हण्टर-कमेटीके सामने गवाही न देनेका निश्चय किया। इसके कारण उसी समय प्रकट कर दिये गये। अतएव यहा इनका उल्लेख छोड देता हू। वे कारण सीधे ही थे और आज भी मेरा यही मत है कि कमेटीका बहिष्कार जो हमने किया, वह उचित ही था।

पर यदि हण्टर-कमेटीका बहिष्कार किया जाय, तो फिर लोगोकी तरफसे अर्थात् कांग्रेसकी ओरसे कोई जाच-कमेटी नियुक्त होनी चाहिए, इस निर्णयपर हम लोग पहुचे। पण्डित मोतीलाल नेहरू, स्व० चित्तरजन-दास, श्री अब्बास तैयबजी, श्री जयकर और मैं, इतने सदस्य नियुक्त हुए। हम जाचके लिए अलग-अलग स्थानोंमे बंट गये। इस कमेटीकी व्यवस्थाका बोझ सहज ही मुझपर आ पडा था और मेरे हिस्सेमे अधिक-से-अधिक गावोंकी जाचका काम आ जानेके कारण मुझे पजाबको और पजाबके देहातो-को देखनेका अलभ्य लाभ मिला।

इस जांचके दिनोंमें पंजाबकी स्त्रियां तो मुझे ऐसी मालूम हुईं, मानो मैं उन्हें युगोंसे पहचानता हूं। मैं जहां जाता, वहां झुण्ड-की-झुण्ड स्त्रियां आ जातीं और अपने कते सूतका ढेर मेरे सामने रख देतीं। इस जांचके साथ ही मैं अनायास इस बातको भी देख सका कि पंजाब खादीका एक महान् क्षेत्र हो सकता है।

ज्यों-ज्यों मैं लोगोंपर हुए जुल्मोंकी जांच अधिकाधिक गहराईसे करने लगा, त्यों-त्यों मेरे अनुमानसे परे सरकारी अराजकता, हाकिमोंकी नादिर-शाही और उनकी मनमानी अन्यायपूर्णताकी बातें सुन-सुनकर आश्चर्य और दुःख हुआ करता। वह पंजाब कि जहांसे सरकारको ज्यादा-से-ज्यादा सैनिक मिलते हैं, वहां लोग क्यों इतना बड़ा जुल्म सहन कर सके, इस बातसे मुझे विस्मय हुआ और आज भी होता है।

इस कमेटीकी रिपोर्ट तैयार करनेका काम मेरे सुपुर्द किया गया था। जो जानना चाहते हैं कि पंजाबमें कैसे-कैसे अत्याचार हुए, उन्हें यह रिपोर्ट अवश्य पढ़नी चाहिए। इस रिपोर्टके बारेमें मैं तो इतना ही कह सकता हूं कि इसमें जान-बूझकर कहीं भी अत्युक्तिसे काम नहीं लिया गया है। जितनी बातें लिखी गयी हैं, सबके लिए रिपोर्टमें प्रमाण मौजूद हैं। रिपोर्टमें जो प्रमाण पेश किये गये हैं, उनसे बहुत अधिक प्रमाण कमेटीके पास थे। ऐसी एक भी बात रिपोर्टमें दर्ज नहीं की है, जिसके बारेमें थोड़ा भी शक था। इस प्रकार बिलकुल सत्यको ही सामने रखकर लिखी गयी रिपोर्टसे पाठक देख सकेंगे कि ब्रिटिश-राज अपनी सत्ता कायम रखनेके लिए किस हदतक जा सकता है और कैसे अमानुषिक कार्य कर सकता है। जहांतक मुझे पता है, इस रिपोर्टकी एक भी बात आजतक असत्य साबित नहीं हुई है।

६८. कांग्रेसमें प्रवेश

कांग्रेसमें जो मुझे भाग लेना पड़ा, उसे मैं कांग्रेसमें अपना प्रवेश नहीं मानता। इसके पहलेकी कांग्रेसकी बैठकोंमें जो मैं गया, सो तो केवल वफ़ा-दारीकी निशानीके तौरपर। छोटे-से-छोटे सिपाहीके सिवा वहां मेरा दूसरा कुछ काम होगा, ऐसा आभास भी मुझे दूसरी पिछली सभाओंके सम्बन्ध-में नहीं हुआ और न ऐसी इच्छा ही हुई।

अमृतसरके अनुभवने बताया कि मेरी एक शक्तिका उपयोग कांग्रेसके लिए है। पंजाब-समितिके मेरे कामसे लोकमान्य, मालवीयजी, मोतीलालजी, देशबन्धु इत्यादि खुश हुए थे, यह मैं देख सका था। इस कारण उन्होंने मुझे अपनी बैठकों और सलाह-मशविरेमें बुलाया। इतना तो मैंने देखा था कि

विषय-समितिका असली काम ऐसी बैठकोमे होता था और ऐसे मशविरोमे खासकर वे लोग होते, जिनपर नेताओका खास विश्वास या आधार होता, पर दूसरे लोग भी किसी-न-किसी बहाने घुस जाते थे।

आगामी वर्षमे किये जानेवाले दो कामोमे मेरी दिलचस्पी थी, क्योकि उसमे मेरा चचुपात हो चुका था।

एक था जलियावाला बागके कत्लका स्मारक। इसके लिए काग्रेसने बडी धूमधामके साथ प्रस्ताव पास किया। इसके लिए कोई पाच लाख रुपयेकी रकम एकत्र करनी थी। उसके ट्रस्टियोमे मेरा भी नाम था। देशके सार्वजनिक कार्योके लिए भिक्षा मागनेकी भारी सामर्थ्य जिन लोगोमे है, उनमे मालवीयजीका नम्बर पहला था और है। मै जानता था कि मेरा दर्जा उनसे बहुत घटकर न होगा। अपनी इस शक्तिका आभास मुझे दक्षिण अफ्रीकामे मिला था। राजा-महाराजाओपर जादू फेरकर लाखो रुपये पानेका सामर्थ्य मुझमे न था। आज भी नही है। इस बातमे मालवीयजीके साथ प्रतिस्पर्धा करनेवाला मैने किसीको नही देखा, पर जलियावाला बागके काममे उन लोगोसे द्रव्य नही इकट्ठा किया जा सकता था, यह मै जानता था। अतएव इस स्मारकके लिए धन जुटानेका भार मुझपर पडेगा, यह बात मै ट्रस्टीका पद स्वीकार करते समय समझ गया था और हुआ भी ऐसा ही। इस स्मारकके लिए बम्बईके उदार नागरिकोने पेट भरकर द्रव्य दिया और आज भी लोगोके पास उसके लिए जितना चाहिए द्रव्य है, परन्तु इस हिन्दू, मुसलमान और सिखोके मिश्रित खूनसे पवित्र हुई भूमिपर किस तरहका स्मारक बनाया जाय, यह विकट प्रश्न हो गया है, क्योकि तीनोके बीच दोस्ती-के बदले आज दुश्मनीका आभास हो रहा है।

मेरी दूसरी शक्ति मन्त्रीका काम करनेकी थी, जिसका उपयोग काग्रेस-के लिए हो सकता था। बहुत दिनोके अनुभवसे कहा, कैसे और कितने कम शब्दोमे अविनय-रहित भाषामे लिखना मै जान सका हू—यह बात नेता लोग समझ गये थे। उस समय काग्रेसका जो विधान था, वह गोखलेकी रखी हुई पूजी थी। उन्होने कितने ही नियम बना रखे थे। उनके आधार-पर काग्रेसका काम चलता था। वे नियम किस प्रकार बने, इसका मधुर इतिहास मैने उन्हीके मुखसे सुना था, पर अब सब मानते थे कि केवल उन्ही नियमोके बलपर काम नहीं चल सकता। विधान बनानेकी चर्चा भी प्रति-वर्ष चला करती। काग्रेसके पास ऐसी व्यवस्था ही नही थी कि जिससे वर्षभर उसका काम चलता रहे अथवा कोई भविष्यके विषयमे विचार करे। मन्त्री उसके तीन रहते, पर वास्तवमे तो मन्त्री एक ही रहता। वह भी ऐसा नही कि चौबीसो घण्टे उसके लिए दे सके। मन्त्री दफ्तरका काम करता

या भविष्यका विचार करता, या भूतकालमें ली हुई जिम्मेदारिया चालू वर्षमें पूरी करता। इसलिए यह प्रश्न इस वर्ष सबकी दृष्टिमें अधिक आवश्यक हो गया। काग्रेसमे तो हजारोकी भीड होती है, उसमें प्रजाका कार्य कैसे चलता? प्रतिनिधियोकी सख्याकी हद नही थी। हर किसी प्रान्तसे चाहे जितने प्रतिनिधि आ सकते थे। हर कोई प्रतिनिधि हो सकता था, इसलिए इनका कुछ प्रबन्ध होनेकी आवश्यकता सबको मालूम हुई। काग्रेसका नया विधान बनानेका भार मैंने अपने सिरपर लिया। पर मेरी एक शर्त थी। जनतापर मैं दो नेताओंका अधिकार देख रहा था। इसलिए मैंने उसके प्रतिनिधियोकी माग अपने साथ की। मैं जानता था कि नेता लोग खुद शान्तिके साथ बैठकर विधानकी रचना नही कर सकते थे। अतएव लोकमान्य तथा देशबन्धुके पाससे उनके दो विश्वासपात्र नाम मैंने मागे। इनके अतिरिक्त दूसरा कोई विधान-समितिमें न होना चाहिए, यह मैंने सुझाया। यह सूचना स्वीकृत हुई। लोकमान्यने श्री केलकरका और देशबन्धुने श्री आई० बी० सेनका नाम दिया। यह विधान-समिति एक दिन भी साथ मिलकर न बैठी। फिर भी हमने अपना काम चला लिया। इस विधानके सम्बन्धमें मुझे कुछ अभिमान है। मैं मानता हू कि इसके अनुसार काम लिया जा सके तो आज हमारा बेडा पार हो सकता है। यह तो जब कभी हो, परन्तु यह जवाबदेही लेनेके बाद ही मैंने काग्रेसमें सचमुच प्रवेश किया, ऐसी मेरी मान्यता है।

हाथ-करघेके कपड़ेका तो मैं १९०८से हिमायती था, परन्तु चरखा मुझे हाथ नहीं लगा था। १९१५ में आश्रम-स्थापनाके बाद हाथ-कते सूतका विचार होने लगा, क्योकि मैंने देखा कि मिलके कते हुए सूतके कपडेका उपयोग हमको सूत कातनेवाले मिलका बिना तनख्वाहका एजेण्ट बना रहा है। इस बन्धनसे मुक्ति तब ही मिल सकती है, जब कि हम अपने पुराने चरखेका पुनरुद्धार कर सकें। मैं इस पुनरुद्धारके काममें लग गया। स्व० गंगा-बहन मजूमदारने, जिससे मेरा परिचय भड़ोचमे हुआ था, चरखेकी खोजमें घूमनेकी प्रतिज्ञा की—जिस तरह दमयन्ती नलकी खोजमे घूमी थी। खूब खोज करनेके बाद गगाबहनको गायकवाडके बीजापुर गावमें चरखा मिल गया। इसके बाद मैंने गगाबहनको सुझाया कि वह पूनिया बनानेवालेको ढूढे। उन्होंने यह काम अपने सिर लिया, धुनियाको ढूढ निकाला। उसे हर महीने पैंतीस रुपये या इससे भी अधिक वेतनपर नियुक्त किया। उसने बालकोको पूनी बनाना सिखाया। मैंने रुईकी भीख मागी।

अब आश्रममें भी चरखे दाखिल करनेमें देर न लगी। मगनलाल गांधीने अपनी अन्वेषण-शक्तिसे चरखेमें सुधार किये और चरखे तथा तकुए आश्रममें

तैयार हुए। आश्रमकी खादीके पहले थानपर फी गज एक रुपया एक आना खर्च आया। मैंने मित्रोके पाससे मोटी कच्चे सूतकी खादीके एक गज टुकडेका एक रुपया एक आना वसूल किया, जो उन्होने खुशी-खुशी दिया।

अब मैं एकदम खादीमय होनेके लिए अधीर हो उठा। मेरी धोती देशी मिलके कपडेकी थी। बीजापुरमे और आश्रममे जो खादी बनती थी, वह बहुत मोटी और १० इच अर्जकी होती थी। मैंने गगावहनको चेताया कि अगर वह ४५ इच अर्जकी धोती एक महीनेके भीतर न दे सकेंगी, तो मुझे मोटी खादीका टुकडा पहनकर काम चलाना पडेगा। गगावहन घवरायी, उन्हें अवधि कम मालूम हुई, लेकिन वह हिम्मत नही हारी। उन्होने एक महीनेके भीतर ही मुझे ५० इच अर्जका धोती-जोडा ला दिया और मेरी दरिद्रता दूर की।

इसी बीच भाई लक्ष्मीदास लाठी गावसे एक अन्य भाई रामजी और उनकी पत्नी गगावहनको आश्रममे लाये और उनके द्वारा लम्बे अर्जकी खादी बुनवायी। खादीके प्रचारमे इस दम्पतीका हिस्सा ऐसा-वैसा नही कहा जा सकता। इन्होने गुजरातमे और गुजरातके बाहर हाथके सूतको बुननेकी कला दूसरोको सिखायी है। यह निरक्षर लेकिन सुसस्कृत वहन जब करघा चलाने बैठती, तो उसमे तल्लीन हो जाती और इधर-उधर देखनेकी या किसीके साथ बात करनेकी आवश्यकतातक अपने लिए महसूस नही करती थी।

६९. एक संवाद

जिस समय स्वदेशीके नामपर यह प्रवृत्ति शुरू हुई, उस समय मिल-मालिकोकी ओरसे मेरी खूब टीका होने लगी। भाई उमर सुभानी स्वय होशियार और सावधान मिल-मालिक थे, इसलिए वह अपने ज्ञानसे मुझे फायदा पहुचाते थे, लेकिन साथ ही वह दूसरोके मत भी मुझे सुनाते थे। उनमे से एक मिल-मालिककी दलीलोका असर भाई उमर सुभानीपर भी पडा और उन्होने मुझे उनके पास ले चलनेकी बात कही। मैंने उनकी इस बातका स्वागत किया और हम उन मिल-मालिकके पास गये। वह कहने लगे—

"यह तो आप जानते है न कि आपका स्वदेशी-आन्दोलन कोई पहला आन्दोलन नही है?"

मैंने जवाब दिया—"जी हा।"

"आप यह भी जानते है कि वग-भगके दिनोमें स्वदेशी-आन्दोलनने खूब जोर पकडा था। इस आन्दोलनसे हमारी मिलोंने खूब लाभ उठाया

था और कपडेकी कीमत वढा दी थी। जो काम नही करना चाहिए, वह भी किया था।"

"मैंने यह सब सुना है और सुनकर दु खी हुआ हू।"

"मैं आपके दु खको समझता हूं, लेकिन उसका कोई कारण नही है। हम परोपकारके लिए अपना व्यापार नहीं करते हैं। हमे तो नफा कमाना है। अपने मिलके हिस्सेदारो (शेयर-होल्डरो) को जवाव देना है। कीमत-का आधार तो किसी चीजकी माग है। इस नियमके खिलाफ कोई क्या कह सकता है? वगालियोको यह अवश्य ही जान लेना चाहिए था कि उनके आन्दोलनसे स्वदेशी कपडेकी कीमत जरूर वढेगी।"

"वे तो वेचारे मेरे समान शीघ्र ही विश्वास कर लेनेवाले ठहरे, इसलिए उन्होंने यह मान लिया था कि मिल-मालिक एकदम स्वार्थी नही वन जायगे दगा तो कभी देंगे ही नही और न कभी स्वदेशीके नामपर विदेशी वस्त्र ही वेचेंगे।"

"मुझे यह मालूम था कि आप इस तरहका विश्वास रखते हैं। यही कारण था कि मैंने आपको सावधान कर देनेका विचार किया और यहातक आनेका कष्ट दिया, जिससे भोले-भाले वगालियोकी भाति आप भी भूलमे न रह जाय।"

इतना कह चुकनपर सेठने अपने एक गुमाश्तेको नमूने लानेके लिए इशारा किया। नमूने रद्दी सूतके वने हुए कम्वलके थे। उन्हें लेकर उन्होंने कहा—

"देखिये, यह नया माल हमने तैयार किया है। इसकी वाजारमे अच्छी खपत है। रद्दीसे वनी है, इस कारण सस्ता तो पडता ही है, इस मालको हम ठेठ उत्तरतक पहुचाते हैं। हमारे एजेंट चारो ओर फैले हुए हैं। इससे आप यह तो समझ सकते हैं कि हमे आप-सरीखे एजेण्टोकी जरूरत नही रहती। सच वात तो यह है कि जहा आप-जैसे लोगोंकी आवाज-तक नहीं पहुचती, वहा हमारे एजेण्ट और हमारा माल पहुच जाता है। हा, आपको यह भी जान लेना चाहिए कि भारतको जितने मालकी जरूरत रहती है, उतना तो हम वनाते भी नहीं। इसलिए स्वदेशीका सवाल तो खासकर उत्पत्तिका सवाल है। जव हम आवश्यक परिमाणमे कपडा तैयार कर सकेंगे और जव उसकी किस्ममे सुधार कर सकेंगे, तव परदेशी कपडा आना अपने-आप वन्द हो जायगा। इसलिए मेरी तो यह सलाह है कि आप जिस ढगसे स्वदेशी आन्दोलनका काम कर रहे हैं, उस ढगसे मत कीजिये और नयी मिलें खडी करनेकी तरफ अपना ध्यान लगाइये। हमारे यहा स्वदेशी मालको खपानेका आन्दोलन आवश्यक नही है। आवश्यकता तो स्वदेशी माल उत्पन्न करनेकी है।"

"अगर मैं यही काम करता होऊ, तो आप मुझे आशीर्वाद देंगे ?"—मैंने कहा ।

"यह कैसे ! अगर आप मिल खडी करनेकी कोशिश करते हो, तो आप धन्यवादके पात्र हैं ।"

"मैं यह तो नही करता हू । हा, चरखेके उद्धार-कार्यमे अवश्य लगा हुआ हू ।"

"यह कौन-सा काम है ?"

मैंने चरखेकी बात सुनायी और कहा—

"मैं आपके विचारोसे सहमत होता जा रहा हू । मुझे मिलोकी एजेन्सी नही लेनी चाहिए । उससे तो लाभके बदले हानि ही है । मिलोका माल यो ही पडा नही रहता । मुझे तो कपडा उत्पन्न करनेमे और तैयार कपडेको खपानेमे लगना चाहिए । अभी तो मैं केवल उत्पत्तिके काममे लगा हू । मैं स्वदेशीमे विश्वास रखता हू, क्योकि उसके द्वारा भारतकी भूखो मरनेवाली आधी बेकार स्त्रियोको काम दिया जा सकता है । वे जो सूत कातें, उसे बुनवाना और इस तरह तैयार खादी लोगोको पहनाना ही मेरी प्रवृत्ति है और यही मेरा आन्दोलन है । चरखा-आन्दोलन कितना सफल होगा, यह तो मैं नही कह सकता । अभी तो उसका श्रीगणेश-मात्र हुआ है, लेकिन मुझे उसमे पूरा विश्वास है । चाहे जो हो, यह तो निर्विवाद है कि इस आन्दोलनसे कोई हानि नही होगी । इस आन्दोलनके कारण हिन्दुस्तानमे तैयार होनेवाले कपडेमे जितनी वृद्धि होगी उतना ही लाभ होगा । इसलिए इस कोशिशमे आपका बतलाया हुआ दोष तो नही ही है ।"

"अगर आप इस तरह आन्दोलनका सचालन करते हो, तो मुझे कुछ भी नही कहना है । यह एक जुदी बात है कि इस यत्र-युगमे चरखा टिकेगा या नही । फिर भी मैं तो आपकी सफलता चाहता हू ।"

७०. पूर्णाहुति

अब इन अध्यायोको बन्द करनेका समय आ पहुचा है । इससे आगेका मेरा जीवन इतना अधिक सार्वजनिक हो गया है कि जनता उसके विषयमे कुछ भी न जानती हो, यह सम्भव नही । असहयोग-आन्दोलनका जन्म और नागपुर-काग्रेसमे खिलाफतके सवालको लेकर असहयोग-प्रयोगका और हिन्दू-मुस्लिम एकता साधनेका प्रयत्न—इन सब बातोका यहा निर्देश-मात्र किये देता हू, और सन् १९२१ के सालसे तो मैं काग्रेसके नेताओके साथ इतना हिल-मिलकर रहा हू कि कोई बात ऐसी नहीं है कि जिसका यथार्थ वर्णन मैं उनका जिक्र किये बिना कर सकू । इन बातोके स्मरण अभी ताजा

ही है। श्रद्धानन्दजी, देशबन्धु, लालाजी और हकीमसाहब आज हमारे बीच नही है, फिर भी सौभाग्यसे दूसरे बहुत-से नेता अभी मौजूद है। कांग्रेस के महापरिवर्तनके बादका इतिहास तो अभी तैयार हो रहा है। मेरे मुख्य प्रयोग कांग्रेसके द्वारा ही हुए है, इसलिए उन प्रयोगोका वर्णन करते समय नेताओका उल्लेख करना अनिवार्य है। औचित्यकी दृष्टिसे भी इन बातोका वर्णन मुझे अभी नही करना चाहिए और जो प्रयोग अभी हो रहे हैं, उनके सम्बन्धमे मेरे निर्णय निश्चयात्मक नही कहे जा सकते, इसलिए भी इन अध्यायोको फिलहाल बन्द कर देना ही मैं अपना कर्तव्य समझता हू। अगर यह कहू कि मेरी लेखनी ही आगे बढनेसे इनकार करती है, तो भी अत्युक्ति न होगी।

पाठकोसे विदा मागते हुए मुझे दुःख होता है। मेरी दृष्टिमे मेरे प्रयोग अभी बहुत कीमती हैं। मुझे पता नही, मैं उनका यथार्थ वर्णन कर सकता हूं या नही। मैंने अपनी ओरसे तो ठीक-ठीक वर्णन करनेमें कुछ उठा नही रखा है। मैंने सत्यको जिस रूपमे देखा है और जिस राहसे देखा है, उसे उसी रूपमे, उसी राहसे बतानेकी हमेशा कोशिश की है और साथ ही पाठकोंके सम्मुख उन वर्णनोको रखकर मैंने अपने चित्तमे शान्तिका अनुभव किया है, क्योकि मुझे उनसे यह आशा रही है कि उनके पढनेसे पाठकोंके हृदयमे सत्य और अहिंसाके प्रति अधिक श्रद्धा उत्पन्न होगी।

मैं सत्यको ही परमेश्वर मानता आया हू। अगर पाठकोको इन अध्यायोंके पन्ने-पन्नेमे यह प्रतीति न हुई हो कि सत्यमय बननेके लिए अहिंसा ही एक राजमार्ग है, तो मैं अपने इस प्रयत्नको व्यर्थ समझूगा। प्रयत्न भले ही व्यर्थ हो, लेकिन सिद्धान्त तो निरर्थक नही है। मेरी अहिंसा सच्ची होते हुए भी कच्ची है, अपूर्ण है। इसलिए मेरे सत्यकी झलक उस सत्यरूपी सूर्यके तेजकी एक किरणमात्रके दर्शनके समान है, जिसके तेजका माप हजारो साधारण सूर्योको इकट्ठा करनेपर भी नही हो सकता। अत. अबतकके अपने प्रयोगोके आधारपर इतना तो मैं अवश्य कह सकता हू कि इस सत्यका सम्पूर्ण दर्शन अहिंसाके अभावमे अशक्य है।

ऐसे व्यापक सत्यनारायणके प्रत्यक्ष दर्शनके लिए प्राणिमात्रके प्रति आत्मवत् (अपने समान) प्रेमकी बडी भारी जरूरत है। इस सत्यको पानेकी इच्छा करनेवाला मनुष्य जीवनके एक भी क्षेत्रसे बाहर नही रह सकता। यही कारण है कि मेरी सत्य-पूजा मुझे राजनैतिक क्षेत्रमे घसीट ले गयी। जो यह कहते है कि राजनीतिसे धर्मका कोई सम्बन्ध नही है, मैं निःसकोच होकर कहता हू कि वे धर्मको नही जानते—और मेरा विश्वास है कि यह बात कहकर मैं किसी तरहकी विनयकी सीमाको लाघ नही रहा हू।

विना आत्म-शुद्धिके प्राणिमात्रके साथ एकताका अनुभव नही किया जा सकता और आत्म-शुद्धिके अभावमे अहिंसा-धर्मका पालन करना भी हर तरह नामुमकिन है। चूकि अशुद्धात्मा परमात्माके दर्शन करनेमे असमर्थ रहता है, इसलिए जीवन-रथके सारे क्षेत्रोमे शुद्धिकी जरूरत रहती है। इस तरहकी शुद्धि साध्य है, क्योकि व्यष्टि और समष्टिके वीच इतना निकटका सम्वन्ध है कि एककी शुद्धि अनेककी शुद्धिका कारण वन जाती है और व्यक्तिगत कोशिश करनेकी ताकत तो सत्यनारायणने सव किसीको जन्म हीसे दी है।

लेकिन मै तो पल-पलपर इस वातका अनुभव करता हू कि शुद्धिका यह मार्ग विकट है। शुद्ध होनेका मतलव तो मनसे, वचनसे और कायासे निर्विकार होना, राग-द्वेषादिसे रहित होना है। इस निर्विकार स्थितितक पहुचनेके लिए प्रतिपल प्रयत्न करनेपर भी मै उसतक पहुच नही सका हू। इस कारण लोगोकी प्रशसा मुझे भुला नही सकती, उल्टे वहुधा वह मेरे दु खका कारण वन जाती है। मै तो मनके विकारोको जीतना सारे ससारको शस्त्र-युद्ध करके जीतनेसे भी कठिन समझता हू। भारतमे आनेके वाद भी मैने अपनेमे छिपे हुए विकारोको देखा है, देखकर शर्मिन्दा हुआ हू, लेकिन हिम्मत नही हारी है। सत्यके प्रयोग करते हुए मैने सुखका अनुभव किया है, आज भी उसका अनुभव कर रहा हू। लेकिन मै जानता हू कि अभी मुझे वीहड रास्ता तय करना है। इसके लिए मुझे शून्यवत् वनना पडेगा। जवतक मनुष्य स्वत. अपने-आपको सवसे छोटा नही मानता है, तवतक मुक्ति उससे दूर रहती है। अहिंसा नम्रताकी पराकाष्ठा है, उसकी हद है और यह अनुभव-सिद्ध वात है कि इस तरहकी नम्रताके विना मुक्ति कभी नही मिल सकती। इसलिए अभी तो ऐसी अहिंसक नम्रता पानेकी प्रार्थना करते हुए और उसमे ससारकी सहायताकी याचना करते हुए मै इन अध्यायोको समाप्त करता हू।

गांधीजी विषयक रचनाएं

बापू के चरणों में

— विनोबा —

गाधीजीके जानेके वाद उनकी जयन्ती और निर्वाण-दिवसके प्रसगोपर विनोबाजीने अपनी पदयात्राके दौरान गाधीजीके वारेमे अनेक प्रवचन किये हैं। इस सकलनमे विनोबाजीने तीन विशेषताओपर विशद प्रकाश डाला है १ साधन-साध्यकी एकता, २. अहिंसाके सार्वजनिक प्रयोग और ३ सामूहिक साधना। इस युगको गाधीजीकी ये देनें विनोबाजीकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस पुस्तकका ५२ हजारका दूसरा सस्करण हो रहा है। पृष्ठ ११२, मूल्य १.२५।

बापू की गोद में

— नारायण देसाई —

पुस्तकमें लेखकने अपने जीवनके पाचवें वर्षसे लेकर १९४२ तकके गाधीजीके सहवास और आश्रमोमे किये गये गाधीजीके विविध प्रयोगोके हृदयस्पर्शी प्रसगोका रोचक वर्णन किया है। 'सत सेवता सुकृतवाधे' नामसे गुजरातीमे प्रकाशित मूल पुस्तकको गुजराती भाषाका साहित्यिक पारितोषिक प्राप्त हो चुका है। पुस्तककी प्रस्तावनामे श्री दादा धर्माधिकारी लिखते हैं कि 'मोहन और महादेव, इस सुन्दर पुस्तककी दो विभूतियाँ हैं। हरि-हरकी तरह उनका विभूतिमत्त्व अविभाज्य है। ' आधुनिक भारतके विश्वतीर्थ सावरमती और सेवाग्रामके आन्तरिक जीवनके रुचिर शैलीमे हृदयस्पर्शी दर्शन इसमे कराये गये है। पृष्ठ १७२, मूल्य २.५०।

गांधीजी और राष्ट्रीय प्रवृत्तियां

— शंकरलाल बैंकर —

गाधीजीके सम्पर्कमें रहकर उनका उल्लेख्य मार्गदर्शन पाकर देशमे महत्त्वपूर्ण काम करनेवालोंमे श्री शकरलाल बैंकरका प्रमुख स्थान है। उन्होंने 'गाधीजी अने राष्ट्रीय प्रवृत्ति' नामक अपनी गुजराती पुस्तकमें बापूके सस्मरण और अनुभव सकलित किये हैं। यह उसीका हिन्दी रूपान्तर है।

लेखकने पुस्तकको चार भागोंमे वाटा है। पहला भाग १९१४ से १९२२ का कालखण्ड है, जिसमे असहयोग और सत्याग्रहका विवरण है। १९२२ से १९२३ के कालखण्डके दूसरे भागमें यरवदा-जेलके अनुभव है। १९२३ से १९३९ के तीसरे भागमे उनके खादी-कार्य एव खादी-प्रवृत्तिपर प्रकाश है। चौथे भागमे खादी-काम और खादी-प्रवृत्तिका प्रचार-सम्बन्धी वर्णन है। पुस्तककी हर पक्तिमे बापूके पवित्र जीवनकी झाकी देखनेको मिलती है। पृष्ठ ५३२, मूल्य १०.००।

मननीय एवं पठनीय साहित्य

लोकनीति	विनोबा	२ ००
सर्वोदय-विचार व स्वराज्य-शास्त्र	,,	१ २५
क्रान्त दर्शन	,,	२ ००
मधुकर	,,	१ ००
स्थायी समाज-व्यवस्था	जो० कॉ० कुमारप्पा	२ ५०
गाँव-आन्दोलन क्यो ?	,,	२ ५०
ग्राम-सुधार की एक योजना	,,	० ७५
सर्वोदय-दर्शन	दादा धर्माधिकारी	५ ००
अहिंसक क्रान्ति की प्रक्रिया	,,	४ ००
स्त्री-पुरुष सहजीवन	,,	२ ५०
लोकनीति-विचार	,,	२ ००
लोकतन्त्र विकास और भविष्य	,,	२ ००
चुनाव और लोकतन्त्र	(सकलन)	० ७५
समग्र ग्राम-सेवा की ओर (तीन खण्ड)	धीरेन्द्र मजूमदार	६ ००
मेरा गाँव (सस्मरण)	बबलभाई महेता	२ ५०
गुजरात के महाराज	,,	२ ००
सहजीवी गाँव इजराइल का एक प्रयोग	युसुफ बरात्ज	३ ००
नक्षत्रों की छाया मे	श्रीकृष्णदत्त भट्ट	१ ५०
विशुद्धात्मा वल्लभस्वामी	(सकलन)	२ ००
मेरा निर्माण और विकास	नानाभाई भट्ट	२ २५
किशोरलालभाई की जीवन-साधना	नरहरिभाई	२ ००
समय और हम (४५० प्रश्नोत्तर)	जैनेन्द्रकुमार	१२ ००
समन्वय-सस्कृति की ओर	काका कालेलकर	४ ००
सर्वोदय का इतिहास और शास्त्र	शकरराव देव	० २५

सर्व सेवा संघ प्रकाशन

राजघाट, वाराणसी